उपवास-चिकित्सा

जीवन एक ऐसा किला है जो अपनी रक्षा आप कर सकता है; फिर उसके मार्गमें रोड़े क्यों अटकाते हो? यह सच है कि यदि किला कमज़ोर कर दिया जायगा तो शत्रुके आक्रमणकी भयंकरता कम हो जायगी; परन्तु याद रक्खो कि इस किलेके पास आत्म-रक्षाके जो साधन हैं वे तुम्हारी रसायनशालाओंके समस्त उपकरणोंसे अधिक उत्तम और बहुमूल्य हैं।

—नेपोलियन बोनापार्ट

× × × × ×

एक तो दवाओंके सम्बन्धकी ही हमारी जानकारी बहुत कम है और फिर उन दवाओंको जिन शरीरोंमें प्रविष्ट किया जाता है उनके विषयमें तो हम और भी कम जानते हैं।

औषधियोंका उन रोगोंपर कोई निश्चित प्रभाव नहीं पड़ता जिनके लिए उनका व्यवहार किया जाता है।...सबसे अच्छा चिकित्सिक वही है जो औषधियोंको निरर्थक समझता है।

—डा० सर विलियम ओसलर
(वर्तमान समयके सर्वश्रेष्ठ रोगशास्त्रज्ञ)

\+ + + + +

अपने भावी स्वास्थ्यकी आहुति देकर ही दवाओंसे कष्ट निवारण किया जाता है।

—बरनर मैकफेडन

\+ + + + +

आरोग्य सबसे श्रेष्ठ है। मुझे केवल एक दिनके लिए ही आरोग्य दो तो मैं उसके सामने चक्रवर्तियोंके भी वैभव का परिहार कर दूँगा।

—इमर्सन

\+ + + + +

ईश्वरीय नियम पालनहीसे शरीर नीरोग रह सकता है, शैतानी नियम पालनसे नहीं। जहां सच्चा आरोग्य है, वहां सच्चा सुख है।

—महात्मा गाँधी

अक्षुधितेनामृतमप्युपभुक्त च भवति विष।

—सोमदेवसूरि

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकरका १५ वाँ ग्रन्थ

उपवास-चिकित्सा

लेखक,
अनेक ग्रन्थोंके रचयिता और अनुवादकर्त्ता
श्रीयुत बाबू रामचन्द्र वर्मा

प्रकाशक,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय

जुलाई, १९४६ ई०

प्रकाशक

नाथूराम प्रेमी

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय

हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई



मुद्रक

श्रीपतराय,

सरस्वती प्रेस, बनारस।

प्रकाशकका निवेदन

उपवास-चिकित्साका यह चौथा संस्करण प्रकाशित हो रहा है। इसके पहलेका तीसरा संस्करण दिसम्बर सन् १९२२ में प्रकाशित हुआ था। बरनर मैकफेडनकी जिस मूल पुस्तक Fasting, Hydropathy & Exercise (उपवास, जल-चिकित्सा और व्यायाम) के आधारसे यह पुस्तक लिखी गई थी, वह अब नहीं मिलती। सन् १९२३ में जब कि हमारी इस पुस्तकका तीसरा संस्करण प्रकाशित हुआ था, मैकडेफन साहबकी एक दूसरी पुस्तक प्रकाशित हुई थी जिसका नाम है Fasting for Health (स्वास्थ्यके लिए उपवास)। यह पूर्वोक्त पुस्तकको परिवर्तित, संशोधित और परिवर्द्धित करके लिखी गई है और एक तरहसे पहली पुस्तकका दूसरा जन्म है। इसमें सिर्फ दस अध्याय हैं—१ उपवास क्या है, २ उपवासका इतिहास, ३ उपवासका शरीरपर प्रभाव, ४ उपवास कब करना और कब नहीं, ५ उपवास-कालके चिह्न, दुश्चिह्न और खतरे, ६ उपवास कितने लम्बे किये जायँ? छोटे और बड़े उपवास—अधूरे उपवास, ७ उपवास कैसे करें?, ८ किस तरह तोड़ें?, ९ उपवास के बाद शरीरको बनाना, १० उपवास करनेवाले और तत्सम्बन्धी अनुभव। इस सूचीसे पाठक पहली और दूसरी पुस्तकके अन्तरको बहुत कुछ समझ जायेंगे। लेखक महाशयने इसे पहली पुस्तक प्रकाशित होनेके बादके अपने और दूसरे उपवास-चिकित्सकोंके सब अनुभवों और अन्वेषणोंको दृष्टिके आगे रखकर लिखा है और उन सब बातोंको या तो निकाल दिया है, या संक्षिप्त कर दिया है, जो प्राकृतिक चिकित्साकी उपादेयता और ओषधियोंकी निरर्थकता सिद्ध करनेके लिए लिखी गई थीं और अब युरोप-अमेरिकाके पाठकोंके लिए पिष्टपेषण मात्र रह गई हैं। साथ ही व्यायाम, वायु-सेवन, खान-पान आदिके स्वास्थ्यसम्बन्धी साधारण प्रकरणोंको भी अलग कर दिया है।

हमने बहुत कुछ सोच-विचार करनेके बाद पूर्व संस्करणके पाठोंको तो ज्योंका त्यों रहने दिया है, क्योंकि हमारे देशमें अब भी उन सब बातोंके प्रचारकी आव-

श्यक्ता है जिन्हें मैकफेडन साहबने अपनी दूसरी पुस्तकमें रखना आवश्यक नहीं समझा है; रहीं वे सब नई बातें जो पहली पुस्तकमें नहीं थीं सो उन्हें इस पुस्तकके अन्तमें परिशिष्ट-रूपमें जोड़ दिया है। पाठकोंसे प्रार्थना है कि वे परिशिष्ट भागको भी पुस्तकका आवश्यक अंग समझकर पढ़ें और उससे पूरा-पूरा लाभ उठावें। उसमें ऐसी अनेक बातें हैं जिन्हें जान लेनेसे उपवास करनेवाले बहुतसी कठिनाइयों और खतरोंसे बच सकेंगे।

परिशिष्ट भागको मेरे पुत्र चि० हेमचन्द्रने उपवास-चिकित्सा और 'फास्टिंग फार हेल्थ' (सन १९२१ का संस्करण) को आद्यन्त पढ़कर लिखा है और इस बातका पूरा ध्यान रक्खा है कि उक्त नई पुस्तककी कोई ऐसी बात न रह जाय जिसका जानना उपवास करनेवालेके लिए उपयोगी है।

उपवास-चिकित्साके लेखक बाबू रामचन्द्र वर्माने अपने 'वक्तव्य' में डाक्टर शावक बी० मादनका थोड़ासा परिचय दिया है। ये महाशय इस बीचमें अमेरिका हो आये हैं और वहांसे मैकफेडन सा० के College of Physicultotherapy की डिग्री डी० पी० D. P. या Doctor of Physicultotherapy प्राप्त कर लाये हैं। अब आप अपने चिकित्सालयमें उपवास, मालिश, व्यायाम और पथ्य-भोजनसे रोगोंकी चिकित्सा करते हैं।

प० लालचन्दजी नामके एक सज्जनको जो कुरट जि० जालौनके रहनेवाले हैं–हमने आपकी चिकित्सासे आराम होते देखा है। पण्डितजी अनेक दुस्साध्य और दुःखद रोगोंसे ग्रस्त थे और सब चिकित्साओंसे निराश होकर उपवास कर रहे थे। वे जिस दिन बम्बई आये, उस दिन उनका बयालीसवां उपवास था और ऐसी बुरी हालत थी कि कई धर्मशालावालोंने मृत्यु हो जानेके डरसे उन्हें ठहरने तक न दिया था। बड़ी मुश्किलसे हम लोगोंके कहने-सुननेसे हीराबाग-धर्मशालामें उन्हें स्थान मिला और तब वे डा० मादनसे मिल सके। डा० साहबने उन्हें आश्वासन दिया और चूँकि उपवास काफी लम्बा हो चुका था, इसलिए उसे तुड़ाकर अपनी प्राकृतिक चिकित्सा शुरू कर दी। प्रारंभमें छाँछ दिया, जिसकी मात्रा बढ़ते-बढ़ते प्रतिदिन छह सेरतक पहुँच गई। दो हफ्ते बाद दो उपवास कराके फिर दूध देना शुरू कर दिया और वह भी धीरे-धीरे बढ़ाया गया। प्रतिदिन पाँच-छह सेरतक दूध भी

पिया जाने लगा। इन दिनों एनीमा बराबर दिया जाता रहा। लगभग दो महीने-तक वे यहाँ रहे और जब घरको लौटे तब खूब हृष्ट-पुष्ट और नीरोग थे।

पूज्यवर प० रामेश्वरानन्दजी वैद्य भी उपवास-चिकित्साके विशेषज्ञ हैं। बम्बईके माडवी मुहल्लेमें आपका दवाखाना हैं। आप न केवल अपने रोगियोंको ही उपवास करनेकी सलाह देते हैं, वरन् स्वय भी उपवास करते हैं। इस समय आपकी अवस्था ८० वर्षसे ऊपर है, फिर भी पाठक आश्चर्य करेंगे कि गत दस बरसोंसे आप हर साल तीस चालीस उपवास किया करते हैं और इस तरह अबतक सब मिलाकर ३८९ उपवास कर चुके हैं। हमारी प्रार्थना पर आपने इस विषयमें अपने उपवासोंका थोड़ासा परिचय लिखकर दिया है, जो पुस्तकके अन्तमें प्रकाशित किया जाता है। ज्वर, टाइफाइड (मथज्वर), मदाग्नि, संग्रहिणी, लीवर और आमवात आदि रोगोंके लगभग पचास रोगियोंको आप उपवास-चिकित्सासे आराम कर चुके हैं।

सन् १९२४ मे निमोनिया, खाँसी, दमा और प्लुरसी आदि अनेक रोगोंसे ग्रस्त होनेपर मुझे भी आपने २५ उपवास कराये थे और उक्त अत्यन्त कष्टदायक रोगोंसे मुक्त कर दिया था। लगभग उसी समय मेरे पुत्र चि० हेमचन्दको टाइफाइड (मन्थज्वर) हो गया था और उसे भी २६ उपवास कराये गये थे। इन दोनों प्रयोगोंका परिचय भी पुस्तकके अन्तमें दे दिया गया है।

डा० मादन और वैद्यराजजीका यह थोड़ासा परिचय देकर हम पाठकोंको यह सम्मति नहीं दे रहे हैं कि वे उपवास-चिकित्साके लिए बम्बई आनेका कष्ट उठावें। क्योंकि उपवास चिकित्सा एक ऐसी चिकित्सा है कि इससे गरीब-अमीर सभी एक-सा फायदा उठा सकते हैं और चाहे जहां किसी भी अच्छे वैद्य या डाक्टरकी देख-रेखमें यह की जा सकती है। सच पूछा जाय तो इसमें प्राण और धनका शोषण करनेवाले वैद्य और डाक्टरोंको कोई अधीनता ही नहीं है। उनके बिना भी बुद्धिमान लोग इसे अपने आप कर सकते हैं। फिर भी जिनमें आत्म-विश्वासकी कमी है और जो यथेष्ट धन खर्च कर सकते हैं उन लोगोंको चाहिए कि वे डा० मादन जैसे सुयोग्य चिकित्सकोंकी देख-रेखमें अपनी चिकित्सा करावें।

१६-६-३२

निवेदक—

नाथूराम प्रेमी

वक्तव्य

(पहली आवृत्तिसे)

---*---

प्रत्येक मनुष्यके लिए अपना स्वास्थ्य बनाये रखनेकी इच्छा और प्रयत्न करना केवल परम आवश्यक ही नहीं बल्कि बहुत ही स्वाभाविक भी है। पर इस इच्छाकी पूर्ति और प्रयत्नकी सफलता बहुत ही थोड़े लोगोंके भाग्यमें होती है। दिन पर दिन रोगों और रोगियों की संख्या इतनी बढ़ती जाती है कि पूर्ण रूपसे स्वस्थ मनुष्य ढूँढ निकालना बहुत ही कठिन हो गया है। यहाँतक कि बहुत पहले ही इस देशमें 'शरीरं व्याधिमन्दिरम्' का सिद्धान्त बनाया जा चुका है। पर वास्तव में यह बात नहीं है। शरीर स्वयं कभी व्याधि-मन्दिर नहीं होता, उसकी प्रवृत्ति सदा नीरोग होने या रहनेकी ओर होती है; पर हम आहार-विहार आदिके प्राकृतिक नियमोंका उल्लंघन करके स्वयं उसे व्याधि-मन्दिर बना लेते हैं। प्राणिमात्रमें सर्वश्रेष्ठ गिने जानेवाले मनुष्यके लिए यह बात बहुत ही लज्जास्पद है।

इससे भी अधिक लज्जास्पद आजकलकी वह प्रचलित दूषित प्रथा है जिसकी सहायतासे व्याधिको शरीरसे बाहर निकाल देनेका प्रयत्न किया जाता है। जिस शरीरमें अपने आपको स्वयं नीरोग कर लेनेकी सबसे बड़ी शक्ति विद्यमान हो, उसे तरह-तरहके विषोंके प्रयोगसे नीरोग करनेका प्रयत्न करना कभी लाभदायक नहीं हो सकता। इस सम्बन्धमें सबसे अधिक आश्चर्य और दुःखकी बात यह है कि समस्त प्रचलित चिकित्सा-प्रणालियोंमें जो प्रणाली सबसे अधिक दूषित और हानिकारक है, सारे संसारमें वही सबसे अधिक प्रचलित भी है। हमारा तात्पर्य एलोपैथीसे है जिसमें बहुत ही साधारण और सौम्य औषधियोंको बलपूर्वक तीव्र, उग्र और भयंकर बनाया जाता है। यही कारण है कि उनकी मात्रामें थोड़ीसी वृद्धि हो जाने पर भी

बहुत बड़े अनर्थकी सम्भावना होती है। इस पुस्तकमें ओषधियोंके सम्बन्धमें बहुत बड़े-बड़े डाक्टरोंकी जो निन्दात्मक सम्मतियाँ दी गई हैं, वे सब एलोपैथिक ओषधियोंपर ही हैं। ओषधि-चिकित्साकी और भी जितनी प्रणालियाँ हैं वे भी थोड़ी बहुत दूषित और हानिकारक अवश्य हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि ओषधिकी सहायतासे होनेवाली अस्थायी आरोग्यताकी अपेक्षा शरीरकी स्वसम्पादित आरोग्यता कहीं अधिक अच्छी होती है।

'—शरीरको आरोग्यता प्राप्त करनेका सबसे अच्छा अवसर उसी समय मिलता है जब कि उसकी सारी शक्तियोंको सब तरहके भारोंसे छुट्टी मिल जाय और यह छुट्टी लंघन या उपवासकी सहायतासे ही मिल सकती है। जिस भोजनका काम हमारे शरीरके अंग-प्रत्यंगको पुष्ट करना है, वह हमारे अंग-प्रत्यंगके रोगोंको भी अवश्य ही बढ़ाता जायगा; क्योंकि 'वृद्धि और पुष्टि करना' ही उसका स्वाभाविक धर्म है। भोजन करते रहनेके अतिरिक्त जहाँ ओषधियों आदिकी सहायतासे उसके कार्योंमें और भी विघ्न डाला जाता है वहाँका रक्षक ईश्वर ही है। आयुर्वेदमें 'लंघन परमौषधम्' इसीलिए कहा गया है कि उससे शरीरको अपनी स्वाभाविक और आरोग्य-स्थितितक पहुँचनेमें बहुत अधिक सहायता मिलती है। प्रत्येक रोगसे उपवासकी सहायतासे जितनी जल्दी छुटकारा मिलता है उतनी जल्दी और किसी उपायसे नहीं मिल सकता। और इस पुस्तकमें इसी उपवासके गुण, प्रकार और विधान आदि बतलाये गये है।

इस पुस्तकमें जो बातें बतलाई गई हैं वे इसीलिए बहुत अधिक हृदयग्राही हैं कि वे प्राकृतिक, सहज और युक्ति-युक्त हैं। हमारा विश्वास है कि जो विचारवान् पक्षपातरहित होकर इसमें बतलाई हुई बातोंपर ध्यान देगा वह बहुत ही सहजमें उनके गुणोंको स्वीकार करके उनका समर्थक और पक्षपाती बन जायगा, औषधोंके जालसे निकलकर प्रकृतिदेवीकी गोदमें स्वतन्त्रतापूर्वक रहने लगेगा।

युरोप-अमेरिका आदि देशोंमें बहुतसे उपवास-चिकित्सालय खुल गये हैं, जिनमें हजारों असाध्य रोगी भी आरोग्यता प्राप्त कर चुके हैं। उन्हींमेंसे एक चिकित्सालयके अध्यक्ष और संस्थापक बरनर मैकफेडन महाशय भी हैं। मैकफेडन साहबका केवल चिकित्सालय ही नहीं है, बल्कि उपवास-चिकित्साशास्त्र सिखलानेके लिए एक कालेज भी है। उस कालेजके पहले भारतीय ग्रेजुएट श्रीयुत डाक्टर गोवर्द्धन सी० नादन हैं

जिन्होंने नैण्टाक्रूज बम्बईमें एक 'उपवास-चिकित्सालय' खोल रखा है *। उन्होंने भी सुनते हैं, सैकड़ों पारसियों और मराठों आदिको केवल उपवास कराकर ही बड़े-बड़े भयंकर रोगोंसे मुक्त किया है, जिनके वर्णन समय-समय पर वहांके समाचारपत्रोंमें छपते रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तक डा० मैकफेडन की Fasting, Hydropathy and Exercise नामक अँगरेजी पुस्तक तथा डा० मादनकी 'उपवास' नामक गुजराती पुस्तकसे सहायता लेकर लिखी गई है। एतदर्थ हम दोनों महानुभावोंके परम कृतज्ञ हैं। श्रीयुत नाथूरामजी प्रेमीके भी हम बहुत कृतज्ञ हैं जिन्होंने हमें ऐसी उपयोगी पुस्तक लिखनेका परामर्श दिया और उसे प्रकाशित किया है।

काशी, शिवरात्रि
विक्रम सं० १९७२

—रामचन्द्र वर्म्मा

---

* अब आपका चिकित्सालय बाम्बे यूनिवर्सिटीके सामने आस्क्विथ एण्ड लार्डके मकानमें (तीसरे मंजिलपर) है, नैण्टाक्रूजमें नहीं। कालबादेवी रोडपर आपकी एक दूकान और पुस्तकालय (मादन्स हेल्थ डिपो एण्ड लायब्रेरी) भी है, जिसमें प्राकृतिक चिकित्सा-विज्ञानका प्रायः सभी अँगरेजी और गुजराती साहित्य तथा एनीमा आदि उपकरण मिलते हैं। —प्रकाशक

विषय-सूचि

विषय			पृष्ठसंख्या
१	हमारे शरीरका संगठन	... ...	१
२	शरीरकी भीतरी क्रिया	.. .	३
३	नियमोंका उल्लंघन	... .	५
४	अधिक भोजनसे हानियाँ	... ...	८
५	रोगमें भोजन	... .	११
६	रोग और चिकित्सा	... ..	१३
७	चिकित्साके दोष	... ...	१८
८	रोगोंकी एकता	... ...	२२
९	ओषधियोंका प्रभाव	... ..	२४
१०	पौष्टिक औषधें	. ...	२७
११	औषधोंपर कुछ सम्मतियाँ	... ...	३०
१२	प्राकृतिक चिकित्सा	... ..	३५
१३	धर्मग्रन्थ और उपवास	... ...	३८
१४	इतिहास और उपवास	... ...	४०
१५	पशु और उपवास	. ...	४१
१६	चिकित्सा और उपवास	... ...	४३
१७	आयुर्वेद और उपवास	... ...	४४
१८	प्रकृति और उपवास	... ...	४७
१९	शरीर और उपवास	.. .	४९
२०	मन और उपवास	... ...	५१
२१	शारीरिक बल और उपवास	... ...	५२
२२	मस्तिष्क और उपवास	... ...	५४

२३ उपवास-कालमें शरीरकी दशा ५६
२४ उपवाससम्बन्धी अनुभव ५८
२५ उपवास-कालमें भयके चिह्न ६४
२६ नींद और प्यास ६७
२७ उपवास-कालमें एनिमा ७०
२८ कुछ ज्ञातव्य बातें ... ७२
२९ बडा और छोटा उपवास ७५
३० छोटे बच्चोंके लिए उपवास ७७
३१ उपवास किसे न करना चाहिए ? ७९
३२ उपवाससम्बन्धी कुछ परीक्षायें ८२
३३ उपवास किस प्रकार छोड़ना चाहिए ? ... ८५
३४ दिन-रात में एक बार भोजन ९७
३५ जल-पान न करना १०२
३६ खान-पानका विचार १०५
३७ जल और वायु ११५
३८ वायु और रोग ११७
३९ वायु-सेवन १२१
४० व्यायाम १२६

परिशिष्ट

१ उपवासोंकी परीक्षाओंके परिणाम ... १३३
२ किन-किन रोगोंमें उपवास से लाभ होता है
और किनमें नहीं १३९
३ उपवास-कालके उपद्रव १४२
४ लम्बे और छोटे उपवास १५०
५ आंशिक उपवास अथवा फलोपवास... ... १५२
६ उपवासोंका प्रारंभ और समाप्ति १५४
७ उपवासके बाद शक्ति-निर्माण १५७

८ उपवास के अनुभव १५८
९ व्यायाम, विश्राम और स्नान १६४
१० दस वर्षमें ३८९ उपवास १६७
११ खांसी और श्वासपर २५ उपवास १६९
१२ चौदह वर्षके लड़केके २६ उपवास १७१
१३ छयालीस दिनका उपवास १७२

उपवास-चिकित्सा



हमारे शरीरका संगठन

प्रत्येक मनुष्य, पशु और यहां तक कि जीवमात्रका शरीर इस प्रकार बना हुआ है कि यदि उसमें किसी प्रकारके बाहरी या ऊपरी पदार्थके कारण दोष उत्पन्न होने लगे, तो वह शरीर—यदि उसके साथ किसी तरहका बल-प्रयोग न किया जाय और उसे स्वाभाविक स्थितिमें रहने दिया जाय तो—उस दोषको आप ही आप दूर कर लेगा। शरीर यथासाध्य किसी अनावश्यक और हानिकारक वस्तुको अपने अन्दर नहीं रहने देगा। उसका संगठन ही ऐसा है कि वह सदा उसे बाहर निकालनेका प्रयत्न करता रहेगा। एक तो स्वयं हमारे शरीरमें ही हरदम बहुतसे अनिष्टकारी पदार्थ और तरह तरहके विष उत्पन्न होते रहते हैं; दूसरे हम लोगोंकी मूर्खता और कुपथ्य आदिके कारण उनकी संख्या और भी बढ जाती है। यदि शरीर अनिष्टकारी पदार्थोंको बाहर निकालनेका काम थोडी देरके लिए भी बद कर दे, तो जीवन असभव हो जाय। सांस, पसीने, मल, मूत्र, थूक और छींक आदिके रूपमें शरीरके भिन्न भिन्न भागोंसे सदा हमारे शरीरसे तरह तरहके विकार निकलते रहते हैं। हमारा शरीर ये काम अपने कर्तव्य-स्वरुप करता है। ऐसी दशामें हमारा भी यह कर्तव्य होना चाहिए कि हम यथासाध्य और जान-बूझकर शरीरके प्रति कोई ऐसा अन्याय न करें, उसके अन्दर कोई ऐसा दुष्ट पदार्थ न जाने दें, जिसका प्रतिकार या प्रतिबंध उसकी शक्तिके बाहर हो। यदि हम अपने इस कर्तव्यका ध्यान न रखेंगे, शरीरके अंगोंपर उनकी शक्तिसे अधिक बोझ लादेंगे, तो परिणाम यह होगा कि हमारा शरीर हमें जबाब दे देगा, हम रोगी हो जायँगे और अंतमें मर भी जायँगे।

साधारण टाइप-राइटरोंमें एक घंटी लगी रहती है जो छापनेके समय एक लाइन खतम हो जानेपर आपसे आप बोल उठती है। उसका शब्द सुनते ही छापनेवाला

/3/9

सचेत हो जाता है और पेंच घुमाकर नई लाइन प्रारंभ करता है। इसी प्रकार और भी बहुतसे यंत्रोंमें ऐसे पुरजे लगे रहते हैं जो अपनी किसी नई आवश्यकताकी सूचना किसी विशिष्ट संकेतके द्वारा दे देते हैं। हमारे शरीरकी बनावट भी बिल्कुल वैसे ही यंत्रोंके समान, बल्कि उनसे भी अधिक पूर्ण और अच्छी है। हमारा स्नायुसमूह आनेवाली किसी बाहरी विपत्तिको देखते ही एक विशेष रूपमें हमें भयसूचक संकेत करता है। वह हमें केवल बाहरी विपत्तियोंकी ही सूचना नहीं देता बल्कि हमारी भीतरी आवश्यकताओंका ज्ञान भी हमें करा देता है। ज्यों ही हमारे भोजन या श्वास आदिमें किसी प्रकारकी बाधा या त्रुटि होती है, अथवा हमारी रगों, पट्ठों आदिमें किसी प्रकारका दोष उत्पन्न होता है, त्यों ही वह एक विशेष प्रकारसे—जिसे हम उसकी भाषा भी कह सकते हैं—हमें उसकी सूचना दे देता है; केवल सूचना ही नहीं, वह उसके प्रतिकारके लिए आवश्यक साधन भी बतला देता है। तात्पर्य यह कि हमारे शरीरमें जितनी असाधारण और अस्वाभाविक घटनायें होती हैं, स्नायु-समूह अपनी ओरसे उन सबकी सूचना दे दिया करता है। बहुत अधिक सरदी या गरमीका पता हमें तुरन्त ही अपनी त्वचासे लग जाता है। यदि हवामें मिरचोंका धुआं, किसी प्रकारकी धाँस या धूल आदि सम्मिलित हो, तो हमें तुरत खाँसी आने लगती है। यही खाँसी वह सूचना है जो हमें फेफड़ोंके द्वारा मिलती है। छोटेसे छोटा तिनका या कीड़ा यदि हमारी आँखोंके सामने आ जाता है, तो हमारी पलकें आपसे आप, बिना हमारी इच्छाके ही, बन्द हो जाती हैं। जहाँतक संभव होता है, हमारा शरीर भीतरी और बाहरी अनिष्टोंसे अपनी रक्षा आप ही कर लेता है। हमारा शरीर एक ऐसा मकान है जो अपनी कोठरियोंमें आप ही आप झाड़ू दे लेता है, अपने चूल्हे या अपनी अग्नियाँ आप ही जला लेता है, आवश्यकता पड़ने पर अपनी खिड़कियाँ और दरवाजे आप ही आप खोल और बंद कर लेता है और दुष्ट आक्रमणकारियोंको पहले तो स्वयँ ही मार भगानेकी चेष्टा करता है और जब वह उसमें असमर्थ होता है तब उसकी सूचना अपने किरायेदारको दे देता है। उस सूचनाको समझना और आनेवाली विपत्तिसे शरीरकी रक्षा करना किरायेदारका काम है।

शरीरकी भीतरी क्रिया

शरीर-रचना-शास्त्रके ज्ञाताओं और बड़े बड़े डाक्टरोंका मत है कि मनुष्यके शरीरमें जन्मसे लेकर मृत्युतक हरदम एक प्रकारका विष बनता और इकट्ठा होता रहता है। साधारणतः लोगोंको यह बात सुनकर हँसी आवेगी, पर हँसी आनेका कोई वास्तविक कारण नहीं है। बात यह है कि मनुष्यके सारे शरीरमें छोटे छोटे कोश हैं जिन्हें अंगरेजीमें सेल्स Cells कहते हैं। ये कोश शरीरकी आन्तरिक क्रियासे आप ही आप नष्ट होते रहते हैं और रक्त-संचालनकी सहायतासे उनके स्थानपर नये कोश भी बनते जाते हैं। इस प्रकार हरदम शरीरमें पुराने कोश नष्ट होते और नये कोश बनते रहते हैं। यह क्रिया जीवधारियोंके अतिरिक्त वनस्पतियोंमें भी होती रहती है। अंगरेजीमें परिवर्तनकी इस क्रियाको Metabolism कहते हैं। पुराने और नये कोशोंका जो अंश अवशिष्ट रह जाता है, वही एक प्रकारका विष है। यदि शीघ्र ही उसका नाश न हो तो उससे हमारे शरीरको बहुत हानि पहुँच सकती है। हमारे शरीरके अवयवोंका एक मुख्य कार्य यह भी है कि जहाँ तक शीघ्र हो सके उस दूषित अंशको हमारे शरीरसे बाहर निकाल दें। इस दूषित अंशके बाहर निकालनेका प्रधान मार्ग हमारे शरीरकी त्वचा है जिससे वह अंश पसीनेके रूपमें निकलता है। इसके अतिरिक्त हमारे जिगर, पेट, गुरदे, तिल्ली और अँतड़ियाँ आदिसे भी सदा बहुतसा दूषित अंश निकलता रहता है जो हमारे खूनके साथ मिलकर उसका रंग काला कर देता है। यह दूषित अंश हमारे फेफड़ेकी सहायतासे उस आक्सिजनद्वारा जलता या नष्ट होता रहता है, जो सांस लेनेमें हवाके साथ हमारे फेफड़ों तक पहुँचता है। यदि हम किसी प्रकार सांस न लें अथवा न ले सकें तो वह दूषित अंश या विकार हमारे खूनमें इकट्ठा हो जायगा। फल यह होगा कि पेटमें पचा हुआ भोजन शरीरके सब अंगोंमें न पहुँच सकेगा और वह विष-तुल्य विकार सारे शरीरमें फैलकर हमें कमजोर करता करता अन्तमें मार डालेगा। पर हमारे फेफड़े उस विकारको भी शरीरमें इकट्ठा नहीं होने देते और उच्छ्वासके द्वारा बड़े परिमाणमें उसे बाहर निकालते रहते हैं। इसी प्रकार मल-मूत्र और खखार आदिके रूपमें हमारे शरीरसे बहुतसे विकार बाहर निकलते रहते हैं। यदि इन विकारोंका निकलना बंद हो जावे और वे शरीरके अन्दर ही रह जायँ तो तुरन्त ही हमारी मृत्यु होनेमें कोई सन्देह न रह जाय।

वैज्ञानिकोंका यह भी मत है कि जब हम अधिक परिश्रम करते हैं, तब हमारे शरीरके कोश या सेल्स Cells अधिक परिमाणमें नष्ट होते हैं; पर नये कोश अधिक परिमाणमें उसी समय बनते हैं, जब कि हम सब प्रकारके शारीरिक श्रम छोड़कर आराम करते हैं। अर्थात् शरीरकी आरोग्यताके लिए काम-काज, परिश्रम और व्यायाम आदिकी जितनी आवश्यकता है, शरीरको सब प्रकारके परिश्रमोंसे छुट्टी देकर सुखी बनानेकी भी उतनी ही आवश्यकता है। यदि हम अपने शरीरको आराम न देंगे और उसे हरदम काममें लगाये रहेंगे, तो उसमें नवीन शक्ति, नवीन जीवनका सञ्चार न होगा। फल यह होगा कि हम दिनपर दिन दुर्बल और रोगी होते जायँगे। जो लोग अपने शारीरिक बलके भरोसे नित्य परिश्रम ही करते रहते हैं और कभी आराम नहीं करते, वे बहुत शीघ्र अपने स्वास्थ्य और यहांतक कि प्राणोंसे भी हाथ धो बैठते हैं। शरीरको आराम देनेका सबसे अच्छा प्राकृतिक उपाय निद्रा है। मनुष्यके शरीरके कोश सोनेमें ही सबसे अधिक परिमाणमें बनते हैं। जाग्रत अवस्थामें परिश्रम करनेके कारण जो पुराने कोश नष्ट होकर विषका रूप धारण करते हैं, उनका शमन भी सोनेमें ही होता है। बहुत अधिक कसरत करनेवालों या दौड़ने-वालोंको लीजिए। जो लोग दम साधकर बहुत अधिक कसरत करते या दौड़ते हैं उनके शरीर और छातीमें एक प्रकारका दर्द उत्पन्न हो जाता है। मैकेंजी नामक एक प्रसिद्ध डाक्टरने इस दर्दका कारण यह बतलाया है कि बहुत अधिक परिश्रम करने या दौड़ने आदिके कारण शरीरका इतना अधिक दूषित अंश रक्तमें मिल जाता है कि फेफड़े उसे सांसके द्वारा बाहर निकालनेमें असमर्थ हो जाते हैं। उस दशामें मनुष्यके सिरमें चक्कर आने लगता है और उसकी आकृति देखनेसे जान पड़ता है कि उसे स्वच्छ हवाकी बहुत आवश्यकता है। अब जरा इस परिश्रम करनेवाले या दौड़नेवालेको थोड़ी देरतक आराम करने दीजिए। उसका हांफना कुछ कम हो जायगा और उसका दर्द जाता रहेगा। इसका कारण यही है कि उसके दूषित अंग बाहर निकालनेवाले अवयवोंको कुछ आराम मिला है और वे अपना कार्य अच्छी तरह करने लगे हैं। शरीरमें एकत्र हुए विषके बाहर निकलते ही उसका दर्द भी कम हो जाता है। इससे यह बात अच्छी तरह सिद्ध हो जाती है कि किसी प्रकारका अधिक परिश्रम करनेके उपरान्त शरीरके भिन्न-भिन्न अंगोंमें जो दोष या विकार उत्पन्न हो जाते हैं, उनके दूर करनेके लिए उन अवयवों या अङ्गोंको आराम देना

चाहिए, कुछ समय तक उनसे कोई नया काम न लेना चाहिए। यह सिद्धान्त ससारके सभी कामों और सभी पदार्थोंमें समान रूपसे प्रयुक्त होता है। मनुष्य, पशु, पक्षी, नदियाँ, वनस्पतियाँ, और वृक्ष आदितक आराम चाहते और करते हैं। जिस चीजसे बहुत अधिक और निरंतर काम लिया जाता है, वह बहुत जल्दी नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है और जिसे बीच बीचमें अवकाश मिलता रहता है, वह अपनी पूरी आयुतक पहुँचती और अपना कार्य उत्तमतापूर्वक करती है।

नियमोंका उल्लंघन

मनुष्य है तो जीव-मात्रमें सबसे अधिक श्रेष्ठ, पर उसके काम और आचरण बहुधा पशुओंके कामों और आचरणोंसे भी गये-बीते होते हैं। इस उन्नति और सभ्यताके जमानेमें तो उसके निन्दनीय आचरण और भी बढते जाते हैं। हम लोग औरोंके साथ जो अन्याय करते हैं वह तो करते ही हैं, हमारा सबसे बडा अन्याय स्वय अपने साथ—अपने शरीरके साथ—होता है। हमारा यह अन्याय इतना पुराना और बढा-चढा है कि उसका बहुत अधिक अभ्यास हो जानेके कारण हम उसे अन्याय ही नहीं समझते। हम न तो अपने शरीर और बलको देखते हैं और न हमें उनकी रक्षा और वृद्धिका ध्यान रहता है। आप किसी बदर या बकरीको मांस या अफीम खिलानेका प्रयत्न कीजिए, आपको कभी सफलता न होगी, पर अपने आपको समझदार कहनेवाले बहुतसे ऐसे मनुष्य मिलेंगे जो इनसे भी निकृष्ट पदार्थोंको प्राप्त करनेमें अपनी ओरसे कोई कसर न छोड़ेंगे। जो मनुष्य विवेक-युक्त कहलाता है, वही कभी इस बातका विचार करनेकी आवश्यकता नहीं समझता कि वह स्वयं शाकाहारी जीवोंकी श्रेणीका है अथवा मांसाहारी जीवोंकी श्रेणीका। उसे शराब, कबाब, मांस, मछली, अफीम जो चाहिए सो खिला दीजिए, वह बड़ी प्रसन्नतासे खा लेगा। यही नहीं, बल्कि वह स्वय उन सब पदार्थोंको पानेका प्रयत्न करेगा और सबसे बड़ी विलक्षणता यह है कि जितनी अधिक मात्रामें वह उन सब पदार्थोंको उदरस्थ कर सकेगा, उतनी अधिक मात्रा लेनेमें वह अपनी ओरसे कोई बात उठा न रक्खेगा। लोग कहते हैं कि पशुओंमें एक प्रकारका सहज या स्वाभाविक ज्ञान होता है जिसके कारण वे

कोई हानिकारक पदार्थ ग्रहण नहीं करते। बहुत ठीक, पर क्या वह सहज और स्वाभाविक ज्ञान मनुष्योंमें नहीं है? है, और अवश्य है। पर मनुष्य जान-बूझकर उस ज्ञानका गला घोंटता है और स्वयं बलपूर्वक उसके विरुद्ध आचरण करता है। छोटे छोटे बच्चोंको मांस देखकर स्वाभाविक घृणा होती है, पर माता-पिता और घरके दूसरे लोग उन्हें तरह तरहसे बहलाकर मास खानेके लिए प्रवृत्त करते हैं। यह घृणा वह सहज ज्ञान नहीं तो और क्या है? बड़े बड़े शराबी भी शराब पीनेके समय बेतरह नाक सिकोड़ते और मुँह बिचकाते हैं। क्यो? इसी लिए कि वे अपने सहज ज्ञानकी हत्या करते हैं, अपनी प्रकृतिके विरुद्ध आचरण करते हैं। सुरती खाने, भांग, अफीम, गांजा आदि पीनेके लिए लोगोंको क्यों महीनों थोड़ी थोड़ी मात्रा बढ़ाकर अभ्यास करना पड़ता है? इसी लिए कि ये सब पदार्थ स्वभावतः उनके खानेके योग्य नहीं होते। इन सबके व्यवहारके लिए मनुष्यको अपने स्वभाव और प्रकृतिमें परिवर्तन करना पड़ता है।

मनुष्यका यह अन्याय और अनौचित्य केवल यहीं तक नहीं रुक जाता, बल्कि आगे चलकर वह और भी विकरालरूप धारण करता है। एक तो वह खाद्य और अखाद्य सभी पदार्थ खाता ही है, दूसरे वह उन्हें आवश्यकता और शक्तिसे कहीं अधिक खा लेता है। आपको भूख तो बिलकुल नहीं है, पर आपके मित्र महाशयका बहुत आग्रह है कि भोजन तैयार है, आप कुछ न कुछ अवश्य खा लीजिए। आप अपनेको लाचार समझकर खाने बैठ जाते हैं। आप घरसे तो भरपेट भोजन करके चलते हैं; पर रास्तेमें कोई बढ़ियासी चीज बिकती हुई देखकर मोल ले लेते हैं और उसके खाने का मौका ढूँढने लगते हैं। किसी मित्रके यहाँ निमंत्रणमें जाकर तो आपका यह विश्वास बहुत ही दृढ़ हो जाता है कि—'परान्नं दुर्लभं लोके शरीराणि पुनः पुनः।' इन सब अवसरोंपर आप यह नहीं समझते कि हमारा पेट इतनी तरहकी और इतनी अधिक चीजें पचानेमें समर्थ होगा या नहीं। पेट अपनी चिन्ता आप ही कर लेगा, आपसे और उससे मतलब? पर नहीं, थोड़ी ही देर बाद मतलब पैदा हो जाता है। ज्यों ही आपने कुछ अधिक खाया, त्यों ही आपकी तबीयत भारी हो जाती है और आपको चलने फिरनेमें कठिनाई होती है। उस समय आप लेमनेड-वालेकी दूकानकी शरण लेते हैं, दोस्तोंसे नमक सुलेमानी मांगते हैं और इसी प्रकारके अन्य उपचारोंकी चिन्तामें लगते हैं। जो लोग इतनी मोटी बातें नहीं

समझ सकते, उन्हें यह बात समझाना और भी कठिन है कि ये ऊपरी उपचार उस समय तो मनुष्यकी शारीरिक वेदना कम कर देते हैं, पर स्वयं यह वेदना बीज-रूपसे उनके शरीरमें बनी ही रहती है और आगे चलकर अनेक बड़े बड़े रोगरूपी वृक्ष उत्पन्न करती है।

यद्यपि पाश्चात्य सभ्य देशोंमें भी लोग २४ घंटोंके अन्दर पांच पांच बार भोजन करते हैं और उनके भोजनकी मात्रा भी कम नहीं होती है, तथापि अन्य देशोंकी अपेक्षा भारतमें अधिक परिमाणमें भोजन करनेवाले बहुतायतसे हैं। दस दस सेर दही और चिवड़ा खानेवाले मैथिलों और बारह बारह सेर लड्डू खानेवाले भट्टों और चौबोंको जाने दीजिए, पजाबके साधारण जाट भी एक बारमें डेढ सेर आटेकी रोटियाँ खाते हैं; भोजपुरिये देहातियोंको बिना डेढ सेर सत्तूके संतोष नहीं होता, यहांतक कि साधारण बगाली भी बिना आध सेर चावलके भातके तृप्त नहीं होते। ये सब अनर्थ केवल इसलिए होते हैं कि ये लोग बाल्यावस्थासे ही अपने घरके बड़े-बूढ़ोंको बहुत अधिक भोजन करते देखते हैं। केवल देखना ही उनके लिए उतना अधिक हानिकारक नहीं होता, जितना उनकी माताओंका आग्रह हानिकारक होता है। गोदके बच्चेको स्त्रियाँ जबरदस्ती अधिक दूध पिलाती हैं। अधिक सयाने बच्चोंको मार-मारकर बांध-बांधकर अधिक भोजन कराया जाता है। बालकका पेट भरा रहता है, उसकी कुछ खानेकी इच्छा नहीं होती, पर माता उसे बिना कुछ खिलाये क्यों सोने दे! कभी कभी तो बालकको न खानेके कारण मार तक खानी पड़ती है! और जब मातायें एक छोटा-मोटा युद्ध करके अपने बालकोंको कुछ खिलाने-पिलानेमें विजय प्राप्त कर लेती हैं, तब उनके आनन्दकी सीमा नहीं रहती। वे मनमें समझती हैं कि हमने अपने बालकोंका बड़ा उपकार किया, और यही उपकार जब अपकाररूपमें प्रकट होता है, बालकको अपच या इसी प्रकारका कोई और रोग हो जाता है, तब लोग उनका सहज उपचार करने और उनको स्वाभाविक स्थितिमें छोड़ देनेके बदले उनके साथ एक नया उपकार आरंभ कर देते हैं। औषधके रूपमें तरह तरहके विष उनके पेटमें उतारे जाते हैं और मानो 'विषस्य विषमौषधम्' के सिद्धान्तपर उन्हें अच्छा करनेका प्रयत्न किया जाता है।

अधिक भोजनसे हानियाँ

अधिक भोजनसे होनेवाली हानियाँ इतनी अधिक हैं कि उनका पूरा पूरा वर्णन करना प्रायः असंभव है। इस सिद्धान्तसे प्रायः सभी बड़े बड़े डाक्टर सहमत हैं। अभी हालमें एक बड़े भारी डाक्टरने कहा था कि आजकल साधारणतः लोग भोजनके बहाने जितने पदार्थोंका सत्यानाश करते हैं उनके तृतीयांशसे ही उनका काम बड़े आनन्दसे चल सकता है। यही नहीं, बल्कि पदार्थोंके परिमाणमें जितनी न्यूनता होगी, तरह तरहके असंख्य रोगों में भी उतनी ही कमी हो जायगी। जो लोग उक्त मतको बिलकुल लचर समझते हों, उन्हें उचित है कि वे स्वयं दो तीन सप्ताहोंतक अपना भोजन घटाकर उसका शुभ परिणाम देख लें। बात यह है कि हम लोग अच्छी तरह जितना भोजन पचा सकते हैं उससे कहीं अधिक उदरस्थ कर लेते हैं। जो अंश पच जाता है, उसको छोड़कर बाकीका बिना पचा और अध-पचा अंश जब आँतों द्वारा नीचे उतरने लगता है, तब उसमेंसे बहुतसे विकृत और दूषित अंश बाहर निकलते हैं और विषके रूपमें परिवर्तित होकर हमारे रक्तमें मिल जाते हैं। उस दूषित अंशके कारण हमारा रक्त बिगड़ जाता है और उससे शरीरमें तरह तरहके रोग उत्पन्न होते हैं। रक्त बिगड़नेके कारण शरीरमें रोगोंकी उत्पत्ति तो बादमें होती है; सबसे पहले विकारोंका जमघट आँतोंके नीचे पेडू आदिमें ही होता है। वहाँ उनमें एक प्रकारका उबाल आरंभ होता है, जिसके कारण मनुष्यको या तो संग्रहिणी हो जाती है या कब्जियत। अब कब्जियत कितने रोगोंकी खान है, इसके यहाँ विशेष बतलानेकी आवश्यकता नहीं है। पैखाने और पेशाबकी शिकायत उत्पन्न होती है, सिरमें दर्द आरंभ होता है और अन्तमें बुखारतककी नौबत आ जाती है। यह बुखार और कुछ नहीं, उन्हीं विकृत पदार्थोंको हमारे शरीरसे बाहर निकालनेका प्रयत्न है। बुखार बिगड़कर जो भयंकररूप धारण करता है, उससे प्रायः सभी लोग परिचित हैं। इस प्रकार अनावश्यक भोजन का बचा हुआ दूषित अंश बाहर निकलनेके लिए हमारे सारे शरीरमें चक्कर लगाया करता है और जिस अवयवमें पहुँचता है उसमें एक न एक विकार उत्पन्न कर देता है। आमाशय, हृदय, फेफड़ा, मस्तिष्क, आदि सभी अवयव इस दूषित अंशके शिकार बनते हैं और मनुष्यको गठिया, बवासीर, भगंदर, कोढ़, कण्ठमाला और तरह तरहके बुखार अथवा इसी प्रकारके अन्य

रोग आ घेरते हैं। यदि दूषित अंश कम हुए तो पहले इन रोगोंके कृमि मात्र ही उत्पन्न होते हैं, जिनको आगे चलकर बढ़ते कुछ देर नहीं लगती। इन्हीं सब कारणोंसे एक बड़े विद्वान्‌ने 'बहुत जोर देकर कहा है कि "अकालमें अन्नके अभावके कारण उतने लोग नहीं मरते, जितने सुकालमें अधिक अन्न खाने के कारण, तरह तरहके रोगों से मर जाते हैं!"

अधिक भोजन करनेके कारण होनेवाली जो हानियाँ ऊपर बतलाई गई हैं, वे तो ऐसी हैं जिन्हें बहुतसे साधारण बुद्धिके लोग भी जानते हैं। बड़े बड़े डाक्टरोंके मतसे अधिक भोजनके कारण मनुष्यके शरीर पर बहुत बोझ पड़ता है और उस भोजन के अनावश्यक अंशोंको शरीरसे बाहर निकालनेके लिए बड़ा परिश्रम करना और कष्ट उठाना पड़ता है। अधिक भोजनसे शरीरपर चार प्रकारके बुरे प्रभाव पड़ते हैं—

(१) अधिक भोजन से रक्त अस्वच्छ और विषाक्त हो जाता है, जिससे बहुत से रोगों के उत्पन्न होने की संभावना हो जाती है।

(२) शरीरमें पहलेसे जो नया या पुराना रोग उपस्थित होता है, अधिक भोजन करनेसे उसका पोषण होता है और वह बढ़ जाता है।

(३) हमारे शरीरके ज्ञान-तन्तुओं (Nervous system) पर अधिक भोजन करनेके कारण बहुत जोर पड़ता है और उसकी सारी शक्ति दूषित अंश या विषको बाहर निकालनेमें लग जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि मनुष्यके शरीरका बल नहीं बढ़ता और उसका ओज क्षीण होने लगता है।

(४) बिना पचे हुए भोजनका दूषित अंश बचा रहता है, उसमेंसे विष निकलकर पेट और मेदेमें फैलता है, जिससे मनुष्यकी आरोग्यताका बहुत जल्दी जल्दी नाश होने लगता है।

आवश्यकतासे अधिक भोजनके साथ जितने अनर्थ और अपकार सम्मिलित हैं, उतने कदाचित् ही और किसी दूसरे काममें सम्मिलित होंगे। यह भ्रमपूर्ण विचार हमारे मनमें बहुत अच्छी तरह बैठ गया है कि हम जो कुछ खाते हैं वह सब हमारी बल-वृद्धिमें सहायक होता है, उसमेंका कोई अंश वृथा नहीं जाता। यही कारण है कि हम लोग बिना इस बातका विचार किये कि हमें इस समय भोजन करनेकी आवश्यकता है या नहीं, हमारा पेट उसे ग्रहण करने और पचानेके लिए तैयार है

या नहीं; दिनमें कमसे कम तीन वार खूब डटकर भोजन कर लेते हैं। इसी भ्रमपूर्ण विचारके कारण लोगोंकी यहां तक मिथ्या धारणा हो गई है कि यदि हम एक वारका भोजन भी वीचमें छोड दें तो हमारा शरीर ही न चल सकेगा, हमारे सिरमें दर्द होने लगेगा, यहांतक कि हम चल-फिर भी न सकेंगे। हम यदि दिनमें पाँच वार भोजन करनेकी आदत डालें तो कुछ दिनोंमें ही हर वार भोजनके निश्चित समयपर हमें एक प्रकारकी भूख लग आया करेगी; पर वह कदापि सच्ची भूख नहीं होती, वह वनावटी या कृत्रिम होती है। हम लोग उसी वनावटी भूख के इतने गुलाम वन जाते हैं कि हममें उससे पीछा छुड़ानेका साहस ही नहीं रह जाता। आप एक वार भोजन न कीजिए; उससे आपको जो थोड़ा-वहुत कष्ट होगा वह तो होगा ही; पर यदि यह वात आपके दोस्तोंको मालूम हो गई, तो उन्हें आपका चेहरा 'विल्कुल उदास, सूखा हुआ और पीला' दिखाई पड़ने लगेगा। क्यों? इसी लिए कि वे स्वयं भूखके गुलाम होते हैं। आप अपनी इच्छासे न सही तो कमसे कम उन दोस्तोंकी खातिर ही थोड़ा-वहुत भोजन अवश्य कर लेंगे। पर आगे चलकर उसका जो दुष्परिणाम होगा, उसका अनुमान सहजमें नहीं हो सकता।

इस गुलामीसे वचानेका केवल यही उपाय है कि आप अपने मनको दृढ करें। सवसे पहले आपको इस वातका दृढ़ विश्वास हो जाना चाहिए कि आप वनावटी भूख-की गुलामीमें पड़े हुए हैं और उसके फन्देसे वच निकलना आपका कर्तव्य है। जव आप यह वात अच्छी तरह समझ लेंगे और भविष्यमें कभी अनावश्यक भोजन न करनेका दृढ संकल्प कर लेंगे, तव आपको वनावटी भूखकी गुलामीसे छूटनेमें अधिक समय न लगेगा। ज्यों ज्यों आप इस वनावटी भूखकी गुलामीसे निकलनेका प्रयत्न करने लगेंगे, त्यों त्यों आपको अधिक आनन्द और सुख होने लगेगा और आप अपने मित्रोंको भी अपना अग्रगामी वनाने और कम भोजन करनेके लाभ समझानेका प्रयत्न करने लगेंगे।

आपने कुछ ऐसे लोग भी देखे होंगे जो प्रायः इस वातकी शिकायत किया करते हैं कि हमें तरह तरहके वढ़िया भोजनमें भी कोई स्वाद या आनन्द नहीं आता; अथवा आजकल भोजनमें हमारी रुचि नहीं होती। ऐसे लोगोंकी वातोंका वास्तविक तात्पर्य यही होता है कि भोजनका वास्तविक आनन्द लेनेमें वे नितान्त असमर्थ हो गये हैं। जिस मनुष्यका स्वास्थ्य सव प्रकारसे अच्छा होता है वह जो कुछ

खाता है सब रुचिसे खाता है। उसे अन्तिम कौर भी उतना ही स्वादिष्ट लगता है जितना कि पहला कौर। सब तरहसे नीरोग आदमीकी यही अच्छी पहचान है। तरह तरहकी मसालेदार चटनियों और अचारोंकी आवश्यकता उन्हीं लोगोंको पड़ती है जिनकी पाचनशक्ति किसी प्रकार नष्ट हो जाती है। अच्छी पाचनशक्तिवाले मनुष्यको वास्तविक भूखके समय बहुत ही साधारण भोजनका भी एक एक कौर अमृतके समान स्वादिष्ट और मीठा जान पड़ता है। और नहीं तो स्वादिष्टसे स्वादिष्ट पदार्थ भी एक प्रकारका बोझा जान पड़ता है और लोग उसे इस प्रकार खाते हैं, मानो वे बड़ी लाचारी या सङ्कटमें पड़े हों। ऐसी अवस्थामें 'जबरदस्ती ठूँसकर भोजन करना ही अच्छा है या उसे छोड़ देना, यह बात विचारवान् पाठक स्वयं समझ सकते हैं।

रोगमें भोजन

मनुष्यके शरीरमें जितने रोग हैं, उनमें बहुत अधिक संख्या ऐसे रोगोंकी है जिनका मूल कारण भोजनसंबन्धी दोष ही होता है; पर विलक्षणता तो यह है कि उन रोगोंमें भी रोगीको पूर्ववत् भोजन देकर उसके रोगकी वृद्धि की जाती है—व्याधिका मूल कारण और बढ़ाया जाता है। रोगकी सहायता इसी सीमातक परिमित नहीं रहती बल्कि आगे चलकर और नये साधनोंसे भी होती है। रोगीको औषधियोंके नामसे तरह तरहके सूफियाने विष खिलाये जाते हैं जो बहुधा रोगोंको दबा तो देते हैं पर इसके मूल कारणको कदापि नष्ट नहीं कर सकते। बहुत अवसरोंपर तो यह भी देखा गया है कि उनसे और नये नये रोगोंकी सृष्टि होती है। संसारमें दिनपर दिन पुराने रोगोंकी वृद्धि और नये नये रोगोंकी उत्पत्तिमें जितनी सहायता अधिक भोजन और औषधियोंसे मिलती है उतनी और किसी दूसरी बातसे नहीं मिलती।

जब कोई मनुष्य रोगी होता है, उसकी रुचि भोजनकी ओर नहीं होती और उसको जीभका स्वाद बिगड़ जाता है, तब उसके मित्र, संबन्धी और चिकित्सक आदि उससे कहते हैं कि यदि तुम कुछ भी न खाओगे तो तुम्हारा शरीर क्योंकर

चलेगा ? तुम्हारे शरीरमें वल कहांसे आवेगा ? विना किसी आधारके तुम जीते क्यों-कर बचोगे ? आदि। प्रायः ऐसे अवसरोंपर लोग रोगीको जवरदस्ती कुछ न कुछ खिला दिया करते हैं। पर वे लोग यह समझनेका कष्ट नहीं उठाते कि मुँह और जीभका स्वाद बिगड़ जाने और भोजन करनेकी इच्छा न होनेका वास्तविक अभिप्राय क्या है ? उसका वास्तविक अभिप्राय यही है कि रोगी का शरीर भोजनके बोझसे बचना और कुछ सुस्ताना चाहता है। उसके संवन्धी वैद्यों और डाक्टरोंसे उसकी भूख बढ़ानेका उपाय कराते हैं और चिकित्सक लोग उसे जवरदस्ती भोजन देते हैं। कभी कभी तो रोगीके शरीरमें भोजन पहुँचानेके लिए यन्त्रोंतकसे सहायता ली जाती है। वहुतसे वैद्यों, हकीमों और डाक्टरोंकी तो यहां तक सम्मति होती है कि यदि रोगी कुछ भोजन न करेगा तो पाचनक्रिया करनेवाले रस उसकी उदरस्थ अँतड़ियोंतकको पचा डालेंगे। उनका सिद्धान्त है कि जव मनुष्यको भोजन नहीं मिलता तव उसका पोषण उसके शरीरके भीतरी मांससे होने लगता है; और इस प्रकारका पोषण उसके लिए विलकुल ही अस्वाभाविक और अत्यन्त हानिकारक होता है। मांसके वाद पचनेके लिए चरवीका नम्बर आता है और तदुपरान्त फेफड़ों और हृदयतककी नौवत पहुँचती है। मानो हमारा पेट कोई शेर या राक्षस है। कुछ डाक्टरोंका यह भी कहना है कि मनुष्यके लिए पैखाना होना अत्यन्त आव-श्यक है। यदि मनुष्यको पैखाना न हो तो वहुतसे दूषित पदार्थ उसके शरीरके अन्दर ही रह जायँगे और वड़ा उपद्रव तथा अनिष्ट करेंगे। पैखाना विना कुछ भोजन किये होता नहीं और इसलिए प्रत्येक मनुष्यको नित्य भोजन मिलना वहुत आव-श्यक है। एक दूसरे डाक्टरने तो प्रत्येक सशक्त मनुष्यके लिए चौवीस घंटोंमें चार पांच वार करके कोई दो सेर भोजन करनेकी आज्ञा दी है और कहा है कि यदि मनुष्यको इससे कम भोजन मिलेगा तो उसकी अँतड़ियोंमें एक प्रकारके कीड़े पड़ जायँगे और वह वहुत शीघ्र मर जायगा।

पर वास्तवमें इन सव वातोंका कोई विशेष अर्थ नहीं है। रोगियोंके संवन्धमें ये सव सिद्धान्त केवल कल्पित और माने हुए हैं और प्रत्यक्ष अनुभव करने पर जो प्रमाण मिले हैं वे सव इनके विरुद्ध हैं। अमेरिका और युरोपमें वहुतसे वड़े वड़े डाक्टरोंने सैंकड़ों और हजारों रोगियोंको डेढ़ डेढ़ और दो दो महिनोंतक विना किसी प्रकारके भोजन के रखकर अन्तमें उनके रोगोंका समूल नाश कर दिया है; यही नहीं, वल्कि उपवास-

कालके बीत जानेके उपरान्त बहुत ही थोड़े समयमें वे इतने स्वस्थ और सबल हो गये हैं कि स्वयं उन डाक्टरोंको उन रोगियोंकी दशा देखकर आश्चर्य हुआ है। आप पूछ सकते हैं कि जब मनुष्य दो दो महिनोतक बिना भोजनके रह सकता है, तब एक दो सप्ताहमें ही अकाल आदिके समय हजारों आदमी क्यों मर जाते हैं? इसका उत्तर यह है कि उपवास करने और भूखों मरने में बड़ा भेद है। वास्तवमें उपवास-कालमें मनुष्यका पोषण शरीरके निकम्मे और व्यर्थके बढ़े हुए पदार्थोंके द्वारा होता है। शरीरके मांसल भागोंकी बारी बढ़े हुए पदार्थोंके समाप्त हो जानेके कई सप्ताह बाद आती है। उस बीचमें यदि मनुष्यको भोजन न मिले तो वह अवश्य मर जायगा। जिस समय मनुष्यके शरीरको वास्तवमें किसी प्रकारके भोजनकी आवश्यकता हो अथवा उसे कुछ विशेष तत्त्व दरकार हों उस समय उसे भोजन आदि अवश्य मिलना चाहिए। मनुष्यके शरीरको जिन तत्त्वोंकी आवश्यकता होती है यदि उसे वे तत्त्व न मिलकर दूसरे तत्त्व मिलें तो भी वह अवश्य मर जायगा; क्योंकि उसकी आवश्यकतायें दूसरे तत्त्वोंसे पूरी नहीं हो सकेंगी, आवश्यक तत्त्वोंसे भिन्न चाहे जितने पदार्थ मनुष्यको मिलें पर उसका काम उनसे न चलेगा और वह अवश्य मर जायगा। मनुष्यका भूखों मरना उसी समय कहा जा सकता है जब कि उसे वास्तविक भूख लगे और उसे भोजन न मिले। भूखों मरनेवालोंकी दूसरी सबसे अच्छी पहचान यह है कि मनुष्योंका पिंजर मात्र बच जाता है। यदि कोई रोगी बिना ठठरीकी अवस्थातक पहुँचे ही बीचमें मर जाय तो उसकी मृत्युका कारण भोजनका अभाव नहीं, बल्कि रोगका बढ़ना आदि होगा।

रोग और चिकित्सा

यह तो हुई भोजनकी बात, अब चिकित्साको लीजिए। आजकलकी चिकित्सा-प्रणाली वास्तवमें कैसी है, इसका अनुमान केवल दिनपर दिन बढ़ते हुए रोगों और रोगियोंकी बढ़ती हुई संख्यासे ही किया जा सकता है और सख्यावृद्धिका मुख्य कारण ओषधियोंकी भरमार है। वैद्यराज अपने रोगीको दिनभरमें तीन तरहकी गोलियाँ खिला देते हैं, दो दो-तीन तीन अवलेह चटा देते हैं, एकाध चूर्ण दाल-तरकारियोंमें

मिलाकर खानेके लिए देते हैं और एक चूर्ण इसलिए दे देते हैं कि रोगी उसे दिनमें दस-बीस दफे फांक लिया करे। इसीतरह काढ़ेके काढ़े पकानेके लिए तो घरमें एक जुदा चूल्हा ही आवश्यक होता है। गोलियाँ और तरह तरहकी चटनियाँ इनसे अलग होंगी। डाक्टर लोग तो दो दो घंटे पर कड़ुए मिक्श्चरोंके मारे रोगीको और भी परेशान कर देते हैं। ये सब ओषधियाँ रोगीके शरीरमें जाकर कुछ समयके लिए रोगको शान्त तो कर देती हैं, पर उसका समूल नाश करनेमें नितान्त असमर्थ होती हैं। आज जो रोग आपको हुआ है वह दस-पांच दिनोंमें ओषधियों या अन्य कारणोंसे दब तो अवश्य जायगा, पर साल-छह महीनेमें एक नये रोगके साथ वह फिर उभर आवेगा। अब आपको एकके बदले दो रोगोंकी चिकित्सा करनी पड़ेगी। यदि कोठरीमें कूड़ा-करकट जमा हो जानेके कारण बहुतसे मच्छड़ और कीड़े-मकोड़े पैदा हो जायँ, तो हमें केवल उन मच्छड़ों और कीड़ोंको भगाकर ही सन्तुष्ट न हो जाना चाहिए, बल्कि उस कूड़े-करकटसे कोठरीको साफ करना चाहिए। रोगोंकी दशा भी बहुत कुछ इसी प्रकारकी है। शरीरमें पहले तो बहुतसा दूषित पदार्थ एकत्र हो जाता है और फिर उससे तरह तरहके ऐसे तत्त्व उत्पन्न होते हैं जो अनेक प्रकारके रोगोंका रूप धारण कर लेते हैं। ओषधियाँ बड़ी कठिनाईसे इन तत्त्वोंका नाश करनेमें तो समर्थ हो जाती हैं, पर शरीरमें एकत्र हुए दूषित अंशकी प्रकारान्तरसे वृद्धि ही करती हैं। सभी ओषधियोंमें लाभदायक अंश बहुत कम और हानिकारक अंश बहुत अधिक होता है। लाभदायक अंश तो ज्यों त्यों रोगसे युद्ध करके उसका शमन करता है, पर हानिकारक अंश शरीरमें रहकर और नये-नये रोगोंकी वृद्धिमें सहायता देता है। यह बात नहीं है कि आजकलके अच्छे अच्छे चिकित्सक इस बातको न जानते हों। अब धीरे धीरे लोग रोगके वास्तविक कारण और हजारों तरहकी ओषधियोंकी निरर्थकता समझने लगे हैं।

अब सबसे पहला प्रश्न यह है कि वास्तवमें रोग क्या है? यदि आजकलके चिकित्सकोंसे यह प्रश्न किया जाय तो वे स्पष्टतः यह बात स्वीकार कर लेंगे कि रोगोंके वास्तविक कारण आदिके विषयमें हम लोग नितान्त अनभिज्ञ हैं। उनका उत्तर पाकर हमें यह मानना पड़ेगा कि रोगोंकी वास्तविकता अभीतक घोर अन्धकारमें है और फलतः उनके दूर करनेका कोई अच्छा साधन मिलना भी असम्भव है। यदि पाठकोंको हमारे इस कथनपर विश्वास न हो, तो वे किसी बहुत अच्छे डाक्टरसे

उक्त प्रश्न कर सकते हैं। यदि आप कई अच्छे अच्छे डाक्टरोंसे यह प्रश्न करें तो आपपर हमारे कथनकी सत्यता और भी भली भाँति विदित हो जायगी। कोई डाक्टर अच्छी तरहसे इस विषयमें आपका समाधान नहीं कर सकता कि रोग क्यों और किस प्रकार उत्पन्न होते हैं, क्यों कुछ लोग सदा रोगी और कुछ नीरोग बने रहते हैं, क्यों एक रोगके बाद तुरत ही उससे बिल्कुल ही भिन्न प्रकारका एक दूसरा रोग उत्पन्न हो जाता है, ओषधियाँ शरीरमें किस प्रकार और कैसा काम करती हैं और पौष्टिक ओषधियोंका हमारे शरीर-संगठनपर क्या प्रभाव पड़ता है। इसमें जरा भी सन्देह नहीं है कि अच्छे अच्छे डाक्टर इन विषयोंमें स्वयं ही कुछ नहीं जानते, वे आपके प्रश्नोंका उत्तर क्या देंगे?

आजकल डाक्टरोंके निदानकी बड़ी तारीफ सुनी जाती है। पर क्या कोई डाक्टर किसी रोगको पहचानकर उसका समूल नाश भी कर सकता है? केवल निदानसे ही काम नहीं चल सकता, चिकित्सकका मुख्य उद्देश्य यह होना चाहिए कि रोग रुके और उसका समूल नाश हो जाय; पर जब उसे रोगका मूल कारण ही न मालूम होगा तब वह उसे दूर किस प्रकार कर सकेगा? न्यूयार्कके एक बहुत बड़े डाक्टरी कालेजके अध्यापक डा० आस्टिन फ्लिन्ट एम० डी०, एल-एल० डी०ने अपने एक ग्रन्थमें यह बात स्पष्ट रूपसे स्वीकार कर ली है कि रोग और आरोग्यताकी व्याख्या करना बहुत ही कठिन है। एक दूसरे दिग्गज डाक्टरका मत है कि चाहे लोग यह बात सुनकर भले ही हँस दें, पर मैं इतना अवश्य कहूँगा कि रोग और चिकित्सा आदिके सबन्धमें हम लोगोंका कोई निश्चित सिद्धान्त ही नहीं है और कमसे कम मेरा यह विश्वास है कि हम लोगोंको इस बातका कुछ भी ज्ञान नहीं है कि शरीरपर ओषधियोंका क्या और कैसा प्रभाव पड़ता है।

इसी प्रकार और भी अनेक बड़े बड़े डाक्टरोंके कथनोंसे यह बात प्रमाणित की जा सकती है कि आजकलका चिकित्सक-वर्ग रोगोंके वास्तविक स्वरूप और कारणों आदिसे एकदम अनभिज्ञ है। नये डाक्टर जो अभी हालमें कालेजसे निकले हों और जिन्हें किसी प्रकारका अनुभव न हो, भले ही इस बातका गर्व करें कि हम रोगोंके विषयमें सब बातें जानते और उन्हें तुरत दूर कर सकते हैं, पर कोई अनुभवी चिकित्सक ऐसी बात कभी न कहेगा। एक बड़े भारी प्रोफेसरका मत है कि ज्यों ज्यों डाक्टरका अनुभव बढ़ता जायगा, त्यों त्यों वह ओषधियोंकी निरर्थकता और प्रकृतिकी

प्रधानता समझा जायगा। डाक्टर लोग जितने ही अधिक रोगियोंको देखते हैं, ओषधियोंके गुणोंपरसे उनका विश्वास उतना ही हटता जाता है।

आजकलका चिकित्सा-विज्ञान जब रोगकी वास्तविकता ही नहीं जानता, तब वह उसका इलाज क्या करेगा? जिन रोगोंके विषयमें हम स्वयं कुछ नहीं जानते उन्हें हम दूर कैसे कर सकेंगे? ऐसी अवस्थामें यह मानना पड़ेगा कि आजकलकी चिकित्सा-प्रणाली बिलकुल अटकल-पच्चू है और डाक्टर लोग अपने रोगियोंपर ओषधियोंकी केवल परीक्षा ही करते हैं, रोगों आदिके सम्बन्धमें आजकल जितने नये आविष्कार होते हैं वे शुभ और उन्नतिके लक्षण माने जाते हैं, पर वे ही आविष्कार डाक्टरोंको और भी अधिक भ्रममें डालते हैं—उन्हें ठीक मार्गसे और भी दूर ले जाते हैं।

समस्त संसारके सब प्रकारके चिकित्सक दो भागोंमें बाँटे जा सकते हैं। एक भागमें तो होमियो और एलोपैथी आदि प्रणालियोंपर चिकित्सा करनेवाले डाक्टर, मिस्मेरिज्म या बिजलीकी सहायतासे चिकित्सा करनेवाले चिकित्सक, यूनानी और मिस्रानी हकीम, वैद्य तथा सब प्रकारके दूसरे चिकित्सक आ जाते हैं और दूसरे भागमें हम उन चिकित्सकोंको रखते हैं जिनके सिद्धान्त उक्त सब प्रकारके चिकित्सकोंसे एक दम भिन्न हैं और जो केवल प्राकृतिक उपायोंसे ही रोगोंकी चिकित्सा करते हैं। रोगोंकी उत्पत्ति और चिकित्सा आदिके संबन्धमें इन दोनों श्रेणियोंके चिकित्सकोंके सिद्धान्त एक दूसरेसे बहुत ही भिन्न हैं। पहले वर्गके चिकित्सकोंका तो विश्वास है कि रोग हमारे बड़े भारी शत्रु हैं जो हमारे शरीरके भिन्न भिन्न अङ्गोंपर अधिकार करके हमारी शक्तियोंसे युद्ध करते हैं; इन अदृश्य शत्रुओंके लिए हमारी ओषधियाँ, गोलियों और गोलोंका काम करती हैं। पर दूसरे वर्गका कहना है कि सब प्रकारके रोग और उनके लक्षण आदि हमारा स्वास्थ्य सुधारनेमें मित्रभावसे सहायक होते हैं। जब स्वास्थ्य बिगड़ जाता है तब हमारे अवयव उसकी सूचना देने और उसे सुधारनेके लिए उन लक्षणोंको उत्पन्न करते हैं, जिन्हें हम रोग कहते हैं।

हमारे शरीरका संगठन ही ऐसा है कि वह यथासाध्य उत्पन्न होनेवाले दोषोंको स्वयं ही दूर करता रहता है। जब हमारे शरीरकी स्वाभाविक स्थितिमें किसी प्रकारकी अव्यवस्था होती है, तब उसकी सूचना हमें रोगके रूपमें मिलती है। अच्छे चिकित्सकका यही कर्तव्य है कि वह शरीरको उसकी स्वाभाविक स्थितिमें आने ही ले जावे शरीरके स्वाभाविक स्थितिमें रोग आपसे आप नष्ट हो जायगा

और रोगी चंगा हो जायगा। दोनों वर्गोंकी चिकित्साप्रणालियोंमें अन्तर यह है कि एक वर्ग तो रोगोंके नाशके लिए परिश्रम करता है और दूसरा वर्ग रोगीको अच्छा करनेके लिए। एक ही रोगके दूर करनेके लिए कुछ विशिष्ट ओषधियां दी जाती हैं; इस बातका ध्यान नहीं रखा जाता कि रोगीपर उनका क्या प्रभाव पड़ेगा। पर प्राकृतिक चिकित्साका सिद्धान्त यह है कि रोगको छोड़कर उसके कारणका नाश किया जाय, जिसमें रोगी अच्छी तरह स्वस्थ हो जाय। ओषधियोंसे रोगोंको दबाने, उनका मुकाबला करने और उन्हें मार भगानेका प्रयत्न किया जाता है। पर प्राकृतिक चिकित्साका सिद्धान्त है कि रोग हमारा स्वास्थ्य सुधारनेके कारण या प्रयत्न होते हैं। उन्हें दबाना या नष्ट करना न चाहिए, बल्कि उनके मार्गमें सुविधा उत्पन्न करके स्वस्थ और नीरोग हो जाना चाहिए। यह उद्देश्य बिना किसी प्रकारकी ओषधियोंके ही बहुत अच्छी तरह सिद्ध किया जा सकता है।

एक बड़े डाक्टरका मत है कि यह समझना बड़ी भारी भूल है कि हमारा स्वास्थ्य सुधारनेवाले साधन हमारे शरीरके बाहर किसी डिबिया या बोतलमें बन्द हैं वह साधन, वह शक्ति तो स्वयं हमारे शरीरके अन्दर है। सब लोग नित्य देखते हैं कि जख्म आपसे आप भरते हैं, पर तो भी वे प्रकृतिके इस गुणको नहीं समझते*। मनुष्यको चाहे किसी प्रकारका रोग हो, उसे किसी प्रकारकी ओषधिकी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि उससे रोग अच्छा नहीं हो सकता। आवश्यकता केवल इसी बातकी है कि प्रकृति हमें जिस स्थितितक पहुँचाना चाहती हो, हम स्वयं उस स्थितितक पहुँच जायँ। हमें चंगा करनेका काम हमारी जीवन-शक्ति स्वयं कर लेगी।

गिरने-पड़ने अथवा इसी प्रकारके और कारणोंसे जो चोटें आदि लगती हैं, उनको छोड़कर रोगोंके दो ही मुख्य कारण हो सकते हैं। एक तो यह कि कोई विषाक्त या गन्दा पदार्थ बाहरसे किसी प्रकार हमारे शरीरमें पहुँच जाय या दूसरे यह

---

* पहले बड़े-बड़े जख्मोंको चंगा करनेमें तरह-तरहकी ओषधियोंसे सहायता ली जाती थी; पर जब ओषधियां निरर्थक ही नहीं, बल्कि हानिकारक सिद्ध हुईं, तब डाक्टरोंको लाचार होकर Dry dressing की शरण लेनी पड़ी। आजकल अच्छे डाक्टर जख्मोंको केवल धोकर बांध देते हैं और इस क्रियासे जख्म बहुत जल्दी भर जाते हैं।

कि वह स्वयं हमारे शरीरमें पड़े हुए दूषित या निरर्थक पदार्थोंके कारण उत्पन्न हो। दोनों दशाओंमें उनके कारण हमारे शरीरके कामोंमें रुकावट पड़ती है।

रोग क्या हैं? केवल उन रुकावटोंको दूर करने और उनके कारण होनेवाली हानिको पूरा करनेके साधन या प्रयत्न हैं। रोग केवल शरीरके दोष दूर करने और उसे शुद्ध बनानेकी एक क्रिया हैं। हमारी शारीरिक शक्ति स्वयं उन रुकावटोंको दूर और अपने कामोंमें सुविधा उत्पन्न करनेका प्रयत्न करती है। क्या इस प्रयत्नको जो सब प्रकारसे हमारे लिए हितकारी है, जो हमारे जीवनको बनाये रखनेके लिए होता है, जो हमें शरीरके भीतरी शत्रुओंसे बचाता है, तरह-तरहके जहरीले तेजाबों, शराब मिली हुई ओषधियों, जुलाबों और बफारों आदिसे रोकने या दबाने आदिकी आवश्यकता है?

जो बात मनुष्यजातिकी समझमें सैकड़ों पीढ़ियोंसे दृढ़तापूर्वक जमी हुई है, वह सहजमें या तुरन्त ही दूर नहीं की जा सकती। ऐसे अवसरोंपर लोगोंमें बहुत अधिक पक्षपात पाया जाता है। जिस प्रकार संगीत, काव्य या किसी और ललित-कलाका पूरा-पूरा आनन्द सब लोग नहीं ले सकते, उसी प्रकार किसी विषयपर पक्षपात छोड़कर विचार करने और सत्यका पक्ष ग्रहण करनेके लिए भी सब लोग तैयार नहीं हो सकते। बहुधा बातोंकी सत्यताका विश्वास क्रमशः ही होता है, एकदमसे नहीं हो सकता। साथ ही इन प्रकारके गूढ़ विषय केवल समझानेसे ही मनमें नहीं बैठ सकते। मनुष्यको उनके अनुकूल आचरण करते-करते जब उसका अच्छी तरह अभ्यास पड़ जाता है, तभी वह उसकी उपयोगिता समझ सकता है, अन्यथा नहीं। इसलिए विचारवान् पाठकोंको इस विषयपर पहले तो अच्छी तरह मनन करना चाहिए और तदुपरान्त परीक्षा और अनुभव करना चाहिए। यदि पाठक पक्षपात छोड़कर इन स्थलपर बतलाई हुई बातोंका विचार करेंगे, तो हमें आशा है कि उनकी उपयोगिता अवश्य ही उनकी समझमें आ जायगी।

चिकित्साके दोष

यह बात पहले ही बतलाई जा चुकी है कि अनेक कारणोंसे हमारे शरीरमें जो दोष उत्पन्न होते हैं, उन दोषोंको दूर करनेके लिए हमारी शारीरिक शक्तियाँ

स्वयं प्रयत्न करने लगती हैं और उसी प्रयत्नके चिह्नोंको हम 'रोग' कहते हैं। दोषोंको दूर करनेका प्रयत्न शरीरके भीतर आपसे आप होता रहता है। हमें ऊपर उसके लक्षण मात्र दिखाई देते हैं। एक विद्वान्का मत है कि रोग ही हमारा स्वास्थ्य बनाये रहता और हमारे प्राणोंकी रक्षा करता है। जो विष हमारे शरीरमें रहकर हमारा बहुत अधिक अनिष्ट कर सकते हैं, उन्हीं विषोंको बाहर निकालनेकी क्रियाका नाम रोग है। वालेस नामक एक बड़े प्रसिद्ध डाक्टरने हैजेके संबन्धमें एक बड़ी पुस्तक लिखी है। उस पुस्तकमें उसने यह बात सप्रमाण सिद्ध की है कि रोगोंको सक्रामक समझकर उनकी सक्रामकता दूर करनेके लिए आजकल ओषधियों आदिके द्वारा जितने प्रयत्न किये जाते हैं वे ही प्रयत्न रोगोंको फैलाने और बहुत अधिक मनुष्योंके प्राण लेनेके कारण होते हैं। जिन दिनों सक्रामकता दूर करनेके लिए इतनी अधिक ओषधियोंका प्रचार नहीं हुआ था, उन दिनों स्वयं रोग ही बहुतसे मनुष्यों के प्राण बचा लेता था।

पुराने ढंगकी जितनी चिकित्सा-प्रणालियाँ हैं, उनमेंसे बहुधा ऐसी ही हैं जिनमें रोगके ऊपरी चिह्नोंको ही रोग समझकर उन्हें नष्ट करनेके प्रयत्न होते हैं। इस प्रकार मानो उस क्रियामें बाधा डाली जाती है जो हमारे शरीरको शुद्ध करनेके लिए होती है। जब हम ओषधियों आदिसे उस क्रियाको रोकने या दबाने आदिका प्रयत्न करते हैं, तब उस क्रियामें बड़ी बाधा पड़ती है जो हमारे शरीरके भीतर हमें नीरोग करनेके लिए आप ही आप प्राकृतिक कारणोंसे होती है। चिकित्सा करके हम उससे जितना लाभ समझते हैं वास्तवमें हमारी उतनी ही हानि होती है। हमें दो-एक दिन बुखार आवे और किसी ओषधिकी एक या दो मात्रासे ही हमारा बुखार रुक जाय, तो हम यही समझते हैं कि उस ओषधिने हमारा बड़ा उपकार हुआ। पर वास्तवमें उससे होता हमारा अपकार ही है। हमारे शरीरका जो विष बाहर निकलना चाहता था वह उस ओषधिके कारण रुक गया। आगे चलकर शरीरमें वह जो अनर्थ न करे सो थोड़ा है। यदि वह ओषधि तुरन्त ही हमारा बुखार रोक न दे तो भी वह हमारा अपकार ही करेगी, उससे हमारा शरीर बहुधा बिगड़ेगा ही, और हमें अच्छे होनेमें दो-चार दिनके बदले महीनों लग जायँगे।

रोगके जिन ऊपरी चिह्नोंको हम रोग समझते हैं वास्तविक रोग उन चिह्नोंका कारण मात्र होता है। यह बात स्वत: सिद्ध है कि हमारी सभी शारीरिक क्रियायें

हमारे शरीरके दोषोंको दूर करती हैं। ऐसी दशामें हमें उचित तो यह है कि हम यथासाध्य अपने शरीरको उस स्थितिमें ले जायँ जिसमें हमारी शारीरिक क्रियाओंको दोष दूर करनेमें पूरा-पूरा सुभीता हो। वास्तवमें रोगकी उत्पत्ति उन्हीं विषोंसे होती है जो हमारे शरीरमें एकत्र हो जाते हैं। इन विषोंके एकत्र हो जाने की सूचना हमें समय समयपर सिरदर्द, कब्जियत अथवा इसी प्रकारकी और शिकायतोंसे होती है। बहुधा लोग इसलिए नहीं मरते कि उन्हें रोग हो जाते हैं, बल्कि वे इसलिए मरते हैं कि उनके शारीरिक संगठनको इतना अवसर या सुभीता ही नहीं दिया जाता कि वह उन विषोंको निकाल बाहर करे। इस विषयमें बहुत बड़े-बड़े डाक्टर सहमत हैं कि आजकल रोगोंके वास्तविक कारणोंपर किसीका ध्यान जाता ही नहीं, सब लोग उनके ऊपरी चिह्नोंको नष्ट करनेमें लगे रहते हैं। मरण और रोग देखनेमें भले ही आकस्मिक जान पड़ें, पर वे वास्तवमें आकस्मिक नहीं होते। इन दोनोंके मूल कारणोंकी बहुत बड़ी शृंखला होती है और उस शृंखलाकी अंतिम कड़ी रोग या मृत्युके रूपमें प्रकट हो जाती है।

प्रश्न हो सकता है कि किसी रोगके वास्तवमें नष्ट होनेके लक्षण क्या हैं और उनके कारणोंका निर्णय किस प्रकार किया जा सकता है? यदि किसी मनुष्यको गठिया हो और उसे तरह-तरहके तेल मले जायँ, तो रोगीके अङ्ग खुल जाते हैं। उस दशामें यह क्यों न माना जाय कि रोगका वास्तविक कारण नष्ट हो गया? यदि रोगीको उसकी स्वाभाविक स्थितिमें छोड़ देने अथवा उसे खुली हवामें रखने, पथ्य कराने और स्वाभाविक चिकित्साके इसी प्रकारके दूसरे उपायोंसे वह नीरोग हो जाय, तो इसी बातका क्या प्रमाण है कि रोगके वास्तविक कारणका ही समूल नाश हो गया? जिस प्रकार आप कहते हैं कि ओषधियोंसे रोगके चिह्न मात्र दब जाते हैं, उसी प्रकार आपकी चिकित्साके विषयमें भी यह क्यों न कहा जाय कि उससे ऊपरी लक्षण मात्र दबे हैं और रोगका मूल कारण शरीरमें बना हुआ है?

थोड़ासा विचार करनेसे इस प्रश्नका उत्तर सहजमें ही निकल आता है। चाहे आप इस बातको स्वीकार न करें, पर इसमें सन्देह नहीं कि ओषधियां रोगके लक्षणोंके ही दूर करनेके अभिप्रायसे दी जाती हैं। पर व्यायाम और पथ्य आदिका इन चिह्नोंपर कोई प्रत्यक्ष परिणाम नहीं होता। वे केवल हमारे शारीरिक संगठनके लिए उपकारक हैं। जब बिना उन लक्षणोंको दूर करनेके प्रयत्नके ही उनका नाश हो जाय,

तो यह बात निर्विवाद रूपसे सिद्ध हो जायगी कि उन लक्षणोंका शरीरमें कोई मूल कारण ही नहीं रह गया। पर ओषधियोंके विषयमें यह बात नहीं कही जा सकती। जो रोग वास्तवमें शरीरको शुद्ध करनेकी क्रिया है उसे हम ओषधियोंसे कैसे चगा कर सकते हैं? पर उसे स्वाभाविक दशामें छोड़कर और व्यायाम तथा पथ्य आदिसे उसके काममें सहायता देकर हम उस क्रियाको पूर्णतातक अवश्य पहुँचा सकते हैं। जुकाम या सरदी क्या है? छातीके ऊपरके भागमें एकत्र हुए विकार आदिको शरीरसे बाहर निकाल देनेकी क्रिया मात्र है। यदि वह विकार अपने स्वाभाविक मार्ग नाकसे न निकलता, तो उसे किसी अस्वाभाविक मार्गका अवलम्बन करना पड़ता। फोड़े-फुन्सियाँ आदि भी कुछ इसी प्रकारकी क्रियायें हैं, पर इनकी प्रणालियाँ कुछ भिन्न हैं। खाँसी हमारी प्रकृतिका वह प्रयत्न है जो किसी बाहरी अनावश्यक पदार्थको उस स्थानसे बाहर निकालनेके लिए होता है, जहाँ उस पदार्थको रहनेका कोई अधिकार नहीं है। दर्द भी इसी प्रकारकी क्रियाका चिह्न मात्र है, वह स्वयं कोई अलग रोग नहीं है। बुखारमें हमारे शरीरके विकार आदि जलाये जाते हैं; पसीनेवाली क्रियासे इसमें भेद केवल इतना ही है कि यह कुछ अधिक प्रखर रूपमें होती है। तात्पर्य यह कि नैसर्गिक चिकित्सासम्बन्धी विशेष बातोंको जाननेके पहले यह बात बहुत अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि जिसे हम रोग कहते हैं वह हमें नीरोग बनानेका प्रयत्न मात्र है।

स्वर्गीय सम्राट् सप्तम एडवर्डके चिकित्सक सर फ्रेडरिक ट्रेवेसने एक बार एक व्याख्यानमें कहा था कि आजकलके चिकित्सक चिकित्सा करनेमें बड़ी भूल करते हैं। अगर रोगीको ज्वर हो तो उसका ज्वर रोका जाता है, उसे यदि खाँसी हो तो उसकी खाँसी रोकी जाती है। इस प्रकार हम लोग उस रोगका नाश करनेका प्रयत्न करते हैं जो वास्तवमें हमारे लिए ईश्वरकी बहुत बड़ी देन है और जो सब प्रकारसे हमारा उपकार और रक्षण करती है। यदि संसारमें रोग न होते तो मानव-जाति अबसे बहुत पहले नष्ट हो चुकी होती। आपने अपने कथनके समर्थनमें कई ऐसे रोगोंका जिक्र किया था जिसे रोगी और डाक्टर बड़ा भारी शत्रु समझते हैं, पर वास्तवमें जिनसे मानव-शरीरका बहुत कल्याण होता है।

रोगोंकी एकता

इन सब बातोंपर विचार करनेसे एक ही परिणाम निकलता है। जब हम यह बात मान लेते हैं कि शरीर अपने भीतरके विकृत और दूषित पदार्थोंको समय-समय-पर बाहर निकालनेका प्रयत्न किया करता है, तब हमें यह भी मानना पड़ता है कि सैकड़ों हजारों तरहके रोगोंका मूल कारण केवल एक ही होता है और जिन्हें हम रोग मानते हैं वे इसके भेद या रूपान्तर मात्र हैं। जर्मनीके डाक्टर लुई कूनेने इस विषयपर एक बहुत बड़ी पुस्तक * लिखी है जिसमें यह बात भली भांति सिद्ध की गई है कि रोगोंका वास्तविक और मूल कारण केवल एक ही है। इसके अतिरिक्त और भी बहुत बड़े-बड़े डाक्टरोंने एकमत होकर यह बात स्वीकार की है। यदि उन लोगोंके मत और कथन आदि संग्रह किये जायँ तो एक स्वतन्त्र पुस्तक बन सकती है। उन मतोंको उद्धृत न करके हम युक्ति द्वारा ही इस बातको सिद्ध करनेका प्रयत्न करेंगे।

हमारे शरीरका प्रत्येक अवयव एक दूसरेसे संबद्ध है। रक्तका संचालन उन सब अंगोंमें समान रूपसे होता है। इस प्रकार रक्त हमारे सारे शरीरको 'एक' बनाये रहता है। चाहे ऊपरसे देखनेमें यह बात न मालूम पड़े, पर वास्तवमें हमारा कोई अंग अकेला रोगी नहीं हो सकता। जब कोई एक अंग रोगी होगा तब उसका प्रभाव शेष सब अंगोंपर भी कुछ न कुछ अवश्य पड़ेगा। किसी एक अंगको रोगी और शेष अंगोंको नीरोग समझना बड़ी भारी भूल है। या तो वह रक्तके कारण और या शारी-रिक संगठनके कारण शेष अंगोंको कुछ न कुछ दूषित अवश्य कर देगा। सर्वसाधारण केवल डाक्टरोंके जोर देनेपर ही यह बात मानते हैं कि एक अंगके रोगी होनेके कारण शेष अंग रोगी नहीं हो जाते।

इसी प्रकार बिना शेष सब अंगोंकी क्रियाओंपर प्रभाव डाले हुए हम किसी एक अंगके काममें दखल नहीं दे सकते। हमारा सारा शारीरिक संगठन भिन्न भिन्न अवयवोंपर और हमारा प्रत्येक अवयव हमारे शारीरिक संगठनपर इस प्रकार अवलंबित

---

* 'नवीन-चिकित्सा-विज्ञान, या 'जल-चिकित्सा' नामसे यह पुस्तक हमारे यहाँसे हाल ही प्रकाशित हुई है। —प्रकाशक

है कि उनका पारस्परिक संबन्ध किसी प्रकार छुड़ाया ही नहीं जा सकता। इसी लिए बड़े-बड़े डाक्टरोंका मत है कि कोई रोग एकांगी नहीं होता। जब मनुष्यके शरीरमें ऊपरी या बाहरी पदार्थोंके कारण कोई दोष उत्पन्न होता है, तब उस दोषको दूर करनेके लिए असाधारण बल लगाना पड़ता है। यदि हमारे शरीरमें वह आवश्यक शक्ति न हो अथवा आवश्यकतासे कम हो, तो वह दोष दूर न हो सकेगा और हमारे शरीरके लिए साधारण स्थितिसे रहना असंभव हो जायगा। यह दशा जब कुछ अधिक समय तक बनी रहेगी, तब वह दोष कोई विशेष रूप धारण करके हमारे किसी अंगमें घर कर लेगा। चोट-चपेट लगने, अंगोंके विकृत हो जाने अथवा बहुत तेज विष खाये जानेकी अवस्थाओंको छोड़कर शेष सब अवस्थाओंमें रोगोंके जो चिह्न दिखाई पड़ते हैं उनका मुख्य कारण यही होता है। इसी लिए एकांगी रोगोंको अच्छे-अच्छे डाक्टर कोई स्वतंत्र रोग नहीं मानते और उनका विश्वास है कि उन रोगोंकी अलग-अलग चिकित्सा करनेकी अपेक्षा सारे शरीरकी दशा सुधारना कहीं अधिक उत्तम और लाभदायक है।

एकांगी रोगोंकी धारणा वास्तवमें अज्ञान और अदूरदर्शिता आदिके कारण ही हुई है। हमारा सारा शारीरिक संगठन एक ही सूत्रमें संबद्ध है और उसका इस प्रकार संबद्ध होना आवश्यक भी है। आजकल रोगोंको एकांगी समझकर जो चिकित्सा की जाती है, वह शरीरके रोगी अंगोंमेंसे या तो वास्तविक रोगके लक्षणोंको दूसरे अंगोंमें परिवर्तित कर देती है और या उन्हें वहीं और भीतरी अंगोंमें दबा देती है। चिकित्सकोंको इस बातका ध्यान ही नहीं होता कि जिन्हें वे एकांगी रोग समझते हैं, वे वास्तवमें सारे शरीरके किसी दोषके लक्षण मात्र हैं। रोगोंको एकांगी समझकर उनकी चिकित्सा करना केवल निरर्थक ही नहीं, बल्कि हानिकारक भी होता है। सबसे अच्छा और उचित उपाय उनके मूलकी ही चिकित्सा करना है। यहाँ कदाचित् यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि शरीरके सारी पीड़ाओंकी जड़ एकक दोष है, और वह दोष उसी चिकित्सासे दूर हो सकता है जिसका प्रभाव हमारे समस्त शारीरिक संगठनपर पड़े, जो हमारे रक्त और शरीरको उसकी साधारण और वास्तविक स्थिति तक ला सके। जब शरीरकी इस प्रकारकी चिकित्सा हो जायगी, तब अवश्य ही हमारा प्रत्येक अंग स्वस्थ और नीरोग हो जायगा। अन्य सिद्धान्तोंकी अपेक्षा यह सिद्धान्त इतना युक्तिसंगत है कि प्रत्येक विचारशील पुरुष इसे तुरन्त ही स्वीकार कर

लेगा और आगे चलकर जब वह इसके अनुसार आचरण करके अनुभव करेगा, तब उसपर इस प्रणालीकी उपयुक्तता और भी दृढ़तासे सिद्ध हो जायगी।

अंगरेज़ी आदि भाषाओंमें बहुतसा ऐसा साहित्य है जिससे यह सिद्ध किया जा सकता है कि ओषधियां निरर्थक ही नहीं, बल्कि हानिकारक भी होती हैं ; पर स्थानाभावके कारण हम उस विषयको यहाँ नहीं छेड़ते। न जाने ओषधियोंके कारण चंगे होनेकी नष्ट धारणा लोगोंमें कहाँसे और कैसे उत्पन्न हो गई। बहुत संभव है कि इसकी उत्पत्ति अज्ञानकालमें ही हुई हो। आजकल जितने अनिष्टकारक विश्वास फैले हुए हैं, इसका नंबर उन सबसे बढ़ा चढ़ा है। ओषधियोंपर इस प्रकारके मिथ्या विश्वासका कारण यह है कि लोगोंको प्रकृति और रोगके वास्तविक स्वरूपका ज्ञान नहीं है। एक बार जब हमारे विचार इस संबन्धमें बदल जायँगे, तब पुरानी प्रणाली की भयङ्करता आपसे आप हमारी आँखोंके सामने नाचने लगेगी। जब हम एक बार रोगका वास्तविक स्वरूप समझ लेंगे, जब हमें यह मालूम हो जायगा कि वह स्वयं हमारे शरीरको नीरोग करनेकी एक क्रिया है, तब हमें ओषधियाँ आदि खाकर उसे दूर करनेकी आवश्यकता ही न रह जायगी। केवल एक इसी सिद्धान्तको अच्छी तरह समझ लेनेके बाद लोग सदाके लिए ओषधि-चिकित्साका त्याग और तिरस्कार कर देंगे।

ओषधियोंका प्रभाव

साधारणतः सब लोग यही समझते हैं कि ओषधियोंसे रोग दूर हो जाते हैं। ओषधियाँ इसी उद्देश्यसे दी जाती हैं और इसी उद्देश्यसे खाई जाती हैं। रोगोंके संबन्धमें लोग यही समझते हैं कि ओषधियोंकी सहायतासे हम उन्हें दबा, निकाल या नष्ट कर सकते हैं। मनुष्यकी यह मिथ्या धारणा बहुत प्राचीन कालमें हुई थी और वही धारणा अब तक बराबर चली आती है। पर विज्ञान तथा आरोग्यता-शास्त्रके आजकलके नये सिद्धान्तोंने इस धारणासे होनेवाले दोष ढूँढ़ निकाले हैं। आजकलके तर्क और युक्ति-वादके सामने ओषधियोंकी उपयोगिता नहीं ठहर सकती। इस स्थलपर हम यह दिखलानेका प्रयत्न करेंगे कि ओषधियाँ वास्तवमें क्या हैं, हमारे शरीरपर उनका क्या प्रभाव पड़ता है और बड़े-बड़े डाक्टरोंकी इनके संबन्धमें क्या सम्मतियाँ हैं।

सबसे पहली बात तो यह है कि ओपधियाँ विप हैं। या तो वे स्वयं विप होती हैं और या हमारे शरीरके अन्दर पहुँच जानेके कारण ही विप हो जाती हैं। इस सबन्धमें इस बातका अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि भोजनके अतिरिक्त शेप जितने पदार्थ हमारे शरीरके अन्दर प्रवेश करते हैं, वे सब विप हैं। सुप्रसिद्ध डाक्टर ट्रालका मत है कि सब प्रकारकी ओपधियाँ चाहे वे खनिज हों, पशुजन्य हो, अथवा वनस्पतिजन्य हो, विपके सिवा और कुछ नहीं हैं। जिस वस्तुसे हमारे शरीरका पोपण नहीं हो सकता, वह हमारे शरीरके लिए कभी लाभदायक नहीं हो सकती। एक विद्वान्का मत है कि संसारमें क्रमशः जीव, वनस्पति, खनिज पदार्थ और तत्त्व हैं। इनमेंसे प्रत्येकका धर्म्म है कि वह अपनेसे उच्चतरका पोपण करे। खनिज पदार्थोंसे ही वनस्पतिका पोपण हो सकता है, वनस्पतिसे खनिज पदार्थोंका कोई उपकार नहीं हो सकता। इसी प्रकार वनस्पति ही जीवका पोपण कर सकती है, जीवोंसे वनस्पतिका पोपण नहीं हो सकता। वनस्पतिसे भिन्न जितने जड़ पदार्थ हैं, वे कभी शरीरमें जाकर उसका कोई उपकार नहीं कर सकते। इसलिए खनिज अथवा अन्य जड पदार्थ हमारे शरीरमें पहुँचते ही उसके लिए विप हो जाते हैं। इस सिद्धान्तको आजकलके विज्ञानने बहुत अच्छी तरह मान लिया है और उसकी सत्यतामें किसी प्रकारका विवाद नहीं रह गया है। ओपधियों द्वारा चिकित्सा करनेवाले लोग तो रोग दूर करनेकी कामनासे रोगीके शरीरमें और भी अधिक विप प्रविष्ट करा देते हैं; वे रोगको क्या दूर करेंगे। इस प्रकार ओपधियोंसे रोगीकी दशा और भी बुरी हो जाती है।

जो पदार्थ हमारे शरीरमें पहुँचकर नियमित रूपसे नहीं पच सकता और जिससे हमारे शरीरका पोपण नहीं हो सकता, वह पदार्थ अवश्य ही हमारे शरीरके लिए विजातीय और फलतः विप है। हमारे शरीरके लिए ओपधियाँ या तो स्वयं विजातीय होती हैं और या रूप-परिवर्तनके कारण विजातीय बन जाती हैं और इसी लिए उनसे हमारे शरीरको बहुत हानि पहुँचती है। जो पदार्थ हमारे शरीरके लिए इस प्रकार हानिकारक हैं, उन्हें जानबूझकर और वह भी रोग दूर करनेके उद्देश्यसे, शरीरके भीतर पहुँचाना कहाँकी बुद्धिमत्ता है?

पर प्राकृतिक चिकित्सामें यह बात नहीं है। वह स्वयं हमारी शारीरिक शक्तियोंमें ऐसा परिवर्तन कर देती है कि वे सब प्रकारके विपोंको अनायास ही नष्ट करके उनका शेप अंश बाहर निकाल देती हैं। किसी साधारण दर्दको लीजिए। डाक्टरी

चिकित्सामें उसे दूर करनेका सिद्धान्त बहुत ही विलक्षण है। शरीरके किसी अंगमें पीड़ा होती है; वह पीड़ा चाहे जिस प्रकार हो, दूर होनी चाहिए। उसे दूर करनेके लिए पिचकारियोंके द्वारा पीड़ित अंगमें अफीमका सत्व या इसी प्रकारका और कोई विष पहुँचाया जाता है। अंग जड़ हो जाता है, पीड़ा छूट जाती है; डाक्टर समझता है कि रोगी अच्छा हो गया और रोगी समझता है कि रोग जाता रहा। पीड़ा शान्त हो जानी चाहिए, फिर उसके कारणोंका पता लगाने और उन्हें दूर करनेसे मतलब?

पर क्या आप इसे वास्तवमें चिकित्सा कह सकते हैं? इसमें रोगके लक्षण मात्रको दबा देने और साथ ही शरीरके अन्दर बहुतसा विष पहुँचा देनेके अतिरिक्त और क्या होता है? पीड़ा वास्तवमें किसी शारीरिक दोषका चिह्न होनी चाहिए। प्रकृति मूर्ख नहीं है, उसमें बिना किसी कारणके कार्य नहीं हो सकता। यदि शरीरके किसी अंगमें पीड़ा उत्पन्न हो, तो उसका कोई न कोई कारण अवश्य होगा, चाहे हमें उस कारणका पता चले और चाहे न चले।

पीड़ा तो किसी दोषका चिह्न मात्र है, वह स्वयं कोई चीज नहीं है। क्या इस चिह्न मात्रको दबा देनेसे उसके कारणका भी नाश हो सकता है? कभी-कभी दर्द दूर करनेके लिए अंगोंमें छाले डाले जाते हैं और कभी फसद खुलवाई जाती है। हमारी प्रकृति तो जोर-जोरसे चिल्लाकर हमें दोषोंकी सूचना दे और हम गला घोंटकर उसे चुप करायें! हमारा ज्ञान-तन्तु तो हमें सूचना दे कि हमारे शरीरमें शत्रु आ पहुँचा है और दर्दकी भाषामें वह हमसे सहायता माँगे और चिकित्सक तरह-तरहके विषों और अत्याचारोंसे उसका मुँह बन्द करके कहे कि मैंने रोगीको चंगा कर दिया! यह रोगीके प्राण लेकर उसे नीरोग करना नहीं तो और क्या है? इस संबन्धमें डा० ट्राल्ने अपने एक ग्रन्थमें लिखा है—"ओषधियोंसे और नये रोग उत्पन्न होते हैं, इसलिए ओषधि देना मानो एक और रोग उत्पन्न करना है। ओषधियोंसे एक रोग तो अवश्य दब जाता है, पर और अनेक रोग उत्पन्न भी हो जाते हैं। क्या कारणोंसे कारण दूर हो सकता है? क्या विष निकालनेमें विष सहायक हो सकता है? क्या विकारोंसे विकार नष्ट हो सकते हैं? कदापि नहीं।" विषोंसे रोगोंको अच्छा करनेकी आशा रखना भूतोंसे मुरादें माँगना है।

दस्त, कै, या पसीना आदि लानेवाली दवाओंके विषयमें अवश्य ही यह कहा जा सकता है कि वे बहुतसे विकृत पदार्थ शरीरसे बाहर निकाल देती हैं, पर उनका भी

कुछ न कुछ दूषित अंश शरीरमें रह ही जाता है। जुलाब लेनेसे लाभके अतिरिक्त होनेवाली हानियां भी कम नहीं हैं। इन हानियोंका अनुभव उन लोगोंको और भी अच्छी तरह हो जाता है जो सालमें एक या दो बार नियमित रूपसे जुलाब लेनेके अभ्यस्त हैं। दस्त, कै या पसीने आदिके मार्गसे जो विकार ओषधियोंकी सहायतासे शरीरके बाहर निकाला जाता है, वही विकार जल-चिकित्साके कई उपायोंसे भी, शरीरको बिना किसी प्रकारकी हानि पहुँचाये ही, निकाला जा सकता है।

ओषधियोंके विषयमें यह कहा जाता है कि वे शरीरके भीतर उसके भिन्न-भिन्न अंगों—मस्तक, पेट, आंत, गुरदे, जिगर, चमड़े आदि—पर अपना प्रभाव डालती हैं और उनके द्वारा दस्त, पेशाब, पसीने या कै आदिके रूपमें शरीरके विकृत पदार्थोंको बाहर निकालती हैं। पर डाक्टर ट्रालका मत है कि ओषधिका शरीरपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वास्तवमें हमारी प्रकृति स्वयं उन्हीं ओषधियोंको जितने सहज मार्गसे शरीरके बाहर निकाल सकती है, निकाल देती है; और लोग उन्हीं ओषधियोंको उन अंगोंपर प्रभाव डालनेवाली बतलाते हैं। जिस ओषधिको हमारी प्रकृति कै द्वारा सहजमें बाहर निकाल सकती है वह ओषधि कै लानेवाली समझी जाती है और जिस ओषधिको हमारी प्रकृति दस्तोंके द्वारा बाहर निकालना उत्तम समझती है उसीको लोग दस्तावर समझ लेते हैं। वास्तवमें ओषधियोंका शरीरपर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता।

पौष्टिक औषधें

जिस समय लोग अपने आपको रोगी नहीं समझते, उस समय भी वे अपनी दुर्बलता दूर करने और बल बढ़ानेके लिए तरह-तरहकी पौष्टिक ओषधियां खाते हैं। यूरोप अमेरिका आदिमें पौष्टिक औषधोंका मुख्य और सारभाग स्पिरिट या एल्कोहल होता है और इस देशमें अफीम आदि। तात्पर्य यह कि सभी स्थानोंमें किसी न किसी प्रकारका मादक विष ही शक्ति-वृद्धिके लिए अनेक रूपोंमें खाया जाता है। अन्य

* स्थानाभावसे इस सम्बन्धमें यहां प्रमाण आदि नहीं दिये जा सकते हैं। जो लोग प्रमाण आदि जानना चाहें वे डा० ट्राल कृत 'Water Cure For the Millions' नामक ग्रन्थ देख सकते हैं। —लेखक।

औषधोंकी अपेक्षा पौष्टिक ओषधियां मनुष्यके शरीरको और भी अधिक हानि पहुँचाती हैं। साधारणतः लोगोंकी यह धारणा है कि ऐसे मादक द्रव्योंका शरीरपर बलकारक प्रभाव पड़ता है, पर वास्तवमें होता यह है कि शरीरको बलपूर्वक उन विषोंका विरोध करना पड़ता है। इसमें सन्देह नहीं कि आपको बहुतसे ऐसे दुबले-पतले आदमी मिलेंगे जो यह कहते हों कि अमुक पौष्टिक औषधने बहुत गुण दिखाया और मैं उसके सेवनसे बराबर अच्छा हो रहा हूँ। पर सच पूछिए तो उनके शरीरपर उन ओषधियोंका प्रभाव बिलकुल उलटा पड़ता है। पौष्टिक औषधके सेवनके समय और उसके कुछ समय बाद तक तो मनुष्य अपने आपको अवश्य अच्छा समझता और कई कारणोंसे वह कुछ अच्छा भी हो जाता है; पर उसका अन्तिम परिणाम बहुत ही नाशक होता है। परीक्षासे यह बात सिद्ध हो चुकी है कि मादक द्रव्योंसे न तो मस्तिष्क पुष्ट होता है और न रग-पट्ठे आदि। जब पौष्टिक पदार्थोंका सेवन आरम्भ किया जाता है, तब कुछ समयके लिए उसमेंके मादक द्रव्य दुर्बल अंगोंको फुर्तीला बना देते हैं और चित्तको थोड़ा बहुत प्रफुल्लित कर देते हैं, पर शरीरके अंगोंका वास्तविक पोषण उनसे हो ही नहीं सकता। इसके अतिरिक्त मादक द्रव्योंमें एक और गुण होता है जिसका परिणाम कुछ दिनों बाद मालूम होता है। वह हमारे शरीरके बहुतसे आवश्यक द्रव्योंका बुरी तरह नाश करते हैं और फलतः शरीरके लिए बहुत ही घातक होते हैं। इस प्रकार पौष्टिक औषधोंका प्रभाव हमारे शरीरपर दो प्रकारसे पड़ता है। एक बार तो वे कुछ समयके लिए अपने उत्तम गुण दिखलाती हैं और तदुपरान्त सदा शरीरमें घुन या विषकी तरह बनी रहती हैं। एक बड़े डाक्टरने ऐसी औषधोंकी उपमा जलती हुई आगसे दी है उस समय उसका दृश्य तो बहुत भला मालूम होता है, पर उसके जल-बुझनेके बाद राख ही राख बच रहती है!

बहुतसे लोगोंका यह विश्वास है और अनेक डाक्टर और वैद्य आदि भी यही कहा करते हैं कि पौष्टिक औषधें पाचन-शक्तिको बढ़ाती हैं; पर यह विश्वास भी बहुत ही भ्रमपूर्ण और मिथ्या है। पाचन-शक्तिका जितना अधिक नाश मादक द्रव्योंसे होता है, उतना और दूसरे द्रव्योंसे हो ही नहीं सकता। शराब पीने या अफीम आदि खानेवाले लोगोंकी पाचन-शक्ति सदा बहुत मन्द रहती है। बहुधा शराबी रातको शराब पीनेके बाद दूसरे दिन या तो भोजन नहीं करते और या बहुत थोड़ा भोजन करते हैं। अफीमची तो सदा ही बहुत कम खाया करते हैं।

भारतमें बहुधा अपढ़ ब्राह्मण निमंत्रण आदिके समय खूब भाँग पीते हैं। यह ठीक है कि कुछ लोगोंको भाँग पीने पर बहुत भूख लगती है और सेरों अन्न खा जाते हैं, पर वही भाँग पीनेवाले सदा इस बातकी शिकायत करते हुए भी देखे जाते हैं कि भाँग खिला तो बहुत कुछ देती है, पर पचा कुछ भी नहीं सकती। पचावे कहाँसे ? मादक द्रव्योंसे तो पाचन क्रियामें बाधा मात्र होती है। एक डाक्टरने तो एल्कोहल्की केवल इसी लिए निन्दा की है कि उससे भूख तो बढ़ जाती है पर खाया हुआ पदार्थ नहीं पचता।

मादक द्रव्योंका एक यह भी गुण बतलाया जाता है कि उनसे शरीरमें गरमाहट रहती है, पर यह कथन भी नितान्त निरर्थक है। डाक्टर रिचर्डसनने मद्यपानपर एक पुस्तक लिखी है। उसमें एक स्थानपर आपने लिखा है....“किसी पशुको कोई मादक द्रव्य खिलाकर उसके शरीरकी परीक्षा कीजिए तो आपको मालूम हो जायगा कि मादक द्रव्यने उस पशुके सारे शरीरकी उष्णता कम कर दी है। उसके शरीरके ऊपरी भागमें अवश्य थोड़ी बहुत गरमी जान पड़ेगी; पर वास्तवमें इस गरमीका मुख्य कारण यह है कि उस समय सारा शरीर ठंढा होता जाता है। हृदयसे कुछ गरम खून चलता है और शरीरकी ऊपरी तहके पास पहुँचकर उसे अपनी उष्णता त्यागने और शरीरको ठंढा करनेके लिए विवश करता है। फल यह होता है कि शारीरिक शक्तियाँ मन्द पड़ जाती हैं, अंग ढीले हो जाते हैं, जो हृदय आरंभमें जल्दी जल्दी चलता था वह जकड़ जाता है, जो मस्तिष्क पहले उत्तेजित हो उठा था वह अब बेकाम हो जाता है और मन दुर्बल हो जाता है।”

तात्पर्य यह कि मादक द्रव्योंसे हमारे शरीरका किसी प्रकार पोषण नहीं हो सकता और न वैज्ञानिक दृष्टिसे मनुष्य अपने शरीरके लिए उसका उपयोग कर सकता है। एक डाक्टरका मत है—“मादक द्रव्य हमारे शरीरमें प्रवेश करके बहुत उपद्रव करते हैं और अन्तमें अपना बहुत कुछ दुष्परिणाम बाकी छोड़कर स्वयं ज्योंके त्यों हमारे शरीरसे बाहर निकल जाते हैं। वे द्रव्य कभी पच नहीं सकते और न शरीरमें पहुँचनेपर उनमें किसी प्रकारका परिवर्तन होता है।”*

---

* जो लोग इस संबन्धमें और अधिक बातें जानना चाहते हों उन्हें डा० ट्रालकी लिखी हुई “The True Temperence Plet-form” और “The Alcoholic Controversy”, नामक पुस्तकें देखनी चाहिए।

मादक द्रव्योंसे जिन्हें हम पौष्टिक समझ कर खाते हैं हमारे शरीरका वास्तवमें बहुत कुछ अपकार होता है। हम उन्हें जितना पौष्टिक समझते हैं, वे वास्तवमें उतने ही घातक होते हैं। मादक द्रव्य हमारे शरीरके भीतर पहुँचकर उसकी शक्तिका नाश आरंभ करते हैं। यदि थोड़ी मात्रामें कोई मादक द्रव्य हमारे शरीरमें पहुँच जाय तो उसका आक्रमण रोकनेके लिए हमारे शरीरको कम परिश्रम करना पड़ता है—थोडी शक्ति लगानी पड़ती है, और यदि उसकी मात्रा अधिक हो तो हमारे शरीरको भी उतना ही अधिक बल लगाना पड़ता है। उस घातक द्रव्यसे अपना पिंड छुड़ानेके लिए हमारे शरीरको जितना अधिक बल लगाना पड़ता है उसीको हम भ्रमसे बल-वृद्धि समझ लेते हैं। मादक द्रव्योंमेंसे कोई नई शक्ति निकलकर हमारी शक्तिमें मिल नहीं जाती, उससे तो हमारी पुरानी शक्ति भी क्षीण होने लगती है। क्योंकि उसे शरीरसे बाहर निकालनेमें हमें अपनी बहुतसी शक्तिका वृथा उपयोग करना पड़ता है।

बहुतसे डाक्टर आदि मादक द्रव्योंके इन दोषोंको जानते हुए भी कहते हैं कि बहुत दुर्बल लोगोंके लिए पौष्टिक औषधें लाभदायक होती हैं, उनसे दुर्बलोंका बल बढ़ता है। पर वे लोग यह विचार करनेकी आवश्यकता नहीं समझते कि जो पदार्थ सबल और नीरोग पुरुषोंको इतनी हानियाँ पहुँचाते हैं, वे ही दुर्बलोंका क्या उपकार कर सकेंगे। मादक द्रव्य तो विष हैं, उनका प्रभाव और कार्य सदा घातक ही होगा। सबलों और नीरोगोंकी अपेक्षा दुर्बलों और रोगियोंपर तो उनका प्रभाव और भी बुरा होगा।

औषधोंपर कुछ सम्मतियाँ

ऊपर जो लिखा गया है उसे पढ़कर प्रत्येक समझदार आदमी अच्छी तरह समझ लेगा कि औषधोंसे मनुष्यके शरीरमें केवल नये रोग ही होते हैं। उक्त बातें केवल मन-गढ़न्त ही नहीं हैं बल्कि बड़े बड़े डाक्टरोंके अनुभवका सार हैं। इस स्थानपर औषधोंके संबन्धमें कुछ बड़े बड़े डाक्टरोंकी सम्मतियाँ संक्षेपमें दे देना अनुचित न होगा। नीचे जिन डाक्टरोंकी सम्मतियाँ दी गई हैं वे डाक्टर बड़े बड़े डाक्टरी

कालेजोंके अध्यापक हैं और बहुत दिनोंसे औषधों द्वारा ही चिकित्सा करते हैं। अतः औषधोंके दोष सिद्ध करनेके लिए उनके कथनसे बढ़कर और कोई प्रमाण नहीं हो सकता।

डा० स्टेफेन्स कहते हैं कि—नया डाक्टर समझता है कि मेरे पास प्रत्येक रोगके लिए बीस औषधें हैं; पर तीस वर्ष तक चिकित्सा करनेके बाद उसकी समझमें आता है कि प्रत्येक औषधसे बीस रोग उत्पन्न होते हैं। इस उन्नत कालमें भी रोगियोंकी यातना पहलेकी तरह ही ज्योंकी त्यों है। उसका कारण यही है कि डाक्टर लोग प्रकृतिका मनन न करके अपने पूर्वजोंके लेखोंका ही अध्ययन करते हैं। प्रो० पेनका मत है कि शरीरमें औषधें भी वही काम करती हैं जो काम स्वयं रोगों के कारण करते हैं। अधिक औषधें भी रोग ही उत्पन्न करती हैं। एक स्थलपर आपने यह भी कहा कि एक नया रोग पैदा करके हम पहलेवाले रोगको अच्छा करते हैं।

प्रो० क्लार्क कहते हैं कि,—चिकित्सकोंने रोगियोंको लाभ पहुँचानेकी धुनमें उल्टे बहुत कुछ हानि पहुँचाई है। उन्होंने हजारों ऐसे रोगियोंके प्राण लिये हैं जो यदि प्रकृतिपर छोड़ दिये जाते तो अवश्य नीरोग हो जाते। जिन्हें हम औषध समझते हैं वे वास्तवमें विष हैं और उनकी प्रत्येक मात्रासे रोगीका बल घटता है। प्रो० काक्सका मत है कि रोगीको जितनी ही कम औषधें दी जायँ उसका उतना ही अधिक उपकार होता है। प्रो० स्मिथने कहा है—औषधोंसे कभी रोग अच्छे नहीं होते, उन्हें स्वयं प्रकृति अच्छा करती है। डा० रशने लिखा है—चिकित्सकोंने रोगोंकी संख्या और साथ ही उनकी भयंकरता भी बढ़ाई है। डा० सैंडलर कहते हैं कि एल्कोहल और दूसरी बहुतसी औषधियाँ केवल रोग ही उत्पन्न करती हैं। औषधोंसे शारीरिक शक्तिका नाश होता है।

प्रो० पारकरने कहा है—मैंने कई रोगोंमें औषधियोंका प्रयोग नहीं किया जिसका फल बहुत ही अच्छा हुआ। अब मुझे निश्चय हो गया है कि औषधियोंकी अपेक्षा प्रकृतिसे मनुष्यके नीरोग होनेमें बहुत सहायता मिलती है।

भारतमें बहुत दिनोंसे माता या चेचकका कभी कोई इलाज नहीं किया जाता। पर पाश्चात्य डाक्टरोंने यह तत्त्व बहुत हालमें समझा है। तो भी जब चेचकका बहुत अधिक प्रकोप होता है, तब बहुतसे डाक्टर कुछ चिकित्सा आरम्भ कर देते हैं।

अमेरिकाके एक प्रान्तके हेल्थ आफिसर डा० ह्लोने अपने देशके डाक्टरोंको एक समाचार-पत्र द्वारा यह सूचना दी थी कि मैंने विना किसी प्रकारकी ओषधिके उपयोगके ही माताके बड़े बड़े रोगियोंको बिलकुल चंगा कर दिया है। डा० एम्सने बहुतसे रोगियोंके मरनेपर उनकी लाशोंको चीरकर देखा तो उन्हें शरीरके भीतरी भागोंमें अनेक ऐसे रोग मिले जिन्हें ओषधिजन्यके अतिरिक्त और कुछ कह ही नहीं सकते थे। इस कारण उन्होंने ओषधियोंका व्यवहार छोड़ दिया। जबसे वह प्राकृतिक चिकित्सा करने लगे तबसे उनका एक भी रोगी न मरा और परीक्षाके लिए उन्हें शव मिलना कठिन हो गया।

डा० ओलेरीका मत है कि रोगोंका नाश करनेमें सबसे अधिक सहायता उन्हीं लोगोंसे मिली है जिन्होंने किसी डाक्टरी कालेजकी कोई परीक्षा नहीं दी है और न कोई डिप्लोमा पाया है। अनेक प्रकारकी प्रचलित प्राकृतिक चिकित्सायें ऐसे ही लोगोंकी निकाली हुई हैं; जो चिकित्सा-शास्त्रसे एकदम अनभिज्ञ थे। प्रो० एमर्सनका मत है कि चिकित्सा-सबन्धी बहुतसी कामकी बातें हम लोगोंको साधारण आदमियोंसे ही मिलती हैं; हम लोग तो खाली ग्रीक और लैटिन नाम रखना जानते हैं। डा० होम्स कहते हैं—ओषधियाँ आदि तैयार करनेके लिए द्रव्य निकालकर व्यर्थ खानें खाली की जाती हैं, वनस्पतियोंका सत्तानाश किया जाता है और साँपोंके जहर निकाले जाते हैं। अगर सब ओषधियाँ समुद्रमें फेंक दी जातीं, तो मनुष्यजातिका बड़ा उपकार होता। हाँ, मछलियोंको उससे अवश्य बहुत हानि पहुँचेगी। डा० पेट्रिक लिखते हैं—अनुभवकी कसौटीपर ओषधियाँ पूरी नहीं उतरती हैं। दिन पर दिन उनकी निरर्थकता ही सिद्ध होती जाती है। जीवनके किसी प्राकृतिक विकारके विरुद्ध किसी ओषधिका प्रयोग करना दिल्लगी नहीं तो और क्या है? ज्यों ज्यों डाक्टर और रोगी समझदार होते जाते हैं, त्यों त्यों वे समझते जाते हैं कि ओषधियोंपर निर्भर नहीं रहना चाहिए।

ऊपर जितने डाक्टरोंके नाम दिये गये हैं, वे सब अमेरिकाके हैं। अब अँगरेजी साम्राज्यके कुछ डाक्टरोंकी सम्मतियाँ सुनिए। डा० इवान्स कहते हैं कि इस उन्नति-कालमें भी ओषधियोंके गुण निश्चित और संतोषप्रद नहीं हैं। डा० अबरनेकी कहते हैं कि चिकित्सकोंकी संख्या बढ़नेके साथ ही साथ रोगोंकी संख्या भी उसी मानमें बढ़ती जाती है। सर माइकेलका मत है कि रोगोंके मूल कारण नष्ट

ओपधियाँ पहुँच ही नहीं सकतीं ।। डा० राबिन्सनका कथन है कि आज कलके व्यवहारमें ओपधिका गुण विज्ञान, प्रारब्ध और भ्रमके विलक्षण मिश्रणपर अवलम्बित है। डा० कूपरका सिद्धान्त है कि ओपधियोंपर जिसका जितना विश्वास हो उसे उतना ही अज्ञानी समझना चाहिए। लन्दनके रायल कालेजके फेलो डा० रैमजे कहते हैं कि आजकलकी ओपधि-चिकित्सा बड़े-बड़े प्रोफेसरोंके लिए बहुत ही लज्जास्पद होनी चाहिए। विचार करके देखिए कि हमारी ओपधियोंसे कितना कम लाभ होता है और रोगीकी दशा कितनी अधिक बुरी हो जाती है। मैं निर्भय होकर कह सकता हूँ कि बिना चिकित्साके रोगीकी दशा अपेक्षाकृत बहुत अच्छी रहती है। प्रोफेसर जेम्सन कहते हैं कि विज्ञानके नामपर आजकलके चिकित्सा करनेवाले प्रकृति और रोगी वास्तविक चिकित्सा-प्रणालीसे एकदम अनभिज्ञ होते हैं। इसमें नौ ओपधियाँ रोगियोंके लिए बहुत ही हानिकारक होती हैं। डब्लिन मेडिकल जनरलमें एक बार प्रकाशित हुआ था कि आजकल जिसे चिकित्सा-विज्ञान कहते हैं, वह नामको भी विज्ञान नहीं है। वह तो अट-कलपच्चू सिद्धान्तों, भ्रमपूर्ण कल्पनाओं और अस्थिर सम्मतियोंका खजाना है। सर फोर्बसका मत है कि रोग या चिकित्साके सम्बन्धमें अभीतक कोई सिद्धान्त ठीक नहीं निकला। कुछ रोगी ओपधियोंकी सहायतासे अच्छे होते हैं, बहुतसे रोगी ओप-धियाँ खाकर भी केवल आपसे आप ही अच्छे हो जाते हैं, और बहुत अधिक रोगी बिना किसी प्रकारकी ओपधिके ही अच्छे हो जाते हैं। डा० फ्रांकको डाक्टरोंके हाथसे इतने अधिक रोगियोंको मरते हुए देखकर अन्तमें कहना पड़ा था कि सर-कार या तो इन डाक्टरोंको न रहने दे और उनकी नष्ट चिकित्साप्रणाली रोक दे और या लोगोंके जीवनकी रक्षाका कोई नया उपाय निकाले। डा० बोस्टाक, जिन्होंने, 'ओपधियों का इतिहास' नामक एक बड़ा ग्रन्थ लिखा है, कहते हैं — हम ओपधियोंका जितना अधिक प्रयोग करते हैं, हमारा ज्ञान या अनुभव उतना अधिक नहीं बढ़ता। ओपधिकी प्रत्येक मात्रा रोगीकी संजीवनी शक्तिपर एक अन्ध प्रयोग और अनुभव मात्र है। डा० सर जानगुड, जिन्होंने प्रकृति और ओपधि आदिके सम्बन्धमें कई अच्छे अच्छे ग्रन्थ लिखे हैं, कहते हैं—हमारी ओपधियोंका प्रभाव अत्यन्त अनिश्चित है। युद्ध, महामारी और अकाल आदिके कारण अब तक सब मिलाकर जितने मनुष्य मरे हैं; उनसे कहीं अधिक ओपधियोंके प्रयोगसे मरे हैं। प्रो० वाटर

हाउस कहते हैं कि शिक्षित चिकित्सकोंकी अपेक्षा उन अशिक्षित चिकित्सकोंपर मेरा कहीं अधिक विश्वास है कि जिनकी चिकित्सा केवल अनुभवपर निर्भर होती है। सभी देशों और समयोंमें उन लोगोंने समस्त विश्वविद्यालयोंसे कहीं अधिक बढ़कर काम किया है। डाक्टर जानसन, जो चिकित्सा-संबन्धी एक प्रतिष्ठित पत्रके सम्पादक हैं, कहते हैं—अपने बहुत दिनोंके अनुभवसे मैं यह बात कह सकता हूँ कि यदि संसार में कोई चिकित्सक, जर्राह, अत्तार या दवा बेचनेवाला न होता, तो आजकलकी अपेक्षा रोग बहुत ही कम हो जाते और मृत्यु-संख्या भी बहुत घट जाती *। पेरिसके डाक्टर लेगोल कहते हैं—इस समय हम लोग बड़ी ही भूल कर रहे हैं और यदि हम सफलता प्राप्त करना चाहते हों, तो हमें अपना मार्ग बदल देना चाहिए।

एडिनबरामें प्रोफेसर जान कर्क नामक एक चिकित्सक हैं, जिन्होंने चालीस वर्ष तक चिकित्सा करनेके उपरान्त ओषधियोंकी निरर्थकता समझी और तब बिना ओषधियोंके चिकित्सा आरम्भ की। आपका मत है कि डाक्टरी कालेजोंमें विद्यार्थियोंकी बुद्धि नष्ट कर दी जाती है और उन्हें प्राकृतिक प्रणालियों का अध्यन करनेके लिए इतना अयोग्य बना दिया जाता है कि उन्हें फिरसे उनके योग्य बननेमें कठिन परिश्रमपूर्वक अपना आधा जीवन बिता देना पड़ता है। सर कूपरका मत है कि ओषधिविज्ञानकी उत्पत्ति मिथ्या कल्पना और दिनपर दिन बढ़ती हुई हत्याएँ हुई है। प्रो० माहका मत है कि समस्त विज्ञानोंमें ओषधि-विज्ञान सबसे अधिक अनिश्चित है। एडिनबराके मेडिकल कालेजके प्रो० ग्रेगरीने कहा है कि चिकित्सा-शास्त्रमें जिन बातोंको सत्य माना जाता है उनमेंसे ९९ प्रति सैकड़े मिथ्या हैं और उसके सिद्धान्त बिलकुल ही भोंड़े और भद्दे हैं। प्रो० कार्सन कहते हैं, हम यह नहीं जानते कि रोगी हमारी ओषधियोंसे अच्छे होते हैं या प्रकृतिसे। सम्भवतः उन्हें रोटीरूपी गोलियाँ

---

* एक बार एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक उत्तरीय ध्रुवके आसपासके प्रदेशोंसे लौटकर आया था। उसके एक मित्रने उससे कहा—"बड़े आश्चर्यकी बात है कि आप कहते हैं कि उन प्रदेशोंमें एक भी चिकित्सक नहीं है और वहाँ बहुतसे लोग सौ वर्षकी आयुतक पहुँच जाते हैं।" वैज्ञानिकने उत्तर दिया—"यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। आश्चर्यकी बात तो यह है कि इन देशोंमें इतने चिकित्सकोंके रहते हुए भी कुछ लोग ही सौ वर्षकी आयुतक पहुँच पाते हैं।"

अच्छा करती हैं। सर रिचर्डसनने कहा है कि ओषधियोंके व्यवहारसे सभ्य लोगोंकी आयु बहुत ही कम हो गई है। डा० टाइट्सनका मत है कि संसार में तीन-चौथाई आदमी दवाओंके नुसखोंसे मरते हैं। फ्रान्सके प्रसिद्ध शरीर-शास्त्रवेत्ता मैंगेडिक कहते हैं कि ओषधियोंके विषयमें संसारमें किसीको कुछ भी ज्ञान नहीं है। रोगको दूर करनेमें बहुत कुछ सहायता प्रकृतिसे ही मिलती है; डाक्टरोंसे बहुत ही थोड़ी सहायता मिलती है और वह भी उस दशामें जब वे किसी प्रकारकी हानि न पहुँचावें। डाक्टर ओसलर जो कई विश्वविद्यालयोंमें चिकित्सा-शास्त्रके अध्यापक रह चुके हैं और जो ओषधि-शास्त्रके सबसे बड़े ज्ञाता माने जाते हैं, ओषधि-चिकित्साकी निन्दा और बिना ओषधिकी चिकित्साकी प्रशंसा करते हुए एनसाइक्लोपीडिया एमिरिकानामें लिखते हैं कि ओषधियोंकी निरर्थकताका सबसे अच्छा प्रमाण यह है कि उन्नीसवीं शताब्दीके आरंभमें टायफाइड ज्वरकी चिकित्सामें बड़ी-बड़ी भयकर और उग्र ओषधियोंका प्रयोग होता था। रोगीकी फसद खोली जाती थी, उसके शरीरपर छाले डाले जाते थे और तरह-तरहके भीषण उपाय किये जाते थे। पर आजकलके रोगियोंको विशेष प्रकारसे स्नान कराया जाता है और उन्हें कदाचित् ही कोई ओषधी दी जाती है। इससे यही सिद्धान्त निकाला जा सकता है कि ओषधियोंका उन रोगोंपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, जिनके लिए उनका व्यवहार किया जाता है। अन्तमें आपने कहा कि वही सबसे अच्छा चिकित्सक है, जो ओषधियोंको निरर्थक समझता है।

प्राकृतिक चिकित्सा

इन पृष्ठोंके पढ़नेके उपरान्त पाठकोंके मनमें स्वभावतः यह प्रश्न उठ सकता है कि तब फिर रोगोंके शमनका सर्वोत्तम और निर्दोष उपाय कौनसा है? आजकल अनेक प्रकारकी चिकित्सा-प्रणालियाँ प्रचलित हैं, जिनमें ओषधियोंका प्रयोग बिलकुल नहीं होता, केवल ऊपरी उपचारोंसे रोगोंको शान्त किया जाता है। ये सभी प्रणालियाँ प्राकृतिक चिकित्साके नामसे अभिहित हैं और जल-चिकित्सा, उपवास-चिकित्सा, विद्युत्-चिकित्सा आदि अनेक प्रकारकी चिकित्सायें हैं। इनके अतिरिक्त मेस्मरिज्मके अनेक प्रकारोंसे भी रोगियोंकी चिकित्सा की जाती है। यद्यपि ये सभी चिकित्साएँ प्राकृतिक कहलाती हैं; तथापि सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेपर यह पता लग जाता

है कि इनमेंसे अधिकांशमें अनेक प्रकारकी ऐसी क्रियाओंकी आवश्यकता होती है जिन्हें कोई समझदार प्राकृतिक नहीं कह सकता। कुछ प्रणालियाँ अवश्य ऐसी हैं जो ठीक-ठीक अर्थमें प्राकृतिक कही जा सकती हैं और उपवास-चिकित्सा उनमेंसे सर्वश्रेष्ठ है। उपवास-चिकित्सामें न तो किसी प्रकारके ऊपरी उपचारकी आवश्यकता होती है और न किसी प्रकारके यंत्र-प्रयोगकी। इसमें आवश्यकता केवल इस बातकी होती है कि मनुष्य उस समय तकके लिए अपना भोजन छोड़ दे, जबतक कि उसे वास्तविक और स्वाभाविक भूख न लगे। इसके अतिरिक्त उपवास-कालमें मनुष्यकी शक्ति बनाये रखनेके लिए कुछ व्यायामका भी विधान है।

अब इस प्रणालीसे ओषधि-चिकित्साका मुकाबला कीजिए। दो ऐसे मनुष्योंको लीजिए जिनकी पाचन-शक्ति नष्ट हो गई हो। उनमेंसे एक मनुष्य तरह-तरहकी गोलियाँ खाकर, अवलेह चाटकर और दवाओंकी बड़ी-बड़ी बोतलें खाली करके अपनी भूख बढ़ाता है, और दूसरा मनुष्य केवल दो-चार दिनोंतक उपवास करके और सवेरे-सन्ध्या दो-चार मीलका चक्कर लगाके अपनी भूख ठीक कर लेता है। अब आप ही सोचिए कि दोनोंमेंसे फ़ायदेमें कौन रहा? दवाएँ खाकर अपने शरीरको भाड़ेका टट्टू बना लेनेवाला अथवा उपवास और व्यायाम करनेवाला? बड़े-बड़े डाक्टरोंने परीक्षा और अनुभव करके यह सिद्धान्त निकाला है कि किसी रोगकी औषधद्वारा चिकित्सा आरम्भ करते ही रोगीको कई तरहकी छोटी-मोटी शिकायतें पैदा हो जाती हैं। किसीको कब्जियत आ घेरती है, तो किसीके सिरमें दर्द होने लगता है। किसीकी नींद कम हो जाती है तो कोई दुर्बल और अशक्त हो जाता है। इस प्रकार प्रकृति तो हमें सूचना देती है कि हम उसके स्वभावके विरुद्ध काम करते हैं — उसके साथ निष्ठुरताका व्यवहार करते हैं, पर हम उसकी सूचनाओंपर ध्यान ही नहीं देते, जबरदस्ती उसका गला घोंटते चलते हैं, अन्तमें प्रकृति भी लाचार होकर अस्वाभाविक स्थितिमें पहुँच जाती है; और उस दशामें शरीर ऐसा निकम्मा हो जाता है कि बिना ओषधिकी सहायताके चल ही नहीं सकता। जब कुछ समयमें शरीर साधारण ओषधियोंका अभ्यस्त हो जाता है, तब उसे अधिक तीव्र ओषधियोंकी आवश्यकता होती है। यह क्रम बराबर बढ़ता चला चलता है और अन्तमें मनुष्यके प्राण लेकर ही छोड़ता है। पर जो मनुष्य उपवास करता, अथवा हल्की और जल्दी पचनेवाली चीजें खाता, स्वच्छ वायुमें रहता और खूब कसरत करता है, वह स्वयं आरोग्यताकी

किस स्थिति तक पहुँच सकता है इसका अनुभव प्रत्येक विचारवान् मनुष्यको स्वयं करना चाहिए। व्यायामसे शरीरमें नये बलकी उत्पत्ति होती है, रग-पट्ठे मजबूत होते हैं, फेफड़े, जिगर, गुरदे आदिके काम अधिक उत्तमतापूर्वक होने लगते हैं और सारे शरीरमें एक नई संजीवनी शक्ति आ जाती है। रोगीकी पाचन-शक्ति ठीक हो जाती है और उसे खूब खुलकर भूख लगती है। ओषधियाँ किसी एक रोगको दूर करके भी अपने बहुतसे बुरे प्रभाव और अंश छोड़ जाती हैं, पर प्राकृतिक चिकित्साकी ओषधियाँ—व्यायाम, शुद्ध वायु, हलका और सुपाच्य भोजन आदि—रोगको अच्छा करनेके अतिरिक्त शरीरके और दूसरे बहुतसे विकारोंको भी नष्ट कर देती हैं। इस प्रणालीमें रोगको बल-पूर्वक जहाँका तहाँ दबाया नहीं जाता, बल्कि उसका कारण दूर किया जाता है।

सुप्रसिद्ध डाक्टर ई० एच० डेवीने एक बार कहा था—"किसी रोगी मनुष्यके पेटमें भोजन न रहने दो; इससे वह रोगी नहीं बल्कि रोग भूखों मर जायगा।" और यह बात वास्तवमें है भी बहुत ठीक। उपवास-चिकित्साके सिद्धान्त इतने सरल, उपयोगी और लाभदायक हैं कि शरीर-शास्त्र-वेत्ता मात्र उससे सहमत हैं; सभी देशों और प्रकारोंके चिकित्सक किसी न किसी अवसर पर और किसी न किसी रूपमें उनके अनुसार काम करते हैं। संसारके सभी चिकित्सा-ग्रन्थोंमें उनका समर्थन होता है और यहाँतक कि पशु-पक्षी आदि भी अपने आचरणोंसे उन सिद्धान्तोंकी पुष्टि करते हुए देखे जाते हैं। उपवासके सिद्धान्तोंकी उपयोगिता समझनेके लिए इससे बढ़कर और क्या चाहिए?

शरीरकी क्रियापर उपवासका जो परिणाम होता है, उसके सम्बन्धमें बहुत कुछ इस पुस्तकके आरंभमें ही कहा जा चुका है। कैसे आश्चर्यकी बात है कि लोग बीच-बीचमें अपने कामसे स्वयं तो अवश्य छुट्टी ले लेते हैं, पर अपने शरीरको कभी छुट्टी नहीं देते। हाथ पैर या मस्तिष्कसे होनेवाले कामोंको छोड़ देना ही वास्तवमें शरीरको छुट्टी देना नहीं है, क्योंकि उस समय शरीरकी भीतरी मशीनको आराम करनेका अवसर नहीं मिलता। हम अपने दिमागके साथ भले ही कभी-कभी थोड़ी-बहुत रियायत कर दिया करते हों; पर अपने पेटके साथ हम कभी रियायत नहीं करते और पेटसे सदा काम लेते रहना ही सब प्रकारके रोगोंकी जड़ है।

धर्म्म-ग्रन्थ और उपवास

संसारमें प्रायः जितने मुख्य मत, धर्म्म या सम्प्रदाय हैं, सबमें किसी न किसी प्रकारके उपवास या व्रतकी आज्ञा दी गई है। पहले भारतीय धर्म्मोंको ही लीजिए। हिन्दुओंके धर्म्म-शास्त्रोंमें भिन्न-भिन्न पुण्य-तिथियों और पर्व्वोंको छोड़कर प्रत्येक एकादशी, प्रदोष और रविवार आदिके लिए व्रतका विधान है। हिन्दुओंके समस्त व्रतोंकी संख्या ५५९ से ऊपर है। अधिकांश व्रतोंमें अन्न मात्रका स्पर्श न करने और बहुधा एक बार थोड़ासा फलाहार करनेकी आज्ञा है। इन सब व्रतोंके मूलमें केवल एक ही सिद्धान्त है और वह सिद्धान्त पाचन-क्रियाको ठीक अवस्थामें रखना अथवा लाना है। आजकल लोग व्रत तो करते हैं, पर इस सिद्धान्त का गला इतनी बुरी तरहसे घोटते हैं कि उनके व्रतका फल व्रत न रखनेसे भी अधिक हानि कारक होता है। जिस व्रत में केवल एक बार और वह भी बहुत थोड़े मानमें फल आदि ही खानेका विधान है, उस व्रतमें लोग सिंघाड़े और कूटके आटेकी पूरियाँ, तरह तरहकी पकौड़ियाँ, दस-पाँच तरहकी तरकारियाँ, दो-तीन तरहके हलुए और कई तरहकी मिठाइयाँ खा जाते हैं और ऊपरसे जहाँतक अधिक हो सकता है, दूध-रबड़ी और मलाईका भी सत्यानाश करते हैं। रोजसे तिगुना भोजन केवल इसीलिए होता है कि उस दिन वे लोग व्रत रहते हैं—उपवास करते हैं। इसमें दोष लोगोंका ही है, धर्म्म-ग्रन्थोंमें उनकी आज्ञा केवल हित और, कल्याणकी दृष्टिसे दी गई है। इसके अतिरिक्त हमारे धर्म्मग्रन्थों में निर्जल और चान्द्रायण आदि अनेक प्रकारके दूसरे व्रत भी हैं जिनमें किसी प्रकारके नियमोल्लंघनकी भी सम्भावना नहीं होती। भारतमें पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियाँ ही अधिक व्रत करती हैं और यही कारण है कि यहाँकी स्त्रियाँ साधारणतः उन रोगोंसे मुक्त रहती हैं जिनके कारण मर्द परेशान रहते हैं। कब्जियत और अपचन आदि रोग स्त्रियोंको बहुत कम होते हैं। जैनियोंके धर्म्मग्रन्थोंमें केवल अनेक प्रकार के उपवासोंका ही विधान नहीं है बल्कि बहु-काल-व्यापी उपवासोंका भी विधान है। उनके उपवास सप्ताहों नहीं बल्कि महीनों तक चलते हैं और बहुतसे अंशोंमें उन उपवासोंसे मिलते-जुलते होते हैं जो आजकलके पाश्चिमात्य उपवास-चिकित्सक अपने रोगियोंको कराते हैं। मुसल्मानोंको रमजानके महीनेमें तीस दिनों तक अपने धर्म्मग्रन्थके आज्ञानुसार बराबर रोज़े रखने पड़ते हैं। रोज़ेके दिन वे बहुत

सवेरे ब्राह्म-मुहूर्त्तमें भोजन कर लेते हैं और फिर दिन भर कुछ नहीं खाते; रोजा सूर्य्यास्तके बाद ही खुलता है। ईसाइयोंके धर्म्मग्रन्थोंमें भी उपवासकी स्पष्ट आज्ञा है। वे उपवासके दिन कुछ विशिष्ट पदार्थ ही खाते हैं और बहुधा कई कई दिनों तक उपवास रखते हैं। तात्पर्य यह कि सभी प्रधान और प्राचीन धर्मोंमें उपवासका विधान है और उनके ग्रन्थोंके अनुसार शरीर, मन और आत्मा तीनोंके लिए उपवास बहुत ही लाभदायक है।

जो धर्म्म बहुत हाल के चले हुए हैं, उनमें अवश्य ही उपवासकी आज्ञा नहीं है और इसका कारण भी बहुत स्पष्ट है। बहुत प्राचीन कालमें, जब कि मनुष्य-पर सभ्यताका रंग नहीं चढ़ा था, वह केवल प्राकृतिक जीवन व्यतीत करता था। उस समय उसे प्रकृतिके नियमोंका बहुत कुछ सहज और स्वाभाविक ज्ञान रहता था और वह कभी यथासाध्य प्रकृतिके नियमोंका उल्लंघन न करता था। अनेक प्राचीन जातियोंके विषयमें अनुसन्धान करने पर पता चला है कि वे आठ पहरमें केवल एक बार और वह भी बहुत अल्प भोजन करती थीं। मनुष्य-जातिमें अधिक भोजन करनेका रोग बहुत बादमें फैला है। पर प्राचीन कालमें प्रायः सभी देशोंके लोग विशेषतः धर्मिष्ठ लोग बहुत थोड़ा भोजन करते थे और प्रायः लम्बे चौड़े उपवास किया करते थे। किसी देश और किसी धर्म्मके साधु, सन्त और महात्माको लीजिए, उसके सम्बन्धमें यह बात अवश्य प्रसिद्ध होगी कि उसने इतने दिनोंके और इतने उपवास किये थे। भारतके प्राचीन ऋषियोंकी तपस्याका उपवास एक प्रधान अंग था। बड़े बड़े धर्म्माचार्य्य स्वयं बहुत दिनों तक उपवास करके अपने अनुयायियों और भक्तोंको उसके लाभ बतलाते थे और स्वयं उसके आदर्श बनते थे। पर आजकल जो लोग धार्मिक दृष्टिसे उपवास करते हैं, प्रायः सभी देशोंमें उन्हें धर्म्मान्ध बतलाया जाता है और उनकी हँसी उड़ाई जाती है। इसका कारण यही है कि आजकल लोग प्राकृतिक नियमोंसे एकदम अनभिज्ञ हो गये हैं। जो लोग अन्नको ही प्राण समझते हैं उन्हींकी आँखें खोलनेके लिए उपवासके सिद्धान्तोंका फिरसे प्रचार होने लगा है।

इतिहास और उपवास

किसी देश और कालके इतिहासमें ऐसे लोगोंकी कमी नहीं है जो उपवास-सिद्धान्तके बड़े समर्थक और पोषक हों। भारतीय इतिहास तो ऐसे लोगोंसे भरा ही पड़ा है; अन्य देशोंमें भी ऐसे लोगोंकी संख्या कम नहीं है। अरब देशमें एक बहुत बड़ा चिकित्सक हो गया है जो बिना किसी प्रकारके ओषधि-प्रयोगके चिकित्सा करता था और रात-रातभर रोगियोंके बिस्तरोंके पास केवल इसी लिए पहरा दिया करता था कि जिसमें वे कुछ खा न लें। ईसाई पादरी और धर्म्माचार्य बहुधा नगरोंसे बाहर निकलकर जंगलोंकी ओर चले जाते थे और किसी प्रकारका आहार न करते थे। व्रत-भंग होनेके भयसे वे एक दाना भी मुँहमें न डालते थे और डेढ़-दो महीने बाद भी उनमें इतनी शक्ति रहती थी कि वे उन जंगलोंसे पैदल चलकर अपने अपने मठ तक पहुँच जाते थे। एक बार एक ईसाई महात्माकी एक मित्र स्त्री मर गई। वह महात्मा उसके वियोगसे इतना दुखी हुआ कि उसने अपने जीवनका अन्त कर देना निश्चय किया। और किसी प्रकारकी आत्म-हत्याको तो उसने उचित न समझा; पर वह एक पहाड़की चोटीपर चला गया और वहाँ पहुँचकर उसने अन्न-जल छोड़ दिया। उसे आशा थी कि इस प्रकार बिना अन्न-जलके रहनेसे प्राण अवश्य निकल जायँगे। पर उसकी वह आशा पूरी नहीं हुई और वह बिना अन्न-जलके सत्तर दिनों तक जीता रहा। इतने दिनोंमें उसका दुःख भी कम हो गया और उसके मनमें ज्ञान भी उपजा। इसके उपरान्त दिनमें उसने एक-एक तोला भोजन करना आरम्भ किया। इसके बाद उसका स्वास्थ्य पहलेकी अपेक्षा बहुत सुधर गया। वह चौदह वर्षोंतक जीवित रहा और उसने अनेक मठ आदि स्थापित किये। आजकल भी यह देखा गया है कि खानोंमें काम करनेवाले कुली केवल पानी पीकर ही आठ दस दिनों तक रहते हैं और बिना अन्नके बराबर काम करते रहते हैं। बहुतसे मल्लाहोंने बिना भोजनके गरमसे गरम देशोंमें आठ आठ और दस दस दिन बिता दिये हैं।

पशु और उपवास

उपवासकी उपयोगिता सिद्ध करनेके लिए हमें सबसे अच्छे और निर्विवाद प्रमाण तरह तरहके पशुओं और पक्षियों और दूसरे जीवोंसे मिल सकते हैं। मनुष्यकी तरह इन जीवोंको सभ्यताने अपने पाशमें नहीं फँसाया है और ये बहुधा प्राकृतिक अवस्थामें ही रहते हैं। उन पशुओं और पक्षियों आदिकी बातें जाने दीजिए जिनके मालिक उन्हें जरासा बीमार समझकर ही किसी पशु-चिकित्सालयमें भेज देते हैं और उनको भी जबरदस्ती दवा पिलाकर अपनी तरह जन्म-रोगी बना लेते हैं। सभ्य मनुष्योंको छोड़कर बाकी प्रायः सभी जीव किसी भारी रोगसे पीड़ित होनेपर सबसे पहले भोजनका ही परित्याग करते हैं। सिंहको यदि किसी तरहसे कोई घाव लग जाता है तो वह किसी एकान्त स्थानमें जाकर बिना जल और भोजनके कई कई सप्ताहों तक पड़ा रहता है। केंचुली बदलनेके समय साँप कई सप्ताहों तक बिना आहारके ही पड़ा रहता है। इसका कारण यही है कि आहार न करनेके कारण उसकी वह क्रिया थोड़े कष्टमें और जल्दी हो जाती है। बहुतसे पशु ऐसे होते हैं जिनका खून गरम होता है। ऐसे पशु बहुधा जाड़ेमें एकान्तमें बिना आहारके पड़े रहते हैं। जाड़े भर निराहार रहने पर भी उनकी शक्ति बहुत ही कम घटती है और जाड़ेके अन्तमें वे बड़े आनन्दसे विचरने लगते हैं। रेंगनेवाले जीवोंको यदि कुछ अधिक समय तक आहार न मिले तो उनकी शक्ति किसी प्रकार क्षीण नहीं होती। रीछोंकी शरीर-रचना मनुष्यके शरीरसे मिलती-जुलती होती है। बरफीले देशोंमें जाड़ेके दिनोंमें रीछ प्रायः चार महीने अपनी माँदमें निराहार पड़े सोते रहते हैं। इस बीचमें यदि कोई उन्हें छेड़े, तो वे बहुधा उसे मार डालनेका ही प्रयत्न करते हैं। यह बात तो सभी लोग जानते हैं कि रोगी होने पर सब प्रकारके जीव आहार छोड़ देते हैं, पर ऊपर जो उदाहरण दिये गये हैं उनसे यह भी सिद्ध होता है कि पशु अपना स्वास्थ्य बनाये रखनेके विचारसे भी समय समयपर उपवास किया करते हैं। डा० मैकफेडनका एक छोटासा कुत्ता खेलने एक बार एक बहुत ऊँचे मकानकी छतपरसे नीचेके पत्थरवाले फर्शपर गिर पड़ा। उसके गिरनेके समय जो शब्द हुआ था उससे यह अनुमान हुआ था कि उसकी एक भी हड्डी साबित न बची होगी। गिरते ही उसके मुँह और नाकसे रक्तकी धारा बहने लगी थी और वह बिलकुल बेखबर हो गया था। कुछ

उपस्थित सैनिकोंने डाक्टर महाशयको सम्मति दी कि आप गोली मारकर इसे इस भयंकर यातनासे मुक्त कर दें। पर उन्होंने उन लोगोंकी वह बात स्वीकार न की और उस कुत्तेको एक टोरीमें रखकर घर ले जाकर उसीपर अपने उपवास-सिद्धान्तकी परीक्षा करना निश्चय किया। जांच करने पर मालूम हुआ था कि उसकी दो टाँगें और तीन पसलियाँ टूट गई थीं और जिस कठिनतासे वह साँस लेता था उससे सिद्ध होता था कि उसके फेफड़ोंपर भी अवश्य चोट पहुँची है। जब सब लोग उसके जीवनसे निराश हो गये तब उसका मृत शरीर गाड़नेके लिए गढ़ा तक खोदा गया। पर दूसरे दिन सवेरे तक उसके प्राण न निकले और वह बहुतसा पानी पी गया। बीस दिनोंतक वह उसी दशामें बिना किसी प्रकारके भोजनके पड़ा रहा। वह केवल पानी पीता था; यहाँ तक कि दूध या शोरबा भी नहीं छूता था। इक्कीस दिनोंके बाद उसने दूध पीना आरम्भ किया और छब्बीसवें दिनसे वह छिछड़े खाने लगा। उसके पैर अवश्य कुछ टेढ़े हो गये थे, पर और किसी प्रकारका दोष उसके शरीरमें न रह गया था। दूसरे वर्ष जब डाक्टर महाशय उसे अपने साथ लेकर फिर उसी स्थान पर गये, जहाँ वह मकानकी छत परसे गिरा था और उन्होंने वहाँके पशु-चिकित्सकको उसे दिखलाया तब चिकित्सकको अत्यन्त आश्चर्य हुआ। सबसे पहले तो उसकी समझमें यही बात नहीं आती थी कि वह बिना किसी प्रकारके भोजन या ओषधिके जीता ही कैसे बचा। उसके सिद्धान्तके अनुसार तो उसे जीवित रखने और नीरोग करनेके लिए इस बातकी आवश्यकता थी कि बहुतसा भोजन, शराब और बीसियों तरहकी ओषधियाँ जबरदस्ती नलीकी सहायतासे उसके पेटमें उतारी जायँ, तब फिर भला उसका जीवित रहना और चंगा हो जाना उसकी समझमें कैसे आ सकता था! इसीलिए वह उस बातको अनहोनी समझता था! अन्तमें उसे यही कहना पड़ा कि इस कुत्तेकी जीवन-शक्ति ही कुछ अद्भुत है!

प्रत्येक मनुष्य थोड़ा अनुभव करके यह बात अच्छी तरह समझ सकता है कि जंगली और पालतू सभी जानवर रोगी होनेपर दाना-पानी छोड़ देते हैं और बहुधा अपेक्षाकृत शीघ्र ही नीरोग हो जाते हैं। अन्न-जल छोड़नेकी शिक्षा उन्हें स्वयं प्रकृतिसे ही मिलती है; और प्रकृति वही शिक्षा पशुओंके द्वारा हम समझदारोंको भी देती है। पर हम अपनी समझदारीके आगे उसकी कोई चलने ही नहीं देते। हम लोग भोजनकी सहायतासे रोगका पालन करते हैं और ओषधियोंकी

सहायतासे उसकी वृद्धि करते हैं; और तिसपर समझते यह हैं कि हम अपनी चिकित्सा कर रहे हैं। पर चिकित्साके मूल सिद्धान्तोंसे हमारा कोई सम्बन्ध ही नहीं रहता। हम लोगोंका मार्ग ही उससे बिलकुल भिन्न और विपरीत है। या तो प्रकृति स्वयं बेहया बनकर हमें नीरोग कर दे या हम तरह-तरहके उपायोंसे रोग उत्पन्न करनेवाले विषको एकत्र करके शरीरके किसी अङ्गमें दबा दें और उसे समय पाकर फिरसे बढ़ने और फैलनेका मौका दें। इसके सिवा हमारे चंगे होनेका और कोई उपाय ही नहीं है। न जाने मनुष्योंकी समझमें यह छोटीसी बात कब आवेगी कि रोगी जब आहार छोड़ देता है तब आहारको पचानेवाली शक्ति उसके रोगको शमन करनेमें लग जाती है और उस दशामें वह शीघ्र ही नीरोग हो जाता है।

चिकित्सा और उपवास

आजकल जितनी चिकित्साएँ प्रचलित हैं और उनमेंसे अधिकांशको हम अप्राकृतिक बतला आये हैं, उन सब चिकित्साओंमें भी किसी न किसी अवस्था और किसी न किसी रूपमें उपवास अवश्य कराया जाता है। रोगीका भोजन परिमित कर देना तो चिकित्सक मात्रका मूल मन्त्र है। पर बहुतसी अवस्थाओंमें वे उपवासकी बहुत बड़ी आवश्यकता समझते हैं। ज्वर आदि बहुतसे रोगोंके आरम्भमें तो रोगीको सबसे पहले अवश्यमेव उपवास ही कराया जाता है और उठते हुए ज्वरको दबाना किसी प्रकार ठीक नहीं समझा जाता। यद्यपि बहुतसे ऐसे शौकीन रोगी भी निकलेंगे जो रात को थोड़ी हरारत होते ही सबेरे दो-चार खुराक दवायें पी डालेंगे तथापि कोई बुद्धिमान् उनके इस कृत्यकी प्रशंसा न करेगा। अनेक रोगोंके आरम्भमें तो हम अवश्य ही पर विवश होकर प्रकृतिके कुछ नियमोंका पालन करते हैं, क्योंकि यदि हम उनका पालन न करें तो प्रकृति हमें कठोर दंड देती है। पर आगे चलकर जब हम उन नियमोंके पालनसे कुछ लाभ उठा चुकते हैं तब उन्हींका अतिक्रमण करने लगते हैं। इसका कारण यह है कि उस समय हम उस स्थितिमें पहुँच जाते हैं जिसमें प्रकृतिद्वारा हमें तुरन्त ही नहीं बल्कि कुछ कालके उपरान्त दण्ड मिलता है। अनेक रोगोंके आरम्भमें जब डाक्टर, वैद्य या हकीम अपने रोगीको उपवास

कराता है तो उससे रोगका जोर बहुत कुछ घट जाता है। यदि रोगीको उसी स्थितिमें कुछ और समयतक रहने दिया जाय, उसे न तो किसी प्रकारकी दवा दी जाय और न किसी प्रकारका भोजन, तो अवश्य ही वह बहुत शीघ्र नीरोग हो सकता है। पर यहाँ आरम्भ तो होता है प्राकृतिक नियमोंसे और बीचमें ही अप्राकृतिक नियमोंका व्यवहार आरम्भ हो जाता है।

जो हो, पर इसमें किसी तरहका सन्देह नहीं कि सभी चिकित्सक किसी न किसी अवसरपर अपने रोगीका भोजन बन्द कर देते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि वे उपवासका महत्त्व जानते और मानते तो अवश्य हैं और उससे समय-समयपर लाभ भी उठाते हैं; पर उनका उपवाससम्बन्धी ज्ञान अपेक्षाकृत बहुत ही कम है। हकीमों और वैद्योंकी अपेक्षा डाक्टरोंका तत्सम्बन्धी ज्ञान और भी अल्प है। कोई हकीम या वैद्य तो अपने रोगीको दस-बीस दिनोंतक बिना भोजनके रख सकता है; पर किसी डाक्टरके लिए ऐसा करना असम्भव है। प्रायः हकीमों और वैद्योंके ऐसे कृत्यों-पर डाक्टर लोग हँसते हुए देखे गये हैं। वे लोग समझते हैं कि यदि रोगीको किसी प्रकारका आहार न दिया जायगा, तो उसकी शक्ति नष्ट हो जायगी और वह नीरोग होनेके बदले मर जायगा; पर उनका यह मत सर्वांशमें सत्य नहीं उतरता। आगे चलकर हम यह दिखलानेका प्रयत्न करेंगे कि उपवास और बल-क्षयका परस्पर कितना सम्बन्ध है। पर इस अवसरपर यह बात भूल न जानी चाहिए कि उपवास करानेवाले वैद्यों और हकीमोंकी निंदा करने और हँसी उड़ानेवाले डाक्टर भी कुछ विशेष अवस्थाओं और रोगोंमें अपने रोगियोंको आठ-आठ और दस-दस दिनतक बिना भोजनके ही रखते हुए देखे गये हैं।

आयुर्वेद और उपवास

इस अवसरपर थोड़े शब्दोंमें यह बतला देना भी अनुचित न होगा कि हमारे प्राचीन भारतीय-चिकित्सा-शास्त्र आयुर्वेदमें उपवासको कितना महत्त्व दिया गया है और उसके क्या-क्या लाभ बतलाये गये हैं। हमारे यहाँके आयुर्वेदज्ञोंका मत है कि शरीरमें कफ, पित्त और वात ये तीन पदार्थ

हैं। जबतक ये तीनों पदार्थ समान स्थितिमें रहते हैं तबतक मनुष्य नीरोग रहता है, पर जब इनमेंसे कोई पदार्थ घट या बढ़ जाता है तब उसकी गिनती दोषोंमें होती है, अर्थात् उसके कारण मनुष्यके शरीरमें कोई न कोई रोग उत्पन्न हो जाता है। यह रोग बहुत ही क्षुद्र भी हो सकता है और महाभयंकर भी। यही कारण है कि यदि आप किसी रोगके सम्बन्धमें आयुर्वेदका कोई ग्रन्थ उठाकर देखें, तो उसमें आपको उस रोगकी उत्पत्ति कफ, पित्त अथवा वातसे ही मिलेगी। बढ़े या घटे हुए पदार्थको समान स्थितिमें लाना और दोषका नाश करना ही वैद्य मात्रका कर्तव्य होता है। उपवास या लंघनके विषयमें हमारे चिकित्सा-शास्त्रका मत है कि उसे सहन करनेकी शक्ति केवल दोषोंमें ही होती है। जबतक मनुष्यके शरीरमें दोष रहता है तभी तक वह निराहार रह सकता है, दोषोंके शमन हो जाने-पर वह बिना भोजनके नहीं रह सकता। यह बात वैद्यकके कई ग्रंथोंमें लिखी हुई है। भावप्रकाशमें लिखा है कि लंघन करनेसे दोष नष्ट होते हैं, जठराग्नि दीप्त होती है, शरीर हल्का हो जाता है और भूख बढ़ती है। जब कि दोषोंहीसे रोगोंकी सृष्टि होती है और लंघनसे दोषोंका नाश होता है, तब इस सिद्धान्तके माननेमें कोई संकोच नहीं हो सकता कि लंघनसे रोगोंका नाश होता है। सुश्रुतमें यह बात स्पष्ट रूपसे लिखी हुई है कि जिस मनुष्यकी अग्नि और दोष ठीक दशामें न हों, लंघनसे उसकी अग्नि ठीक दशामें आ जाती है और उसके दोषोंका परिपाक हो जाता है। पाश्चात्य डाक्टरोंकी सम्मतिके अनुसार पहले एक स्थानपर यह कहा जा चुका है कि रोगी जब आहार छोड़ देता है, तब उसकी आहार पचानेवाली शक्ति उसके रोगका शमन करनेमें लग जाती है और इस दशामें वह शीघ्र नीरोग हो जाता है। पाश्चात्य डाक्टरोंके इस सिद्धान्तकी पुष्टि हमारे यहाँके प्राचीन शास्त्रोंके इस वचनसे भली भाँति हो जाती है—

"आहारं पचति शिखी दोषानाहारवर्जित ।"

अर्थात् अग्नि आहारको पचाती है और जब पेटमें आहार नहीं रहता तब वह दोषोंको पचाती या नष्ट करती है। इससे यह बात प्रमाणित होती है कि खाली पेट रहनेसे दोषों या रोगोंका नाश ही होता है; निराहार रहनेसे शरीरको लाभ ही होता है, हानि नहीं। भावप्रकाशमें लिखा है कि यदि दोष उभरण या मध्यम अवस्थामें

हो, तो लंघन करना ही श्रेष्ठ है। उसके मतसे लंघनके द्वारा वायुका दोष सात दिनमें, पित्तका दोष दस दिनमें और कफका दोष बारह दिनमें पच जाता है। यद्यपि दोषकी भयंकर अवस्थामें उक्त ग्रन्थके कर्त्ताने लंघनकी आज्ञा नहीं दी है, तथापि इससे हमारे सिद्धान्तपर किसी प्रकारका दोष नहीं आ सकता। कोई दोष आरंभ होते ही महाभयंकर या उग्र रूप नहीं धारण कर लेता। पहले वह साधारण या मध्यम अवस्थामें ही रहता है, उग्र अवस्था तक पहुँचनेमें उसे कुछ समय लगता है। यदि दोषके आरम्भ होते ही उपवासका भी आरम्भ हो जाय, तो निश्चय है कि उस दोषका नाश ही होगा। सुश्रुतके अनुसार तो शरीरको हल्का करनेवाली सभी क्रियाएँ लंघनके अन्तर्गत आ जाती हैं और चरकने वायु-सेवन और व्यायाम आदिको भी लंघनके अन्तर्गत ही माना है। यदि किसी रोगीके पेटमें बहुतसा अन्न हो और वैद्य उस अन्नको वमन या विरेचनकी सहायतासे बाहर निकाल दे, तो उसकी यह क्रिया लंघनसे भी कहीं बढ़कर होगी, क्योंकि लंघनकी सहायतासे उतना अन्न पचानेमें उससे कहीं अधिक समय लगता, जितना वमन या विरेचनमें लगता है। वायुसेवन और व्यायाम आदिसे भी दोषोंका नाश ही होता है। इन चिकित्साओंको लंघनके अंतर्गत माननेसे लंघनका महत्त्व और भी बढ़ जाता है और उससे सिद्ध होता है कि वह बहुत ही उपकारक क्रिया है। सुश्रुतके अनुसार लंघनसे ज्वरका नाश होता है, अग्निका दीपन होता है और शरीर हल्का हो जाता है। उसके अनुसार यदि लंघनके उपरान्त मल-मूत्रका त्याग उचित रीतिसे हो, भूख प्यास न सही जाय, शरीर हल्का जान पड़े, आत्मा और मन शुद्ध हो और इन्द्रियाँ निर्विकार और सुखी हों, तो समझना चाहिए कि लंघन ठीक और उचित रीतिसे हुआ है। यही बात दूसरे शब्दोंमें इस प्रकार कही जा सकती है कि अच्छी तरह और नियमपूर्वक लंघन करनेके परिणामस्वरूप ऊपर लिखी बातें होती हैं।

ज्वरकी दशामें तो लंघनको सभीने उपयुक्त ही नहीं, बल्कि बहुत आवश्यक भी माना है। चक्रदत्तने कहा है कि नवीन ज्वरका क्षय लंघनकी सहायतासे करे और आत्रेय ऋषिकी आज्ञा है कि ज्वरके आरंभमें लंघन करावे। वैद्यकमें वमन, विरेचन, निरहवस्ती (इन्द्रिय-जुलाब) और शिरोविरेचन ये चार प्रकारकी संशुद्धियाँ मानी गई हैं। ये संशुद्धियाँ ज्वरमें कराई जाती हैं; पर उपवासको शास्त्रमें इन संशुद्धियोंसे कहीं अधिक उपयोगी और श्रेष्ठ माना है। चरक और वाग्भटने कहा है कि दीपन

वातादि दोष आमाशयमें स्थित होकर जठराग्निको मन्द कर देते हैं और आमके साथ मिलकर शरीरके छिद्रों या रोमकूपोंको आच्छादित करके ज्वर उत्पन्न करते हैं। आम दोषादिको पचाने, जठराग्निको दीप्त करने और शरीरके छिद्रोंको शुद्ध करनेके लिए लंघनकी आवश्यकता होती है। इस अवसरपर कदाचित् यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि जो दोष अग्निको मन्द करते हैं उनके शमनके लिए लंघनसे बढ़कर और कोई श्रेष्ठ उपाय नहीं है।

जिन पाश्चात्य डाक्टरोंने उपवास-चिकित्साका आविष्कार किया है, वे उपवास-कालमें रोगीको केवल शुद्ध जल देते हैं। वैद्यकके ग्रन्थोंमें भी उपवास-कालमें केवल जल ही देनेका विधान है। जल हमारे यहाँ अमृत माना गया है और यह कहा गया है कि उससे सभी दशाओंमें उपकार होता है। इसके अतिरिक्त वैद्यकके ग्रन्थोंमें यह भी लिखा है कि वैद्यको चाहिए कि लंघन इस प्रकार करावे कि जिसमें जलका नाश न हो; क्योंकि आरोग्यता जलके ही अधीन है और यह सब कार्य्यक्रम आरोग्यताके लिए ही है। उपवास-चिकित्साके आविष्कर्ताओंका भी ठीक यही सिद्धान्त है। सारांश यह है कि उपवाससम्बन्धी सिद्धान्त न तो हमारे आयुर्वेदके लिए नये ही हैं और न हमारे यहाँ के उपवाससम्बन्धी सिद्धान्तोंके किसी प्रकार प्रतिकूल ही हैं। आयुर्वेदसे पाश्चात्य डाक्टरोंके उपवास-सिद्धान्तोंका सब प्रकारसे समर्थन और पोषण ही होता है।

प्रकृति और उपवास

पश्चिममें उपवास-चिकित्साका आविष्कार, बल्कि यों कहिए कि पुनरुद्धार ऐसे लोगोंने किया है जो अपने जीवनके आरम्भ-कालमें बहुत ही दुर्बल रहा करते थे और मुद्दतों तक तरह तरहकी दवाइयाँ करके अपने जीवनसे एकदम निराश हो चुके थे। इन लोगोंने जब देखा कि औषधियोंसे रोग किसी प्रकार दूर नहीं होते और सुना कि औषधिसेवनसे रोगों की संख्या और भी बढ़ती है, तब इन्हें किसी ऐसी चिकित्सा-प्रणालीकी चिन्ता लगी जो मनुष्यके लिए बिलकुल स्वाभाविक या प्राकृतिक हो और जिसमें इसके सिवा किसी प्रकारकी हानिकी सम्भावना न हो।

उन लोगोंने खोज और परिश्रम करके एक नई पर प्राकृतिक प्रणाली ढूँढ निकाली। ज्यों ज्यों उनकी प्रणालीका प्रयोग होता गया और ज्यों ज्यों उनका अनुभव बढ़ता गया, त्यों त्यों उन्हें इस बातके दृढ़तर प्रमाण मिलते गये कि वास्तवमें रोगीका सबसे अधिक कल्याण केवल उपवास से ही हो सकता है। अब तो युरोप और अमेरिका आदि देशोंमें बहुतसे ऐसे चिकित्सालय खुल गये हैं जिनमें केवल उपवास और जल-चिकित्सा आदिसे ही रोगीको चंगा किया जाता है। इन चिकित्सालयोंमें रोगियोंपर जो अनुभव किये गये हैं उन्हें जानकर बड़ा ही कुतूहल और आनन्द होता है। साधारण समझका आदमी भी यह बात भली भांति समझ सकता है कि यदि मनुष्य और विशेषतः रोगीको भूख न हो, तो जबरदस्ती खिलानेसे शरीरका बहुत अनिष्ट होता है—उसे बड़ी हानि पहुँचती है। ज्वर, सिरदर्द, अपचन आदि बहुतसे रोगों और यहाँ तक कि मानसिक चिकित्साओंके कारण भी मनुष्यकी भूख मारी जाती है। उस समय शरीरकी शक्ति बनाये रखनेके उद्देश्यसे जो कुछ जबरदस्ती खाया जाता है, वह शक्ति बनाये रखनेकी अपेक्षा उसे बिगाड़ना प्रारंभ कर देता है। उस अवस्थामें मनुष्यको इस बातके मिथ्या भ्रममें न फँस जाना चाहिए कि दो चार रोज भोजन न मिलनेके कारण ही हमारे प्राण निकल जायँगे। हमारे लिए भय या चिन्ता करनेका कोई कारण नहीं है। प्रकृति हमारी सबसे बड़ी रक्षक है। वह बहुत अच्छी तरह जानती है कि किस अवसरपर क्या होना चाहिए। प्रकृति-देवीकी गोद में पड़कर सुखी और स्वस्थ बननेका अभ्यास करो, रोगोंके विकार दूर करनेका हेतु या कारण समझो, विषके समान कड़ुई दवाओं और पैने नश्तरोंके कारण होनेवाले भीषण कष्टोंसे बचने और एक दो दिनके थोड़ेसे शारीरिक कष्ट सहनेका अभ्यास करो और तब देखो कि तरह तरहकी दुर्बलताओं और रोगोंसे मुक्त होकर तुम कितनी जल्दी प्रसन्न और सन्तुष्ट हो जाते हो। याद रक्खो कि हमें जितनी शारीरिक वेदनायें होती हैं वे सब किसी न किसी रूपमें प्राकृतिक नियमोंका उल्लंघन करनेके कारण ही होती हैं। जो मनुष्य प्राकृतिक नियमोंका पालन करता है, प्रकृतिका मनन करके अपने आपको उसपर छोड़ देता है और कष्टके समय उसे छोड़कर किसीकी सहायता नहीं लेता, वही सबसे बड़ा भाग्यवान, सबसे अधिक बुद्धिमान, और सबसे ज्यादह सुखी है। साथ ही यह भी याद रक्खो कि तरह तरहकी दवाइयोंकी पुड़ियाँ खाना, शीशियाँ पीना, गोलियाँ निगलना, नश्तर

खाना आदि बातें मनुष्यके लिए कभी स्वाभाविक नहीं हो सकतीं। शरीरकी सृष्टि प्रकृतिसे होती है और उसका पालन-पोषण तथा रक्षण आदि भी प्रकृतिके नियमानुसार ही हो सकता है, अन्य उपायों या नियमोंसे नहीं। प्राकृतिक-चिकित्साके विरोधी यह बात कह सकते हैं कि बड़े-बड़े रोग औषधियों और चीर-फाड़से अच्छे हो जाते हैं, पर उन्हें यह बात भूल न जानी चाहिए कि उन भयंकर रोगोंका बीजा-रोपण भी स्वयं उन्हीं औषधियों और चीर-फाड़से ही होता है। अथवा किसी दशामें यदि उन औषधियों और चीर-फाड़से न हो तो कमसे कम प्राकृतिक नियमोंके उल्लंघनसे अवश्य होता है। यदि आरम्भसे ही मनुष्य प्राकृतिक नियमोंका पालन करे और अप्राकृतिक उपचारोंसे बचता रहे, तो उसे कोई रोग उत्पन्न भी हो तो प्रकृतिकी शरणमें जाते ही वह अवश्य दूर हो जाता है।

शरीर और उपवास

शरीर-शास्त्रवेत्ताओंका मत है कि भोजन पचानेके लिए अपने शरीरकी जीवन-शक्तिपर हमें उतना ही बोझ डालना चाहिए जितनेसे हमारे शरीरका काम भली-भाँति चलता रहे। उसपर व्यर्थ और आवश्यकतासे अधिक बोझ डालकर उसका अपव्यय और ह्रास करना एक प्रकारकी आत्म-हत्या है। यह तो हुई साधारण और नित्यप्रतिके कामकी बात। अब विशेष अवसरों और अवस्थाओंको लीजिए। अपने शरीरको थोड़ी देरके लिए रसोईघर समझ लीजिए और पक्वाशयको रसोइया मानिए। यदि आँधी चलनेके कारण रसोईघरमें बहुतसी धूल और गर्दा भर जाय, उसकी दीवारकी दो-चार ईंटें निकल जायँ, छप्परका कुछ अंश टूटकर गिर पड़े अथवा इसी प्रकार और कोई व्यत्यय उपस्थित हो, तो विचारिए कि उस समय आपका क्या कर्तव्य होगा? आप पहले रसोईघरको झाड़-बुहारकर गर्द और धूलसे साफ करेंगे और उसके टूटे हुए अंशोंकी मरम्मत करके उसे काम चलाने योग्य बना देंगे अथवा तुरन्त रसोइएको आज्ञा देंगे कि वह उस टूटे-फूटे और गन्दे स्थानमें तुरन्त आपके लिए रसोई बनावे? उस समय आप भंडारमें रक्खे हुए सत्तू, चने, गुड़ या मिठाई आदिसे अपना काम चला लेंगे या रोजकी तरह बढ़िया दाल, भात, कढ़ी, तरकारी, चटनी और रोटी आदिके बनाने लगेंगे? हम पहले ही

कह आये हैं कि प्रकृति हमारी सब आवश्यकताओंको समझती है और उनकी पूर्तिका उपाय वह पहलेसे ही कर भी रखती है। हमारे शरीरके भीतर चर्बी और अनेक ऐसे पदार्थ भरे पड़े हैं जो आवश्यकता और अड़चनके समय बड़ी सरलतासे हमारे पालनकी प्रकृत आवश्यकताको पूरा कर सकते हैं। यह तो हुई उस समयकी बात जब कि हमारी अग्निको और यन्त्रोंको छुट्टी मिल चुकी हो और वह अपनी स्वाभाविक स्थितिमें पहुँचकर अपना निरीक्षण करनेके लिए तैयार बैठी हो। रोग और ज्वर आदिके समय तो उसे अपनी सारी शक्ति रोगोंको नष्ट करनेमें ही लगा देनी पड़ती है। उस दशामें यदि हम उससे कोई और काम लें, उसका बल किसी दूसरी तरफ लगा दें तो यह कब सम्भव है कि वह हमारे शरीरके रोगोंको बाहर निकालने या नष्ट करनेमें समर्थ होगी? उस अवस्थामें हमें यही उचित है कि जहाँतक हो सके हम उसे सब प्रकारके बोझसे हलका कर दें, जिससे वह अपनी सारी शक्ति रोगोंके निवारण करनेमें लगा सके। रोग आदि होने पर हमारी भूख स्वयं [illegible] भूख नहीं लगा करती और यही कारण है कि बहुधा रोगोंमें रोगीको भूख नहीं लगती है। उस समय नियमविरुद्ध समझकर बलपूर्वक पेटमें भोजन डाला जाता है और रोग को सहायता करनेके लिए उद्यत किया जाता है। [illegible] रोग [illegible] लगते हैं और रोग ही सबल होते हैं। उनकी समझमें यह नहीं आता है कि प्रकृति [illegible] आवश्यकता [illegible] हुई चीजोंसे [illegible] [illegible] शरीरमें [illegible] पदार्थ हैं, जो [illegible] हमारे शरीरका [illegible] और जिससे [illegible] अपनी वृद्धि होती जाती है। हमारे शरीरमें [illegible] हैं जो [illegible] हैं; पर जब शरीरमें [illegible] होती है तब [illegible] है और [illegible] उसकी पूर्ति होती जाती है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

मन और उपवास

उपवाससे शरीरकी शुद्धि तो होती ही है, मनके साथ भी उसका प्रायः वैसा ही सम्बन्ध है। जिस समय किसी शारीरिक वेदना या रोग की उत्पत्ति होती है, उस समय उस वेदना या रोगको नष्ट करनेके लिए हमारी भूख बन्द हो जाती है। असाधारण मानसिक चिन्ता, कुढ़न या क्रोध आदिका भी पाचनक्रियापर वैसा ही प्रभाव पड़ता है; उससे हमारे शरीरका अनिष्ट सम्भावित होता है और इसी अनिष्टसे रक्षित रहनेके लिए प्रकृति हमारे मस्तिष्कको पोषक द्रव्य पहुंचाना बन्द कर देती है। तात्पर्य यह कि हमारी शारीरिक क्रियामें जहां किसी प्रकारका व्यतिक्रम होता है वहीं हमारी भूख बन्द हो जाती है और इस प्रकार वह उपवासके महत्त्वकी घोषणा करती है। जिस प्रकार उपवास हमारे शारीरिक दोषोंको नष्ट करता है उसी प्रकार वह हमारे मानसिक विकारोंको भी दूर कर देता है। कई बड़े-बड़े उपवास-चिकित्सकोंको अनेक रोगियोंके सम्बन्धमें यह अनुभव करके बहुत ही आश्चर्य हुआ की उपवासका मनपर पड़नेवाला लाभदायक प्रभाव शरीरपर पड़नेवाले प्रभावकी अपेक्षा कहीं अधिक था। इस देशके वैद्यकके ग्रन्थोंमें लिखा हुआ है कि उपवाससे मन और आत्माकी भी शुद्धि होती है; और पाश्चात्य डाक्टरोंके अनुभव करने पर यह बात बहुत सत्य निकली है। जो रोगी किसी अच्छे चिकित्सककी देख-रेखमें दो-एक लम्बे उपवास कर लेते हैं, कठिन विषयों और समस्याओंपर विचार करनेकी उनकी शक्ति पहलेकी अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ जाती है। इसका कारण यही है कि हमारे शरीरमें अधिक भोजन आदिके कारण जो विकार एकत्र हो जाता है, हमारे शरीरकी शक्तियोंके लिए वह बहुत ही हानिकारक होता है। वह उनका बहुत-सा अंश अपने साथ जूझनेके लिए खींच लेता है और इस प्रकार उनके ह्रासका कारण होता है। पर उपवासके कारण हमारे शरीरका सारा विकार नष्ट हो जाता है और तब हमारी शक्तियोंको किसी शत्रुका विरोध करनेकी आवश्यकता नहीं रह जाती। उस दशामें हम उनसे पूरा-पूरा काम लेनेमें समर्थ हो जाते हैं। हमारी सभी इन्द्रियोंमें बल आ जाता है और वे अपने-अपने कार्य दक्षता और सरलतासे करने लगती हैं। जब उपवास हमारे शरीरको हर तरहसे लाभ पहुंचा सकता है, तब कोई कारण नहीं कि वह हमारे मन और आत्माको संस्कृत न कर सके और उनका बल न बढ़ा दे।

मानसिक विकारों और दोषोंको दूर करनेमें भी उपवास उतना ही समर्थ है, जितना शारीरिक विकारों और दोषोंको नष्ट करनेमें है। आरोग्यताके इच्छुकोंके अतिरिक्त मानसिक संस्कृति चाहनेवालोंके लिए भी उपवास अत्यन्त लाभदायक है। इसके अतिरिक्त जिस मनुष्यके शरीरमें कोई विकार न रह जायगा और जिसकी सभी शारीरिक क्रियायें सरलतापूर्वक होती रहेंगी उसका मन भी अवश्य ही सदा प्रसन्न और सवल रहेगा।

शारीरिक वल और उपवास

जो लोग सैकड़ों पीढ़ियोंसे दिनमें तीन-तीन और चार-चार वार भोजन करते आये हों और एकाध दिन भोजन न मिलनेके कारण जिनका शरीर एकदम शिथिल पड जाता हो, उनके मनमें उपवासके सम्बन्धमें तरह-तरहकी शकायें उत्पन्न होना बहुत ही स्वाभाविक है। जिस युगके लोग अन्नको ही प्राण मानते हों, उस युगमें लोगोंको पखवाड़ों, वल्कि महीनोंतक निराहार रहनेके गुण सहजमें नहीं समझाये जा सकते। केवल कह देना कि महीने-पन्द्रह दिन तक निराहार रहनेसे मनुष्यका शरीर सब प्राकरसे नीरोग और बलिष्ठ हो जाता है, यथेष्ट नहीं है। इसपर लोगोंको तरह-तरहकी शंकायें हो सकती हैं। इस स्थलपर उन्हीं शंकाओंपर विचार किया जायगा।

अकाल आदिके समय हम लोग हज़ारों आदमियोंको विना अन्नके भूखों मरते हुए देखते और सुनते हैं और इसी लिए उपवासके सम्वन्ध में सबसे पहले यही शका हो सकती है कि विना अन्नके मनुष्य अधिक समयतक जीवित नहीं रह सकता। इसलिए उपवास और भूखों मरनेमें जो अन्तर है उसका यहाँ बतलाना उचित जान पड़ता है। पहले वतलाया जा चुका है कि प्रकृतिने हमारे शरीरमें बहुतसा ऐसा सामान भर रक्खा है, जो विशेष आवश्यकताके समय हमारे काम आ सकता है। जब हमें अन्न नहीं मिलता तव हमारे शरीरके उसी फालतू सामानसे हमारा काम चलता है। इस देशमें नवरात्र आदिके समय बहुतसे लोग नौ-नौ दिन तक विना अन्न और जलके रह जाते हैं। वहुतसे लोग इससे भी अधिक दिनोंतक निराहार रहते हैं। इस कालमें उनका शरीर दुबला हो जाता है, चेहरा उतर जाता है और आँखें घुस जाती हैं। इस शारीरिक ह्रासका मुख्य कारण यही है कि उनके शरीरका फालतू सामान उनके

पोषणमें लग जाता है। फालतू अंशके समाप्त हो जाने पर शरीरका पोषण उन पदार्थोंसे होने लगता है, जो हमारे शरीरके आवश्यक अंश हैं और जिनसे हमारे शरीरका संगठन हुआ है। मनुष्य उसी समय मरता है जब कि शरीरके फालतू अंशोंकी समाप्तिके बहुत बाद उसके आवश्यक अंश भी नष्ट हो चुकते हैं। जब-तक मनुष्यके शरीरके आवश्यक अंशोंके पोषणका आरम्भ नहीं होता तबतक मनुष्य केवल दुबला ही होता है, पर आवश्यक अंशोंके पोषणमें लग जानेके उपरान्त उसके शरीरकी ठठरी मात्र बच रहती है। उपवासकाल उसी समयतक माना जाता है जबतक कि शरीरका पोषण उसके फालतू पदार्थोंपर होता रहे; पर जब आवश्यक अंशोंकी नौबत आ जाय तब वह उपवास नहीं, बल्कि भूखों मरना है। आजतक ऐसा कभी नहीं सुना गया कि केवल दो-तीन दिनतक अन्न न मिलनेसे कोई मनुष्य मर गया हो। उपवासके कारण मनुष्यको नियमित समयपर भले ही थोड़ी-बहुत भूख लग जाय और उसके उपरान्त कुछ और समय टल जाने पर वह व्याकुल हो उठे, पर उसकी वह व्याकुलता अधिक समय तक नहीं ठहर सकती। ज्यों ही हमारे शरीरके फालतू अंशोंसे हमारा पोषण आरम्भ होने लगेगा त्यों ही हमारी व्याकुलता जाती रहेगी। यह व्याकुलता कभी किसी समयमें एक या दो दिनसे अधिक नहीं ठहर सकती। इस स्थितिके उपरान्त जैसा कि आगे चलकर विस्तृत रूपसे बतलाया जायगा, मनुष्यके शरीरके फालतू अंश और उनके साथ रोग, विकार और दोष आदि पचने लगते हैं। इन सबके पच जानेके उपरान्त मनुष्यको एक बार फिर भूख लगती है और वही भूख वास्तविक होती है। यदि उस समय मनुष्यको भोजन न मिले तो फिर उसके शरीरके आवश्यक अंशोंकी बारी आ जाती है और उसके परिणाम-स्वरूप उसका शरीरान्त हो जाता है। यही कारण है कि एक विद्वान्‌ने उपवास और भूखों मरनेका अन्तर बतलाते हुए कहा है कि—"उपवासका आरम्भ भोजन छोड़ने और अन्त वास्तविक भूखसे होता है और भूखों मरनेका आरम्भ वास्तविक भूख और अन्त प्राण छूटनेमें होता है।"

जो लोग बहुत मोटे हों और अपनी मोटाई कम करना चाहते हों, उनके लिए उपवाससे बढ़कर उत्तम और सहज और कोई उपाय नहीं हो सकता। इससे उनके शरीरके बहुतसे फालतू अंश और दूसरे पदार्थोंकी समाप्ति हो जायगी।

युरोप और अमेरिका आदि देशोंमें बहुतसे लोगोंने केवल उपवासकी सहायतासे अपनी बहुतसी मोटाई कम कर दी है और वे आगेकी अपेक्षा कहीं अधिक सरलतासे चलने-फिरने लगे हैं।

उपवासके आरम्भमें ही शरीर कुछ क्षीण अवश्य होने लगता है, पर उससे शरीरको लाभ ही होता है, हानि नहीं। अनुभवसे यह बात भी सिद्ध हो चुकी है कि उपवास-कालमें विशेष अवस्थाओंमें मनुष्यका शारीरिक बल आश्चर्यरूपसे बढ़ जाता है। स्वयं डाक्टर मैकफेडनने, जिनके ग्रन्थसे इस पुस्तकके लिखनेमें बहुत सहायता मिली है और जिनका उपवाससम्बन्धी निजका अनुभव पाठकोंको आगे चलकर बतलाया जायगा, वह प्रभाव जाननेके लिए एक प्रयोग किया था जो उपवासके कारण शारीरिक बलपर पड़ता है। उपवास आरम्भ करनेके दिन वे जमीनपर चित लेट गये और अपनी दोनों हथेलियोंपर उन्होंने ढाई मन वजनके एक आदमीको खड़ा करके लेटे-लेटे हाथोंके बल ऊपरकी ओर उठाया। उस दिन वे उस आदमीको छातीसे प्रायः तीन ही चार इंच ऊपर उठा सके थे, पर उपवासके अन्तिम और सातवें दिन जब उन्होंने उसी आदमीको अपनी हथेलियोंपर खड़ा करके उसे ऊपरकी ओर उठाया तब वह मनुष्य उनके हाथोंसे पूरी ऊँचाई तक—छातीसे लगभग दो फुट ऊपर तक-उठ गया। अवश्य ही डाक्टर महाशयने उपवास-कालमें व्यायाम नहीं छोड़ा था और नित्य वह दस मीलका चक्कर लगाते रहे थे। इसी प्रकार एक और आदमी था, जो उपवासके प्रथम दिन आध मन वजनका डंबेल अपने कन्धे तक भी न उठा सकता था, पर इक्कीस दिनोंतक उपवास करनेके उपरान्त उसने वही डंबेल सिरसे ऊपर उतनी ऊँचाई तक उठाया था, जितनी ऊँचाई तक कि उसका हाथ उठ सकता था।

मस्तिष्क और उपवास

कुछ लोगोंको यह शंका हो सकती है कि उपवास-कालमें मस्तिष्कका ह्रास सम्भावित है, पर यह बात भी बिलकुल व्यर्थ है। डा० एडवर्ड हूकर डेवी जो उपवास-चिकित्साके आविष्कर्त्ता और सबसे बड़े पक्षपाती हैं, कहते हैं कि उपवाससे मानसिक बल कभी क्षीण नहीं होता। उनके मतसे मस्तिष्कका पोषण जिन पदार्थोंसे होता है

वे पदार्थ स्वय मस्तिष्कमे ही उपस्थित रहते हैं, शरीरके और किसी भागसे मस्तिष्क-तक पोषणद्रव्य पहुँचानेकी आवश्यकता नहीं होती। उसका पोषण विना अन्न के ही आपसे आप होता है, और वह अपना काम वरावर करता है। उपवास-कालमें प्रायः वहुतसे लोग अपना नित्यका लिखने-पढने आदिका काम करते हुए देखे गये हैं। मनुष्यके शरीरको यदि तरह-तरहकी कलोंका समूह मान लिया जाय, तो मस्तिष्क उन कलोंको चलानेवाला प्रधान इजिन ठहर सकता है। जीवनकी सारी शक्तियोंका उद्‌गम मस्तिष्क ही है। रोग या निराहारके कारण उसके कार्य में किसी प्रकारका व्यतिक्रम नहीं हो सकता। मस्तिष्क जिस समय काम करते-करते थक जाता है, उस समय उसकी गई हुई शक्ति आराम करनेसे ही लौटती है, चौकेमें जा वैठनेसे नहीं। रातभर आराम करनेके कारण मस्तिष्क और फलत सारे शरीरकी गई हुई शक्तियाँ लौट आती हैं और प्रात काल मनुष्य कठिनसे कठिन मानसिक या शारीरिक परिश्रम करनेके योग्य हो जाता है। परीक्षा और अनुभवसे यह भी सिद्ध हुआ है कि प्रात-काल जलपान न करनेवाले लोग जल-पान करनेवालोंकी अपेक्षा अधिक और रातको भोजन न करनेवाले लोग भोजन करनेवाले लोगोंकी अपक्षा अधिक और भारी काम करनेमें समर्थ होते है। इसका मुख्य कारण यही है कि पेटसे व्यर्थ और अनावश्यक काम न लेनेके कारण मनुष्यकी वहुतसी शक्ति व्यर्थ नष्ट होनेसे वच रहती है। खेतों और खानों आदिमें कठिन परिश्रम करनेवाले लोगोंके अनुभवसे भी यह वात सिद्ध हो चुकी है।

यदि वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तो मस्तिष्क और उदर दोनों एक दूसरेके विरोधी हैं। यदि पेट मे थोड़ासा भी भोजन हो और मस्तिष्कसे अधिक काम लिया जाय तो पाचन-क्रियामें वड़ी वाधा पड़ती है। इसी प्रकार यदि पेट खूव भरा हो तो मस्तिष्कसे कोई काम नहीं लिया जा सकता। ये दोनों ही काम परस्पर एक दूसरेके लिए वैसे ही वाधक हैं जैसे नींद आनेमें शोर और गुल। भोजनके कुछ समय वाद मस्तिष्कसे कोई काम नहीं लेना चाहिए और मस्तिष्कसे सवसे अच्छा काम उसी समय लिया जा सकता है, जव कि पेटको अपनी चक्की चलानेसे फुरसत मिले। अत यह सिद्ध है कि उपवास से मस्तिष्कके कामोंमे कोई वाधा नहीं पड़ती, वल्कि उल्टे और उसमें सहायता मिलती है।

उपवास-कालमें शरीरकी दशा

जिस उपवासके गुण इस पुस्तकमें बतलाये गये हैं उसमें केवल जलको छोड़कर बाकी और सब प्रकारके खाद्य-पदार्थ छोड़ देनेकी आवश्यकता होती है। जिस दिनसे आप उपवास करना चाहें उसी दिनसे आप भोजन आदि छोड़ सकते हैं और तब आपका उपवास आरम्भ हो जायगा। उपवासके पहलेसे एक, दो अथवा अधिकसे अधिक तीन दिन बहुधा बड़े ही कष्टसे बीतते हैं और इन दिनोंका उतने कष्टसे बीतना बहुत ही स्वाभाविक भी है। प्रत्येक पुराना अभ्यास छोड़ने और नया अभ्यास करनेमें चाहे वह नया अभ्यास कितना ही प्राकृतिक, सहज और लाभदायक क्यों न हो सभी मनुष्योंको थोड़ा बहुत कष्ट अवश्य होता है। अपने शरीरको नये अभ्यास-वाली परिस्थितितक ले जाने और उसके अनुकूल बनानेमें कुछ परिश्रम अवश्य करना पड़ता है। जो लोग उपवासचिकित्सालयमें अपनी चिकित्सा करानेके लिए जाते हैं, आरम्भके दिनोंमें उनमेंसे बहुतोंकी दशा बहुत खराब हो जाती है, उनकी आँखोंके सामने अँधेरा आ जाता है, सिरमें चक्कर आने लगते हैं, कै होती है और उन्हें यह जान पड़ता है कि हमारा शरीर एकदम खाली हो गया है। इसके अतिरिक्त और भी कई तरहके ऐसे लक्षण दिखाई पड़ते हैं जिनसे उनकी विकलता और कष्टकी चरम सीमा-सी मालूम होने लगती है। पर ये सब लक्षण दो या तीन दिनसे अधिक नहीं ठहरते। उनकी असाधारण, पर केवल अभ्यासके कारण लगनेवाली और कृत्रिम भूख नष्ट हो जाती है और भोजनसे उनकी रुचि स्वयं ही हट जाती है। जो मनुष्य कष्ट के ये दो-तीन दिन बिता देता है उसे स्वास्थ्य और बलके राजपथपर पहुँचा हुआ ही समझिए।

तीसरे या चौथे दिन भोजनसे जिसकी अरुचि हो जाती है उसकी दशा प्रायः वैसी ही हो जाती है जैसी दो-तीन दिन बुखार आने और छूट जानेपर होती है। जीभ-का स्वाद बिगड़ जाता है और उसपर कुछ पीलापन आ जाता है। इन चिह्नोंको बहुत ही शुभ समझना चाहिए, क्योंकि इनसे सिद्ध होता है कि शरीरका विकार कितनी जल्दी-जल्दी बाहर निकल रहा है। इसके बाद ही वे चिह्न प्रकट होने लगते हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि शरीरके सारे विकार प्रायः बाहर निकल चुके हैं। साँस अधिक सरलतासे और गहरी चलने लगती है और फेफड़े अपना काम उत्तमतासे करने

लगते हैं। पर इस अवसरपर यह बात भूल न जानी चाहिए कि बहुधा उपवास करनेवालोंके लक्षण एक दूसरेसे भिन्न हुआ करते हैं, और सब लोगोंमें समान रूपसे पाई जानेवाली बातें बहुत ही कम होती हैं। यदि एक ही मनुष्य दो बार अधिक दिनोंतक उपवास करे तो उसके दोनों बारके लक्षण एक-दूसरेसे बहुत भिन्न होंगे, पर इसमें सन्देह नहीं कि सब प्रकारके लक्षणोंवाले उपवासोंका फल निश्चयात्मक और एकसा स्वास्थ्यप्रद होता है। सबके परिणामस्वरूप शरीरके सारे विकार, दोष, विष और रोग आदि बाहर निकल जाते हैं और मनुष्यके शरीरमें बल और मुखपर तेज आ जाता है। सभी उपवास करनेवालोंको अन्तमें स्वाभाविक भूख लगती है और दिनपर दिन उनका शरीर अधिक बलिष्ठ और सुखी होने लगता है।

उपवासके आरम्भमें सिर-दर्द, चक्कर आदि तरह तरहके कष्टोंका मुख्य कारण यही है कि हमारा शरीर भीतरी मल और विकार बाहर निकालनेका प्रयत्न करता है। उस दशामें यदि गुदाके मार्गसे गरम पानीका एनिमा लिया जाय और पेट तथा कमरके ऊपरी भागमें हल्का सेंक किया जाय तो पेटमेंसे मल और विकारके बाहर निकालनेमें और भी सुभीता हो जाता है और कष्टसे छुटकारा हो जाता है। उपवासके आरम्भमें कान तथा आँखमें पीड़ा होती है; पर उपवासके अन्तमें वे भाग बिल्कुल नीरोग हो जाते हैं। तरह-तरहके इन कष्टोंसे जो केवल आरम्भमें ही और वह भी शरीरकी सशुद्धिके लिए ही होते हैं, कभी घबराना न चाहिए। उस दशामें हमारे शरीरके प्रत्येक अंग और प्रत्येक शक्तिको विकार और रोग आदि शत्रुओंके साथ उसी प्रकार अपना सारा बल लगाकर लड़ना पड़ता है जिस प्रकार जानपर आ बननेके समय किसी मनुष्यको अपने शत्रुके साथ अथवा अकेले जंगलमें किसी जंगली जानवरके साथ लड़ना पड़ता है। ज्यों-ज्यों कष्ट बढ़ते जायँ त्यों-त्यों यही समझना चाहिए कि विकारोंका नाश हो रहा है और उनका अन्त समीप ही है। विकारोंका नाश होते ही कष्टोंका भी अन्त हो जाता है और मनुष्यकी दशा आपसे आप सुधरने लगती है।

कुछ अवस्थाओंमें उपवास करनेवालेके शरीरसे बहुत ही बदबूदार पसीना निकलता है। यह भी शरीरसे विकारके बाहर निकलनेका बहुत बड़ा लक्षण है। कुछ लोगोंकी जीभका स्वाद उपवासके चौथे या पाँचवें दिन बेतरह बिगड़ जाता है। उस दशामें यदि उसे वमन आवे तो कुछ आश्चर्य नहीं। किसी-किसी उपवास करने-

वालेका मुंह बहुत खट्टा हो जाता है और उसमेंसे बहुत लार बहती है। कभी-कभी उसकी जीभ और होठोंपर छाले भी पड़ जाते हैं। बहुत अधिक मिठाइयाँ खानेवालों और पित्तदोषवालोंको अपेक्षाकृत कुछ अधिक कष्ट होता है। कुछ उपवास करनेवालोंके अठवारों तक कै होती रहती है। इसी प्रकारके और भी अनेक कष्ट होते रहते हैं। कष्टोंकी इस असमानताका मुख्य कारण यह है कि प्रत्येक मनुष्यके शरीरकी भीतरी अवस्था एक दूसरेसे बहुत ही भिन्न होती है और प्रत्येक शरीरमें एक विलक्षण प्रकारका विकार होता है। अपनी स्थिति और सुविधाके अनुसार शरीर उन विकारोंको जिस मार्गसे और जिस प्रकार सरलतापूर्वक निकाल सकता है, वह उसी मार्गसे और उसी प्रकार उन्हें बाहर निकालता है। जिस मनुष्यके शरीरमें जितना अधिक विकार होता है, उपवास-कालमें उसे उतना ही अधिक कष्ट होता है और जिसे जितना अधिक कष्ट होता है, उपवासकी समाप्ति पर वह उतना ही अधिक नीरोग और स्वस्थ हो जाता है।

उपवास-सम्बन्धी अनुभव

उपवास-कालमें शरीरकी जो दशा होती है, उसका सबसे अच्छा पता उन लोगोंके लिखित अनुभवोंसे हो सकता है, जो प्रसिद्ध उपवासकारियोंने लिख रक्खे हैं। यद्यपि इस प्रकारके लिखित अनुभव संख्यामें बहुत अधिक और विस्तृत हैं, तथापि उनमेंसे कुछ चुने हुए अनुभवोंका सारांश यहाँपर दे देना बहुत ही उपयुक्त और आवश्यक जान पड़ता है। सबसे पहले डाक्टर बरनर मैकफेडनके निजके अनुभवको ही लीजिए जो प्राकृतिक चिकित्साके बड़े अच्छे विद्वान् हैं, जिन्होंने कई प्राकृतिक-चिकित्सालय खोलकर हजारों रोगियोंको अच्छा किया है और जिनके बनाये हुए तत्सम्बन्धी बीसियों अच्छे-अच्छे ग्रन्थों और विश्वकोशके पाँच खंडोंका आश्चर्यजनक प्रचार हुआ है। यह रामकहानी आपके मुँहसे ही सुनी जानेके योग्य है; अतः वह आपके शब्दोंमें ही यहाँपर दी जाती है। आप कहते हैं:—

"मुझे पहले न्यूमोनियाके सिवा और भी कई छोटे-मोटे रोग थे। उस समय-तक उपवासचिकित्साके सम्बन्धमें कई ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके थे; पर मैंने बिना उन्हें पढ़े ही अपने लिए चिकित्साके सिद्धान्त स्वयं स्थिर किये। ये सिद्धान्त मुझे

इतने गुणकारी प्रतीत हुए हैं कि गत पन्द्रह वर्षों-से मैंने इनके सिवा दूसरे चिकित्सा-सिद्धान्तोका ग्रहण ही नहीं किया। पहले मैं चार दिनतकके उपवास किया करता था और उस बीचमे भी कभी-कभी एकाध सेव या और कोई फल खा लेता था। इसके बाद मैंने बिना किसी प्रकारके भोजनके एक सप्ताहतक रहना निश्चय किया। उपवासके पहले दिन में तौलमें ढाई सेर और दूसरे दिन दो सेर घट गया। इसी प्रकार मेरा शरीर तौलमें घटने लगा; पर साथ ही उस घटनेका मान भी घटता जाता था। यहांतक कि सातवें दिन में तौलमें केवल आध सेर घटा। सब मिलाकर सात दिनोंमें मेरा शरीर साढ़े सात सेर घट गया था।"

"और लोग तौलमें इससे अधिक घट सकते हैं, पर मेरे कम घटनेका मुख्य कारण यह था कि मैं नित्य खूब व्यायाम करता था। मैं रोज दस मीलका चक्कर लगाया करता था। इस बीचमें उपवासके केवल दूसरे दिन मुझे सबसे अधिक दुर्बलता मालूम हुई थी। मैं सवेरे उठते ही टहलने चला जाता था। आरम्भमें मुझे कुछ दुर्बलता मालूम होती थी, पर दो-एक मील चल चुकनेके बाद वह दुर्बलता न रह जाती थी। किसी स्थानपर थोडी देर तक बैठ जानेके उपरान्त उठनेके समय भी मुझे कुछ अधिक घबराहट रही। मैं अपने नित्यके काम बराबर और नियम-पूर्वक किया करता था। मानसिक परिश्रम करनेमे मुझे और दिनोंकी अपेक्षा कम कष्ट होता था और मेरा मस्तिष्क बिल्कुल स्वच्छ जान पड़ता था। पेटमे जो थोड़ी-बहुत गड्बड़ी होती थी वह बहुतसा ठंढा पानी पीनेसे शान्त हो जाती थी। उपवासके छठे और सातवें दिन बड़े ही आरामसे बीते थे। यद्यपि मैं समझता था कि थोड़े प्रयत्नसे ही मैं और तीन-चार सप्ताह तक उपवास कर सकता हूँ, तथापि उद्देश्य पूरा हो जानेके कारण मैंने वैसा करनेकी आवश्यकता न समझी। चौथे दिन मेरी इच्छा कुछ खानेकी हुई थी। साधारणतः इस प्रकारकी भूखसे बचनेके लिए मनको किसी दूसरी तरफ लगा देनेसे बहुत लाभ होता है। पर उस दिन मुझे कोई काम न था; दो-चार दोस्तोंसे बातचीत करनेके बाद भी समय बच ही गया। भूख अधिक जोर कर रही थी, इसलिए मैं किसी भोजनागारमे जानेके विचारसे चल पड़ा। कुछ दूर चलनेके बाद मेरी प्रवृत्ति बदल गई और भोजनागार में जानेके बदले पासकी एक व्यायामशालामे चला गया और आध घंटे तक मैंने वहां खूब कसरत की। उस समय उपवास छोड़नेकी मेरी इच्छा एकदम जाती रही। अवश्य ही उन दिनों

मेरा चेहरा बहुत उतर गया था और आँखें बहुत धँस गई थीं। पर सातवें दिन मेरे शरीरमें आश्चर्यजनक बल आ गया था। उपवासके मध्यमें तो मैं केवल पचास पाउंडका डंबल ही उठाता था, पर उसके अन्तिम दिन मैंने पहले साठ, तब सत्तर और अन्तमें सौ पाउंडतकका डंबल उठा लिया। उसी दिनसे मैंने निश्चय कर लिया कि यह समझना बड़ी भारी भूल है कि उपवास करनेसे शरीरकी सारी शक्ति नष्ट हो जाती है।"

मिस हाल नामकी एक महिलाको एक बार लकवा मार गया था। जब अनेक प्रकारके औषधोपचारसे उनका रोग अच्छा नहीं हुआ तब अन्तमें उन्होंने चालीस दिनोंतक उपवास किया; इससे उनका शरीर एकदम नीरोग हो गया। अपने उपवासके संबंधमें वे लिखती हैं:—

"उपवासके चालीस दिन बितानेमें मुझे बहुत अधिक कठिनता नहीं हुई। जब कभी मुझे अधिक भूख मालूम होती थी तब उसे शान्त करनेके लिए मैं केवल पानी पी लेती थी। आरम्भमें मेरे मित्र, सम्बन्धी और शुभचिन्तक मुझसे भोजनके लिए बहुत आग्रह किया करते थे, पर मुझे स्वभावतः बिना भोजनके रहना ही अधिक उत्तम और सुखप्रद जान पड़ता था, इसलिए मैं उन लोगोंको साफ जवाब दे दिया करती थी।

"उपवास-कालमें मैं नित्य एक डाक्टरके आफिसमें छः घंटे तक काम किया करती थी और नित्य बहुत दूर तक पैदल चला करती थी। उपवासके चौथे दिनसे मैं उतनी तेजीसे चलने लगी कि जितनी तेजीसे पहले कभी नहीं चल सकती थी। पहले बीस दिनोंमें ही मेरे शरीरमें बहुत कुछ शक्ति और फुरती आ गई थी। उन्हीं दिनों मुझे आरोग्यताका वास्तविक सुख मिलने लगा और शरीरमें किसी प्रकारकी व्याधि न रह जानेके कारण मैं बिलकुल निश्चिंत हो गई थी।

"मेरे शरीरका मांस धीरे-धीरे बहुत कम होता जाता था और कुछ अधिक सरदी-सी मालूम होती थी। मैं समझती हूँ कि यदि मैं जाड़ेके दिनोंमें उपवास करती तो सरदीके कारण मुझे और भी कठिनता होती। उपवास-कालमें मुझे सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि मेरी विचार-शक्ति बहुत बढ़ गई थी। उपवासके बीस दिन बीत जानेके बाद भोजन करनेके लिए मेरे मित्रोंका आग्रह और भी बढ गया था; क्योंकि उन दिनों मैं देखनेमें बहुत ही दुर्बल जान पड़ती थी। पर मैं उस ओरसे एकदम

निश्चिन्त थी और मुझे भोजनकी कोई आवश्यकता जान न पड़ती थी। कभी-कभी मेरी इच्छाके विरुद्ध भी मेरी आँखें झपने लगती थीं और मुझे चक्कर-सा मालूम होता था। मुझे नींद बहुत अधिक आती थी और मैं सन्ध्याके सात बजे ही बिस्तरपर जाकर पड़ जाती थी। उस समय मुझे बहुत अधिक थकावट मालूम होती थी।

"उपवासके अट्ठाईसवें दिन मुझे विशेष कष्ट हुआ था। मेरा बांया हाथ जिसे लकवा मार गया था, अपेक्षाकृत बहुत अधिक सूख गया था और मुझे उसकी चिन्ताने आ घेरा था। उस समय यह बात मेरी समझमें न आई थी कि प्रकृति मेरे हाथके रोगका नाश कर रही है।

"उन्तालीसवें दिन डाक्टरने मेरी जीभकी परीक्षा की। उस दिन उसे मेरा शरीर बहुत ही स्वस्थ दशा में जान पड़ा। उस दिन उसने कह दिया कि अब तुम्हें भूखे रहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। चालीसकी सख्या पूरी करनेके विचारसे और एक दिन मैंने भोजन नहीं किया। उस अन्तिम दिन मैं बड़े ही आनन्दसे रही और मैंने नित्यकी अपेक्षा कहीं अधिक काम किया। इन चालीस दिनोंमें मैं तौलमें प्रायः सत्ताईस पाउंड घट गई थी।

"इकतालीसवें दिन मैंने आधा सन्तरा खाया; पर वह आधा सन्तरा भी मुझे जबरदस्ती खाना पड़ा था। क्योंकि उस समय मुझे तनिक भी भूख न थी। सन्तरेमें भी मुझे कोई स्वाद न आता था। उसके दूसरे दिनसे मुझे भूख लगने लगी और मैंने दो-दो घंटेके बाद आधा-आधा सन्तरा खाना आरम्भ किया। इस प्रकार धीरे-धीरे मेरी भूख बढ़ती गई। उपवास-कालके बीतनेके तीन सप्ताह बाद में इच्छानुसार सब चीजें खानेके योग्य हो गई। तबसे मेरा शरीर बहुत ही नीरोग है और मेरे जिस हाथको लकवा मार गया था उसमें पहलेकी अपेक्षा अधिक बल आ गया है।"

प्रायः तीस वर्षसे अधिक हुए कि डाक्टर हेनरी एस० टैनरने एक बार चालीस दिनोंतक उपवास किया था। आपने अपने उपवासके आरम्भिक पन्द्रह दिनोंतक जल भी नहीं पीया था। उपवास-चिकित्सकोंका मत है कि भोजनके बिना तो मनुष्य रह सकता है, पर जलके बिना उसके प्राण नहीं बच सकते। डाक्टर टैनरने अपने निजके अनुभवसे इस सिद्धान्तको भी बहुतसे अंशोंमें खंडित कर दिया। पर इसमें सन्देह नहीं कि जिस दिनसे उन्होंने पानी पीना आरम्भ किया था उस दिनसे उनका बल बराबर बढ़ने लगा था। पहले ही जिस समय उन्होंने जल पीया था, एक सप्ता-

चारपत्रके संवाददाताके साथ उन्होंने दौड़नेकी शर्त लगाई थी। सवाददाता समझता था कि इतने दिनों तक निराहार रहनेके कारण डाक्टर महाशयमें दौड़नेकी कौन कहे, चलनेकी भी शक्ति न होगी। इस तथा और भी कई कारणोंसे डा० टैनरके उपवासकी यूरोप और अमेरिकामें खूब चर्चा फैली थी। उपवास समाप्त करनेके कुछ दिनों वाद डाक्टर टैनर एकान्तवास करनेके लिए किसी जंगलमें चले गये थे। समाचार-पत्रोंमें उनकी मृत्युका झूठा समाचार छप गया था। पर हालमें डाक्टर मैकफेडनने उनके पास एक पत्र भेजकर उनसे प्रार्थना की थी कि वे उपवासके सम्बन्धमें अपना कुछ अनुभव लिख भेजें। उन्होंने यह प्रार्थना स्वीकार करके उपवासके बहुतसे लाभ भी लिख भेजे थे। बहुत वृद्ध हो जानेपर भी वे अवतक बड़े ही हृष्ट-पुष्ट और नीरोगी हैं।

अमेरिकाके सुप्रसिद्ध लेखक मार्क ट्रेनने जो एक वार भारत भी हो गये हैं, उपवासके सभी गुणोंको मुक्तकण्ठसे स्वीकार किया है। उन्हें जब कभी जुकाम या बुखार होता था तभी वे तुरन्त उपवास करते थे। उपवास-चिकित्सासम्बन्धी उनका लिखा हुआ "At the Appetite Cure" नामक एक बहुत अच्छा ग्रन्थ भी है, जिसमें यह बतलाया गया है कि जबतक भूख न लगे तबतक कभी भोजन न करना चाहिए। अमेरिकाके अप्टन सिंकलेअर नामक सुप्रसिद्ध लेखकने उपवाससे बहुत-कुछ लाभ उठाया है और यथासाध्य उसका समर्थन करके लोगोंको उसके अनन्त गुण बतलाये हैं।

सबसे अधिक लंबा उपवास रिचर्ड फासेल नामक एक व्यक्तिने किया था। इसने नब्बे दिनों तक किसी प्रकारका आहार ग्रहण नहीं किया था। फॉसेलको भीषण रूपसे जलोदर रोग हो गया था और उसके पैरों तकमें बहुत सूजन आ गई थी। इस रोगके कारण उसका शरीर तौलमें लगभग पाँच मन हो गया था। वह एक होटल का मालिक था; पर शरीरसे बहुत अधिक भारी और रोगी हो जानेके कारण वह चलने-फिरनेमें नितान्त असमर्थ हो गया था। जब वह सब प्रकारके औषधोपचारसे एकदम निराश हो गया तब उसने उपवासकी शरण ली। एक बार उपवास करनेके उपरान्त वह अच्छा हो गया था; पर उपवासके अन्तमें उसने भोजन करनेमें कई भारी भूलें कीं, जिससे वह फिर बीमार हो गया। उस समय उसका शरीर तौलमें घटकर प्रायः पौने चार मन रह गया था। दूसरी बार उसने नब्बे दिनों तक उपवास किया। उसके

ये। दोनों उपवास डा० मैकफेडनकी देख-रेखमें हुए थे। इतने अधिक दिनोंका उपवास शायद ही और किसीने आज तक किया हो। अपने उपवासकालका अधिकांश उसने या तो काम करनेमें और या व्यायाम करनेमें ही बिताया था। दूसरे उपवासके आरम्भिक चालीस दिनों तक वह नित्य पन्द्रह मील पैदल चला करता था और इसके अतिरिक्त बहुत-कुछ कसरत भी करता था। भूखके कारण उसे केवल पहले सप्ताहमें ही कुछ अधिक कठिनता और बेचैनी हुई थी, इसके बाद उसे कभी कोई कष्ट नहीं हुआ। इसके बाद उसे फिर कभी भूख लगी ही नहीं। उपवास-कालमें वह नित्य पांच-छ. बड़े-बड़े गिलास पानीके पीता था और कभी-कभी उनमें दो-चार बूँद नींबूका रस भी छोड़ लेता था। उपवास समाप्त करनेके उपरान्त भी तीन-चार दिनतक उसके पेटमें किसी प्रकारका भोजन न ठहरता था। इसके बाद धीरे-धीरे उसे भोजन पचने लगा और उसका शरीर बिल्कुल नीरोग और आगेसे बहुत हल्का हो गया।

इस अवसरपर हम दो-एक ऐसे उदाहरण भी दे देना चाहते हैं, जिनसे यद्यपि उपवासके दैनिक क्रम आदिका तो पता नहीं चलता, पर उसकी सर्वश्रेष्ठ उपयोगिताका पता अवश्य लगता है। सन् १९०३ ई० में अमेरिकामें एक मनुष्यको अचानक एक रिवाल्वरके छूट जानेसे गोली लग गई और वह गोली उसके गुरदे, जिगर और दाहिने फेफड़ेको चीरती तथा पांच पसलियां तोड़ती हुई निकल गई। बड़े-बड़े डाक्टरोंने उसे देखकर कह दिया था कि यह किसी प्रकार नहीं बच सकता और थोड़ी ही देरमें मर जायगा। पर वह मनुष्य उपवास-चिकित्साका पक्षपाती था, इसलिए उसने दस दिनों तक बिल्कुल कुछ न खाया। इस बीचमें प्रकृतिको उसे चंगा करनेका समय मिल गया और वह एक मासके उपरान्त बड़े आनन्दसे चलने-फिरनेके योग्य हो गया। इसी प्रकार एक और आदमीको रेलमें घुटना दब जानेके कारण बहुत बड़ी चोट आ गई थी। डाक्टरोंने महीनों उसके शरीरमें पिचकारियोंसे अफीम तथा दूसरे मादक द्रव्य पहुँचाये, बराबर व्हिस्की और दूधका सेवन कराया और पसेरियों दवाइयां उसके पेटमें उतार दीं। पर किसीसे कुछ भी फल न हुआ और वह मनुष्य तौलमें पैंतालिस सेर घट गया। अन्तमें डाक्टरोंने निराश होकर उसकी चिकित्सा छोड़ दी और तब वह उपवास-चिकित्सकोंके पाले पड़ा। पांच मास तक बिना किसी प्रकारके अन्नके रहकर अन्तमें वह मनुष्य सब प्रकारसे नीरोग और हट्टा-कट्टा हो गया।

इसी प्रकार और भी सैकड़ों-हजारों ऐसे आदमियोंके वर्णन दिये जा सकते हैं जो चालीस-चालीस और पचास-पचास दिनोंतक उपवास करके अजीर्ण, बवासीर, गरमी, कण्ठमाला, तापतिल्ली आदि सब तरहके रोगोंसे मुक्त हो गये हैं, यदि उन सबके विवरण संग्रह किये जायँ तो एक बहुत बड़ा पोथा हो सकता है। अँगरेजीमें यह पोथा प्रायः तीन हजार पृष्ठोंमें मौजूद भी है, जिसमें हजारों रोगियोंके विवरणके अतिरिक्त सैकड़ों ऐसे रोगियोंके चित्र भी हैं, जिन्हें बड़े-बड़े डाक्टरोंने जवाब दे दिया था और जो केवल उपवासकी सहायतासे ही बिल्कुल चंगे और नीरोग हो गये हैं।

उपवास-कालमें भयके चिह्न

साधारणतः उपवास-कालमें किसी प्रकारका भय करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। डा० मैकफेडन जोर देकर यह बात कहते हैं कि मेरे हजारों रोगियोंमेंसे जिन्हें मैंने लम्बे-चौड़े उपवास कराये, एक भी नहीं मरा; और प्रायः प्रत्येक दशामें उपवाससे सदा लाभ ही हुआ, हानि कभी नहीं हुई। तथापि जो लोग बहुत अधिक रोगी, दुर्बल या असमर्थ हो गये हों उन्हें भयके कुछ चिह्नों का सामना करनेके लिए तैयार रहना चाहिए।

उपवास-कालमें कभी तो रोगीकी नाड़ी बहुत तेज चलने लगती है और कभी बहुत धीमी। यदि साधारणतः नाड़ी एक मिनटमें ६० से ६० बारतक चलती हो तब तो किसी प्रकारकी चिन्ताकी बात नहीं है; * पर यदि वह इससे कम या अधिक चले और उपवास करनेवाला किसी योग्य डाक्टरकी देख-रेखमें न रहकर स्वयं ही उपवास करता हो तो आवश्यकता पड़ने पर वह अपना उपवास छोड़ भी सकता है।

उपवास-कालमें यह विश्वास मनसे एकदम निकाल देना चाहिए कि बिना भोजनके मनुष्यका शरीर चल ही नहीं सकता। इस विश्वासके कारण कभी कभी बहुत हानि हो जाती है। उपवासकालमें बहुत लोगोंका जी घुटने लगता है और उन्हें बेहोशी आने लगती है। बहुत अंशोंमें इसका मुख्य कारण मिथ्या विश्वास ही हुआ

---

* परिशिष्टमें नाड़ी-सम्बन्धी कुछ नये अनुभव लिखे गये हैं, उन्हें भी पढ़िए।

करता है। दुर्बल हृदयके लोगोंपर इस विश्वासका और भी बुरा प्रभाव पड़ता है। उस बुरे प्रभावसे बचनेके लिए उपवास-कालमें इस बातकी बहुत बड़ी आवश्यकता है कि मन सब प्रकारसे सन्तुष्ट और शान्त रहे, उसमें किसी प्रकारकी उद्विग्नता या चिन्ता न हो। उपवासकालमें जिस रोगीका मन इस स्थितिमें रहता है, उसे उपवाससे बहुत अधिक लाभ पहुँचता है और वह बहुत शीघ्र नीरोग हो जाता है।

उपवास-कालमें यद्यपि शरीर बहुत दुर्वल और कृश हो जाता है तथापि इससे भयभीत होनेका कोई कारण नहीं है। बहुधा यह दुर्वलता उन्हीं विषोंके कारण होती है जो रोगीके रक्तमें मिले हुए होते हैं। यदि कसरत करने और खब घूमने, फिरने या टहलनेसे भी यह दुर्वलता कम न हो और रोगीके हरदम बिस्तरपर पड़े रहनेकी नौबत आ जाय, तो उस दशामें भी उपवास छोड़ देना ही सर्वश्रेष्ठ है। यद्यपि वास्तवमें वह निर्वलता कोई विशेष या भारी हानि नहीं पहुँचा सकती, तो भी यदि रोगी किसी योग्य डाक्टरकी देख-रेखमें न हो तो उपवास छोड़ देना ही बुद्धिमत्ता है।

डा० मैकफेडनके चिकित्सालयमें बहुतसे ऐसे रोगी भी पहुँच चुके हैं, जिनकी इच्छाशक्ति बहुत प्रबल थी। उन लोगोंने केवल अपनी इच्छाके कारण ही अधिक दिनोंतक उपवास किया था। उनमेंसे अधिकांशको उपवाससे लाभके बदले हानि ही हुई थी। यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि उपवास-कालमें पहले शरीरके अनावश्यक और फालतू पदार्थ हमारी जठराग्निकी नजर होते हैं और तदुपरान्त शरीरके आवश्यक पदार्थोंकी बारी आती है। इसलिए कदापि वह दशा न आने देनी चाहिए जिसमें आवश्यक पदार्थोंका नाश आरम्भ होता है। इसकी एक बहुत अच्छी पहचान भी है। जबतक मनुष्य मीलोंके चक्कर लगाने और खूब कसरत करनेके योग्य रहे—उसके शरीरका बल बराबर बना रहे—तबतक उपवास जारी रखना चाहिए, पर जब शरीरका बल घटने लगे तब तुरन्त उपवास छोड़ देना चाहिए। दूसरी बात यह है कि बहुत लम्बे उपवासके बाद भोजन आरम्भ करनेमें भी बड़ी सावधानीकी आवश्यकता होती है। उपवास जितने ही अधिक दिनोंका हो, उसके छोड़नेपर भोजन भी उतना ही अल्प मात्रामें होना चाहिए। उपवास किस प्रकार छोड़ना चाहिए, इस विषयमें अधिक बातें आगे चलकर कही जायँगी। पिछले पृष्ठोंमें पाठक मिस हाल्का विवरण पढ़ चुके होंगे जिन्होंने चालीस दिनोंतक उपवास करके लड़नेसे

छुटकारा पाया था। मिस हालने उपवास छोड़नेके बाद अपना भोजन आधे सन्तरेसे आरम्भ किया था। पर उनका पक्वाशय इतना भोजन पचानेमें भी समर्थ न था, इसलिए उन्हें कुछ समय तक कष्ट उठाना पड़ा था। मि० मैकफेडनने उनकी दशा देखकर यह सिद्धान्त निकाला था कि उन्हें अथवा उनके समान लम्बे उपवास करनेवाले दूसरे रोगियोंको जिनका पक्वाशय बहुत अच्छी दशामें न हो, आधे सन्तरेसे नहीं, बल्कि आधे सन्तरेके रस मात्रसे भोजन आरम्भ करना चाहिए। उचित समय तक उपवास करनेसे कभी कोई हानि नहीं होती; हानि उसी समय होती है जब उपवास छोड़नेके समय भोजनका उचित ध्यान न रक्खा जाय और उसमें किसी प्रकारका व्यतिक्रम हो। उपवास-कालमें यदि भयका कोई चिह्न हो तो एलोपैथिक चिकित्सा करनेवाले डाक्टरोंसे सलाह लेनेकी अपेक्षा स्वयं अपनी बुद्धिसे काम लेना ही अधिक उत्तम है। स्वयं हमारी प्रकृति ही हमारी सबसे बड़ी रक्षक और शुभचिन्तक है। बहुधा वही हमें समयपर हमारा कर्तव्य बतलाती रहेगी। भयके अधिक चिह्न उसी दशामें उत्पन्न होंगे जब कि उपवास अधिक दिनोंतक किया जायगा। पर साधारणतः कभी अधिक दिनोंका उपवास न करना चाहिए। सब प्रकारके भयके चिह्नोंसे बचने का सर्वोत्तम उपाय यह है कि मनुष्य उसका आरम्भ बहुत थोड़ेसे करे। यदि मनुष्यका शरीर साधारणतः स्वस्थ रहता हो पर उसके अन्दर कोई रोग हो, तो उसे उचित है कि पहले महीने वह एक या दो दिन तक उपवास करे। तीन-चार महीने तक इसी प्रकार उपवास करनेके उपरान्त वह तीन-चार दिनोंतक उपवास करे। इस प्रकार साल-दो साल बाद वह आठ-दस दिन तकका उपवास करनेके योग्य हो जायगा। उस दशामें किसी प्रकारके भयके चिह्नोंके उत्पन्न होनेका कोई कारण न रह जायगा। यह तो हुई साधारणतः स्वस्थ और नीरोग मनुष्योंकी बात। पर यदि मनुष्यको अचानक कोई भारी रोग आ घेरे, तो केवल उस रोगके कारण ही वह आठ-दस दिनोंतक निराहार रह सकता है और उसके शरीरमें भयका कोई चिह्न दिखलाई नहीं दे सकता।

अच्छे उपवासका लक्षण यह है कि मनुष्यका मन बहुत ही स्वच्छ और सन्तुष्ट रहे, उसमें किसी प्रकारकी घबराहट या बेचैनी आदि न हो। यदि मनमें प्रसन्नता के बदले घबराहट या बेचैनी हो और इच्छा-शक्ति निर्बल पड़ती जाय, तो उपवास-कालमें बहुत सावधानीसे रहना चाहिए और यदि उस प्रकार रह सकना असम्भव

हो और किसी योग्य उपवास-चिकित्सककी सम्मति भी न मिल सकती हो, तो उपवास छोड़ देना ही उत्तम है।

नींद और प्यास

जो लोग उपवास करते हैं उन्हें प्राय. नींद बहुत कम आती है। बहुधा ऐसा जान पड़ता है कि सारे शरीरके ज्ञान-तन्तुओंमें तनाव आ गया है या खींचातानी हो रही है। मनुष्यको निद्रा उसी समय आती है जब कि उसका सारा शरीर सब प्रकारके तनावसे छुटकारा पा जाय और आराममें हो। पर ज्ञान-तन्तुओंके व्यतिक्रमके कारण शरीरको आराम नहीं मिलता और फलतः मनुष्यको नींद भी नहीं आती। ऐसी अवस्थामें मनुष्यको उचित है कि वह जल पीयें। जल ठंडा हो या गरम, यह पीनेवालेकी इच्छा और मुँहके स्वादपर निर्भर है। यदि जल पीनेसे कुछ लाभ न हो तो उचित और आवश्यक जान पड़नेपर गरम पानीसे नहा लेना चाहिए। नहानेसे उस समयके शारीरिक कष्ट दूर हो जायँगे और शरीरको आराम मिलनेके कारण नींद आवेगी। यदि नहानेका मौका न हो, तो निचोड़े हुए गीले अङ्गोछेकी तहें लगाकर और उसे किसी तौलिये आदिमें इस प्रकार लपेटकर कि उसका पानी बिछौनेपर न पड़े, छाती, पेट और जांघ पर रखना या फेरना चाहिए। उपवास-कालमें नींद न आनेका मुख्य कारण यह है कि उस समय शरीरमें रक्तका संचार बहुत ही कम होता है। कभी-कभी पैर बिल्कुल ठंडे हो जाते हैं और भारी कपड़ोंसे ढकनेपर उनमें आवश्यक गरमी नहीं आती। उस समय पैरोंपर या तो खूब गरम कपड़ा या कोई भारी तकिया रख लेना चाहिए। यदि उससे भी अभीष्ट-सिद्धि न हो तो बोतलमें गरम पानी रखकर और उसे कपड़ेसे लपेट कर पैरोंपर फेरना चहिए, इससे तुरन्त पैरोंमें गरमी आ जायगी। उस समय पैरोंमें खून खिंच आवेगा और तुरन्त नींद भी आने लगेगी। जो लोग उपवास न करते हों वे भी नींद न आने और पैर ठंडे हो जानेके समय यह उपाय कर सकते हैं। नींद न आनेके कारण बहुतसे तड़फड़ानेवाले रोगी इस उपायसे थोड़ी ही देरमें गहरी नींदमें सो जाते हैं।

इस अवसरपर यह बात भी भूल न जानी चाहिए कि उपवास-कालमें बहुत

अधिक नींद आनेकी कोई आवश्यकता भी नहीं है। उपवास-कालमें शारीरिक शक्तियों-को किसी प्रकारका भोजन नहीं पचाना पड़ता और न कोई परिश्रम ही करना पड़ता है। इसका परिणाम यह होता है कि वे शिथिल नहीं होतीं। अधिक निद्राकी आवश्य-कता उसी समय होती है, जब कि सब शारीरिक शक्तियां शिथिल हों। साधारणत. जिन लोगोंको सात या आठ घंटोंतक सोनेकी आवश्यकता होती हो, उपवास-कालमें उनके लिए केवल चारसे छः घटे तककी निद्रा ही यथेष्ट होती है। यदि उपवास-कालमें किसीको नियमित रूपसे कुछ ही कम नींद आवे, तो उसे नींद बढानेके लिए किसी प्रकारका प्रयत्न न करना चाहिए। उपवास-कालमें जल अधिक परिमाणमें पीना चाहिए। यदि उपवास करनेवाला स्वच्छ और यथेष्ट जल पीये तो वह उपवास-कालमें होनेवाली बहुतसी कठिनाइयोंसे बचा रहेगा। अधिक और उत्तम जल पीनेसे उसके शरीरके भीतरी भाग मानो अच्छी तरहसे धुलते रहेंगे और उनमें जो कुछ दूषित पदार्थ होंगे वे सब बाहर निकलते रहेंगे। जिसकी जीभ खराब हो जाय, मुँहका स्वाद बिगड़ जाय, या साँसमें बहुत बदबू आती हो, उसके लिए तो अधिक पानी पीनेकी और भी विशेष आवश्यकता है। जिस मनुष्यके पाचन-क्रिया करनेवाले अवयवोंको किसी प्रकारका भोजन ग्रहण और पाचन न करना पड़ता हो और जिसका शरीर बहुतसे विषों और दूषित पदार्थोंसे भरा हो उसे अवश्य ही अधिक जल पीना चाहिए; क्योंकि बहुधा विष और दूषित पदार्थ आकर पेटमे ही इकट्ठे होते हैं। अधिक पानी पीनेसे वे सब विकार सहजमें ही शरीरके बाहर निकल जाते हैं। यदि कभी-कभी पानीमें दो-चार बूँद नींबूका रस छोड़ दिया जाय तो और भी अधिक लाभ होता है। शरीरके भीतरी अवयवोंपर विकारोंके कारण जो पपड़ियांसी जम जाती हैं, नींबूके रससे वे सहजमे ही अपना स्थान छोड़ देती हैं और जल उन्हे बाहर निकालनेमें सहा-यक होता है। इसके अतिरिक्त जल पीनेसे एक और लाभ यह भी होता है कि उप-वास करनेवालेका शरीर तौलमें बहुत अधिक नहीं घटता। यदि हर एक घंटेके बाद एक गिलास स्वच्छ जल पी लिया जाय तो बहुत ही उत्तम है। यदि इतना पानी न पीया जा सके तो कमसे कम बेचैनी होने या भूख मालूम पड़नेपर तो अवश्य ही ठंडा और साफ जल पी लेना चाहिए। इससे उदर और शरीरको बहुत कुछ शान्ति मिलेगी और उपवास-काल सहजमें ही बिताया जा सकेगा। इसलिए उपवास करने-वालेको उचित है कि वह जहाँतक अधिक पानी पी सके वहाँतक पीये।

आहार-कालमें भी बहुतसे डाक्टर सम्मति दिया करते हैं कि भोजनके साथ कभी जल न पीना चाहिए। पर यह बात ठीक नहीं है। साधारणतः सब लोगोंको और विशेषतः उपवास कर चुकनेवाले लोगोंको भोजनके साथ और उसके उपरान्त बीच-बीचमें भी यथेष्ट जलका व्यवहार करना चाहिए। हमारे यहाँके वैद्यकशास्त्रमें जलको अमृत कहा है और उसके विषयमें यह बतलाया गया है कि उससे कभी किसी दशामें कोई हानि नहीं होती। बहुतसे डाक्टर, वैद्य और हकीम आदि ज्वर-कालमें अपने रोगियोंको पानी नहीं पीने देते। पर यह बड़ी भूल है। बहुधा बहुत अधिक पानीसे और कुछ विशेष दशाओंमें थोड़े पानीसे बहुत ही लाभ होता है। पर पानी न पीना सदा हानिकारक ही होता है। इसलिए प्रत्येक रोगी और नीरोगी, अशक्त और सशक्त सबको स्वच्छ, ताजे और मीठे जलका खूब सेवन करना चाहिए। अन्नकी अपेक्षा जलमें कहीं अधिक सजीविनी शक्ति होती है। जल सदा शरीरको लाभ ही पहुँचाता है, हानि नहीं।

जलके अतिरिक्त एक और पदार्थ है, उपवास-कालमें जिसका व्यवहार करनेसे बहुत कुछ लाभ होता है। वह पदार्थ है शुद्ध और साफ की हुई रेत। यह रेत थोड़ी-थोड़ी मात्रामें उपवास-कालमें फांकी जाती है। शायद हमारे पाठक रेत फांकनेका नाम सुनकर हँस पड़ेंगे और यह बात है भी बहुतसे अंशोंमें हँसी आने योग्य ही; पर वास्तवमें रेत फांकनेका शरीरपर बहुत ही अच्छा परिणाम होता है। रेत फांकनेके गुणोंकी जानकारी पहले-पहल बोस्टन नगरके प्रो० विलियम विंडसरने प्राप्त की थी।* उन्होंने यह सिद्धान्त निकाला था कि मनुष्य के अतिरिक्त प्रायः सभी जानवर अपने भोजनमें थोड़ी-बहुत रेत सदा और अवश्य मिला लेते हैं। उस रेतसे उनकी भोजन-वाहिनी नलिका सदा बहुत साफ और स्वच्छ रहती है और इसके कारण भोजन गुठलोंमें बँधकर कब्जियत नहीं उत्पन्न कर सकता। स्वयं डाक्टर मैकफेडनने जब

---

* अवध प्रान्तमें रेत फांकनेकी प्रणाली बहुत पहलेसे प्रचलित है। यह एक धर्मकी बात समझी जाती है कि लोग गंगाजीकी रेणुका फांकें। बहुतसे असाध्य उदर-रोगोंमें गंगाजल और गंगाजीकी रेणुका सेवन की जाती है और इससे रोग आराम हो जाते हैं। हमारी ग्रन्थमालाके एक प्रेमी पाठक श्रीयुत बनारसीदासजी अग्रवालने हमें इस बातकी सूचना देनेकी कृपा की है। —प्रकाशक

यह विलक्षण सिद्धान्त सुना तब उन्हे बहुत आश्चर्य हुआ था; क्योंकि रेतको कोई मनुष्यका स्वाभाविक खाद्य नहीं मान सकता। पर जब डाक्टर महाशयने लगातार तीन वर्षों तक हजारों रोगियोंको उसका व्यवहार कराया तब उसके गुणोंके सम्बन्धमें उनका पहला आश्चर्य और भी बढ़ गया। हजारोंमेंसे एक रोगी भी ऐसा न निकला जिसे रेतके व्यवहारसे किसी प्रकारकी हानि पहुँची हो।

फांकनेके लिए रेत ऐसी होनी चाहिए जिसके दाने गोल और खुरदरे हों, जो पानीमें न घुल सके और जो बहुत साफ हो। जिस रेतके दाने नुकीले या धारदार हों उसका व्यवहार नहीं करना चाहिए; क्योंकि उससे शरीरके भीतरी कोमल भागोंपर रगड़ लगती है। इसके अतिरिक्त वैसी रेतके दाने परस्पर एक दूसरेके साथ मिल जाते हैं। पर गोल दाने परस्पर एक दूसरेसे अलग रहते हैं; और वे ही हमारी कब्जियत दूर कर सकते हैं। उनसे बिना किसी प्रकारकी कठिनाई या कष्टके हमारी अँतड़ियाँ आदि बिल्कुल साफ और मल-रहित हो जाती हैं। इस स्थानपर कदाचित् यह बतलानेकी कोई आवश्यकता न होगी कि फांकनेके लिए रेत बहुत ही साफ होनी चाहिए। सफेद रेत की अपेक्षा भूरे काले रंग की रेत बहुत अच्छी होती है। यदि रेत साफ न हो तो उसे साफ कर लेना चाहिए। खूब खौलते हुए गरम पानीमें उबालनेसे रेत साफ हो जाती है। साधारणत दिन भरमें एकसे तीन चम्मचतक रेत फाँकी जा सकती है। रेत फाँकनेके उपरान्त ऊपरसे बहुतसा स्वच्छ जल पीना चाहिए। उपवास न करनेवाले लोगोंको भी यदि बहुत कब्जियत हो तो वे थोड़ीसी रेत फाँककर और ऊपरसे स्वच्छ जल पीकर अपनी कब्जियत दूर कर सकते हैं। कब्जियत दूर करनेका यह बहुत ही सादा और सर्वोत्तम उपाय है।

उपवास-कालमें एनिमा

एनिमा उस क्रियाका नाम है जिससे गुदाके मार्गसे अँतड़ियाँ तथा पेटके दूसरे भीतरी भाग धोये जाते हैं। एलोपैथिक चिकित्सक बहुधा इसका व्यवहार करते हैं और कुछ विशेष प्रकारकी पिचकारियोंसे ओषधिमिश्रित जल गुदा-द्वारा पेटमें पहुँचाते हैं। इन पिचकारियोंको भी एनिमा कहते हैं। अँगरेज़ी दवा बेचनेवालोंके यहाँ दो-तीन रुपयेमें एनिमा मिलता है। इस क्रियासे पेट और पेड़ू आदिमें फँसा हुआ सारा

दूषित और गन्दा मल बाहर निकल जाता है और रोगीकी दशा बहुत सुधर जाती है। कब्जियत और अँतड़ियोंकी दूसरी बीमारियोंके समय प्रायः इसका व्यवहार होता है। हम पहले कह आये हैं कि शरीरको नीरोग और शुद्ध करनेके लिए जहाँतक हो सके प्राकृतिक नियमोंसे काम लेना चाहिए। अप्राकृतिक नियमोंसे काम लेनेका परिणाम बहुत बुरा होता है। एनिमाका विधान बतलानेके कारण हमपर यह आक्षेप किया जा सकता है कि हम भी एक अप्राकृतिक उपाय बतला रहे हैं। पर इस सम्बन्धमें केवल इतना कह देना ही यथेष्ट है कि जुलाबकी गोलियों या रेंडीके तेल आदिकी तरह एनिमाका कोई ऐसा परिणाम नहीं होता जो शरीरमें अधिक समयतक स्थायी रूपसे रहकर हमें हानि पहुँचावे। ऐसी दशामें उसे विधेय बतलाते हुए उसकी आवश्यकता और लाभोंका वर्णन कर देना भी यहाँ उचित जान पड़ता है।

किसी मनुष्यके नीरोग होनेका सबसे अच्छा चिह्न यह है कि उसे पैखाना साफ आवे। यदि उसे किसी प्रकारकी कब्जियत हो, तो यही माना जायगा कि अभी उसके शरीरमें कुछ रोग बाकी है। एनिमाके व्यवहारसे मनुष्यकी कब्जियत बहुत ही सरलतापूर्वक—बिना उसे किसी प्रकारकी हानि पहुँचाये—दूर हो जाती है और उसका मल-मार्ग बहुत ही सहजमें साफ हो जाता है। हमारी आँतोंमें यह गुण है कि वे सदा फैलती और सिकुड़ती रहती हैं। भोजन पचनेके उपरान्त जो अनावश्यक और दूषित पदार्थ बच रहता है वह आँतोंकी इसी फैलने और सिकुड़नेवाली क्रियाके कारण मल-रूपमें हमारे शरीरके बाहर निकलता है। जिस समय मनुष्य उपवास आरम्भ करता है, उस समय भोजनके अभावके कारण आँतोंका सिकुड़ना और फैलना बन्द हो जाता है, जिसके कारण मल हमारे शरीरसे बाहर नहीं निकल सकता। उस समय आँतोंके ऊपरका मल ऊपर ही रह जाता है और उसी मलको सरलतापूर्वक बाहर निकालनेके लिए एनिमाका उपयोग लाभदायक होता है।

इसके अतिरिक्त एनिमासे और भी कई लाभ होते हैं। हमारे शरीरमें हरदम जो तरह-तरहके विष और दूषित पदार्थ उत्पन्न होते रहते हैं, उपवास-कालमें भी उनकी उत्पत्ति बराबर होती रहती है। यदि वे विष और दूषित पदार्थ बाहर न निकाले जायँ तो उनका दुष्परिणाम सारे शरीरपर और विशेषतः रोगग्रस्त अङ्गोंपर पड़ता है। एनिमासे उन विषोंके बाहर निकालनेमें भी बहुत सहायता मिलती है।

इस प्रकार अधिक जल पीनेसे तो शरीरका ऊपरी भाग स्वच्छ होता रहता है

और एनिमा लेनेसे पेट, पेड़ू और आंतों आदिकी सफाई होती रहती है ×। अधिक जल पीने और एनिमा लेनेवाले उपवासकारियोंकी सांस बहुत साफ हो जाती है और जीभपर जमी हुई पपड़ी छूट जाती है और उनकी जीभकी रंगत ठीक वैसी ही गुलाबी हो जाती है, जैसी किसी छोटे नीरोग बालककी जीभकी होती है। सांसमें किसी प्रकारकी बदबू नहीं रह जाती और मुँहका स्वाद बहुत अच्छा हो जाता है।

कुछ ज्ञातव्य बातें

बहुत सम्भव है कि कुछ लोग उपवास करनेको बड़ा भारी युद्ध समझें और उसके लिए तरह तरहके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित होनेका प्रयत्न करें। ऐसे लोगोंसे हमारा निवेदन है कि उपवासके लिए पहलेसे कभी किसी प्रकारकी तयारीकी आवश्यकता नहीं होती। न तो बहुत पहलेसे उपवासके उद्देश्यसे ही लम्बी-चौड़ी कसरतें करनेकी आवश्यकता है और न खाने-पीनेमें कोई बड़ा परहेज करनेकी ही। उपवास एक बहुत ही सीधी-सादी और प्राकृतिक क्रिया है। जिस प्रकार प्यास लगनेपर जल पीनेके लिए किसी प्रकारके सोच-विचारकी आवश्यकता नहीं होती, उसी प्रकार रोगग्रस्त होनेपर उपवास करनेके लिए भी किसी प्रकारका सोच-विचार न होना चाहिए। उपवासके आरम्भमें केवल मनको शान्त और अविकल रखनेकी आवश्यकता होती है; जहाँ मनकी उपवाससम्बन्धी उद्विग्नताका नाश हुआ वहाँ उपवासमें फिर और किसी प्रकारकी अड़चन या कठिनता नहीं रह जाती।

दूसरी बात ध्यान रखने योग्य यह है कि उपवास-कालमें किसी प्रकारकी ओषधि आदिका कदापि सेवन न करना चाहिए। उपवास एक प्राकृतिक क्रिया है और उसके साथ किसी अप्राकृतिक क्रियाका व्यवहार नहीं होना चाहिए। सन् १९०३ में लन्दनके एक रोगीने चालीस दिनोंका उपवास किया था। उपवासके अन्तमें उसे शरीरके एक ऐसे अङ्गमें कुछ पीड़ा जान पड़ी जिसमें उसे पहले कभी कोई पीड़ा नहीं हुई थी।

× एनीमा लेनेकी विधि हमारे यहाँसे प्रकाशित 'विद्यार्थियोंका सच्चा मित्र' नामक पुस्तकमें देखिए। —प्रकाशक

मंगलके दिन उसने अपना उपवास समाप्त किया था और शुक्रवारके दिन उसकी मृत्यु हो गई। पता लगानेपर मालूम हुआ कि उपवास छोड़नेके दूसरे ही दिन वह एक डाक्टरके पास चला गया था, जिसने उसे औषधके अतिरिक्त कुछ दूध और फलोंका रस भी दिया था और उसकी मृत्यु इसी कारणसे हुई थी। उपवास करनेवालोंको इस बातका सदा ध्यान रखना चाहिए कि उपवास-कालमें और उसके उपरान्त शरीरकी हालत बहुत ही नाजुक हो जाती है और उस दशामें औषधों आदिका शरीरपर बहुत ही भयकर परिणाम होता है।

जो लोग अपने रोगोंकी चिकित्सा औषध आदिसे करते हैं, बहुधा औषध छोड़ देनेपर उनके रोग फिरसे उन्हें कष्ट देने लगते हैं। पर उपवासकी सहायतासे नीरोग हो जानेपर रोगके फिरसे उभड़ आनेकी कभी कोई सम्भावना नहीं रहती। हाँ, उपवास समाप्त करनेके कुछ दिनों बाद यदि वह फिर औषधोंका सेवन आरम्भ कर दे, तो अवश्य ही वह फिरसे रोगी हो सकता है।

कुछ लोग यह प्रश्न कर सकते हैं कि यदि हम उपवास न करके केवल अपना भोजन घटा दें, तो क्या उससे हमें लाभ न होगा? इसका उत्तर यही है कि बहुत छोटे और साधारण रोगोंमें तो थोड़े भोजनसे अवश्य लाभ होता है, पर तीव्र और भयकर रोगोंके समय उससे कोई लाभ नहीं होता। बात यह है कि रोगी होनेपर हम जो कुछ खाते हैं उससे हमारे शरीरकी अपेक्षा, रोगका ही अधिक पोषण होता है। भोजन करके रोगको पालनेकी अपेक्षा भोजन छोड़कर उसे दूर कर देना ही अधिक बुद्धिमत्ता है। बहुतसे लोगोंने बहुत दिनों तक थोड़ा भोजन करके यही सिद्धान्त निकाला है कि उसका कोई परिणाम नहीं होता। दूसरी बात यह कि उपवास करनेकी अपेक्षा थोड़ा भोजन करके रहना बहुत कठिन और कष्टप्रद है। उपवासमें तो केवल दो-तीन दिनोंतक ही कष्ट होता है और इसके बाद जब भूख मारी जाती है तब मनुष्य बड़े सुखपूर्वक रहता है। पर थोड़ा भोजन करनेवालोंका कष्ट सदा बना रहता है। थोड़ा भोजन करनेसे भूख बढ़ती है और तब मनुष्यको विवश होकर अधिक भोजन करना ही पड़ता है। अप्टन सिंक्लेअरने एक बार केवल थोड़ेसे फल खाकर ही कुछ दिनोंतक रहना निश्चय किया था। पर उस कालमें उन्हें इतनी अधिक दुर्बलता जान पड़ने लगी, जितनी उपवास-कालमें कभी नहीं जान पड़ती थी। इसलिए थोड़ा भोजन करके रहना कष्टदायक भी है और व्यर्थ भी। जो लोग एकदम

उपवास न कर सकते हों वे पहले महीनेमें एक या दो दिनका ही उपवास करें और इसी प्रकार उपवासका अभ्यास बढ़ाते जायँ, तो अवश्य ही फायदेमें रह सकते हैं।

यह भी प्रश्न हो सकता है कि मनुष्यको उपवास-कालमें अपना नियमित काम-धन्धा करना चाहिए या नहीं। जिस प्रकार और बातोंमें कुछ शर्तें होती हैं उसी प्रकार इसमें भी कुछ खास शर्तें हैं। जिस मनुष्यकी जीवन-शक्ति बहुत ही घट गई हो, वह यदि अधिक समय तक या कठिन और भारी काम करेगा तो अवश्य ही उसके शरीरपर उसका बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ेगा। तथापि ऐसे मनुष्यको कुछ टहलना-फिरना थोड़ा व्यायाम अवश्य करना चाहिए। जो मनुष्य बिछौनेपरसे भी न उठ सकता हो वह भी बिछौनेपर पड़ा-पड़ा ही अपने शरीरको इधर-उधर हिला-डुला सकता और इस प्रकार व्यायामसे होनेवाला थोड़ा-बहुत लाभ उठा सकता है; पर जिस मनुष्यके शरीरमें थोड़ी-बहुत शक्ति हो उसके लिए यथासाध्य अपने काम-काजमें लगा रहना ही अधिक उत्तम है। यह बात सदा स्मरण रखनी चाहिए कि प्रत्येक दशामें मनकी स्थितिका शरीरपर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। जिस मनुष्यका मन काममें लगा रहेगा उसका शरीर बहुधा ठीक दशामें ही रहेगा। मनको इधर-उधर भटकानेसे बचाने और कृत्रिम भूखके फेरमें न पड़नेके लिए काम-धन्धेसे बहुत अच्छी सहायता मिलती है। ठाली बैठे रहनेवाले लोग कृत्रिम भूखके फन्देमें फँसकर अपना उपवास छोड़ भी सकते हैं। बहुत ही प्रबल इच्छा-शक्तिवाले लोगोंके लिए भी काम-धन्धेमें लगे रहना बहुत ही आवश्यक और लाभदायक है। उपवास कालमें जहाँतक हो सके, हाथों, पैरों, और मनको किसी न किसी काममें लगाये रखना चाहिए। इस अवसरपर यह बतला देना भी आवश्यक है कि गरमीके दिनोंमें उपवास करना बहुत कठिन होता है। उस समय मनुष्य बहुत ही निर्बल हो जाता है। जाड़ेमें उपवास तो अवश्य अच्छी तरह हो सकता है, पर उन दिनों कठिनता यह होती है कि मनुष्यको भूख लगने लगती है। पर यदि आरोग्यपर पड़नेवाले प्रभावके विचारसे देखा जाय तो जाड़ेके दिन ही अधिक उत्तम ठहरते हैं, क्योंकि अनुभवसे यह बात सिद्ध हो चुकी है कि गरमीमें तीन दिनोंतक उपवास करनेसे शरीरको जितना लाभ पहुँचता है, जाड़ेमें उतना ही लाभ केवल दो दिनोंमें होता है।

वड़ा और छोटा उपवास

उपवास दो प्रकारके होते हैं। एक उपवास तो वहुत दिनोंका और दूसरा उपवास थोड़े दिनोंका होता है। जो लोग वहुत दिनोंके उपवासको उत्तम वतलाते हैं वे भी उसकी अवधि निश्चित नहीं करते,—वे यह नहीं वतलाते कि अधिकसे अधिक कितने दिनों तक उपवास किया जा सकता है। उनका यह कथन है कि उपवासकी अवधि स्वयं प्रकृति निश्चित करती है। हमारी प्रकृति हमें यह वतला देती है कि हम एक सप्ताहतक निराहार रहें या एक मासतक। उनका यह भी मत है कि जवतक प्राकृतिक और वास्तविक भूख न लगे, तवतक भोजन न करना चाहिए। भोजनकी वास्तविक रुचि या असली भूखकी निशानी साधारण और अभ्यास-जन्य रुचिसे कुछ भिन्न प्रकारकी होती है और जिस प्रकार सूर्यके प्रकाशके सामने और सव प्रकारके प्रकाश एकदम तुच्छ जान पड़ते हैं, उसी प्रकार वास्तविक क्षुधाके सामने कृत्रिम या और किसी प्रकारकी क्षुधा विल्कुल ही तुच्छ वोध होने लगती है। उपवास करनेवालेको वास्तविक भूख और खानेकी इच्छा मात्रका भेद तुरन्त मालूम हो जाता है। इस सिद्धान्तकी सत्यताके प्रमाणस्वरूप वे लोग उपस्थित किये जा सकते हैं जिन्होंने अस्सी और नव्वे दिनोंतकके उपवास किये हैं।

साधारण रोगोंके समय यही वात ठीक जान पड़ती है कि जव तक रोगका जोर विल्कुल नष्ट न हो जाय और वास्तविक भूख न लगे तवतक उपवास वरावर जारी रखना चाहिए। जिन लोगोंकी जीवन-शक्ति वहुत ही घट गई हो अथवा जो अपनी मानसिक या शारीरिक दुर्वलताके कारण अधिक दिनोंतक उपवास न कर सकते हों वे वड़े-वड़े उपवास न करके छोटे-छोटे उपवासोंसे ही वहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। हां, इसमें सन्देह नहीं कि छोटे उपवास करके विल्कुल नीरोग और स्वस्थ होनेमें वहुत समय लगता है। इसके अतिरिक्त उसमें अधिक समय तक विशेष सावधान रहनेकी आवश्यकता होती है। वड़े और छोटे उपवासके गुण और लाभ अप्टन सिंक्लेयरने वड़ी ही उत्तमतासे वतलाये हैं, इस अवसरपर इन्हींका सारांश देना अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। आप कहते हैं—

"वहुधा लोग प्रश्न किया करते हैं कि कितने दिनोंतक उपवास करना चाहिए

और यह किस प्रकार मालूम हो सकता है कि अब उपवास छोड़नेका समय आ गया। मैं एक उपवास भी पूरा नहीं कर सका। मैंने दो बार बारह-बारह दिनोंके उपवास किये हैं। दोनों बार मुझे उपवास छोड़ना पड़ा था। इसका कारण यह था कि मैं बारह दिनोंमें ही बहुत दुर्बल हो गया था और मेरी बहुत इच्छा होती थी कि मेरा शरीर बहुत जल्दी फिरसे पहलेकी भाँति सबल हो जाय। यद्यपि उन बारह दिनोंतक मुझे वास्तविक भूख नहीं लगी थी, तो भी कई डाक्टरोंने मुझसे कहा था कि इन बारह दिनोंके उपवाससे ही तुम्हें बहुत कुछ लाभ पहुँच चुका है। और बात भी वास्तवमें कुछ ऐसी ही थी। मेरी समझमे पाचन-शक्तिके मन्द पड़ने, आँतोंमें मल जमा होने, सिरमें दर्द रहने, कब्जियत होने अथवा इसी प्रकारकी और दूसरी साधारण छोटी-मोटी शिकायतोंके लिए दस-बारह दिनोंका उपवास बहुत ठीक होता है। पर जिन लोगोंको नासूर, गरमी, बवासीर, गठिया आदि भारी और भयकर रोग हों, उन्हें अधिक दिनोंतक उपवास करना चाहिए।

"यदि कोई मनुष्य एक बार उपवास आरम्भ करे और उपवास-कालमें उसे किसी प्रकारकी कठिनता या कष्ट बोध न हो तो उसे यथासाध्य कुछ अधिक समयतक उपवास अवश्य जारी रखना चाहिए। लोगोंको केवल अपना सामर्थ्य दिखलाने, अपना कुतूहल शान्त करने या दिल्लगी देखनेके लिए कभी बड़ा उपवास न करना चाहिए। बार-बार छोटे या बड़े उपवास करना भी ठीक नहीं। यदि किसीको कई बार बराबर उपवास करनेकी आवश्यकता जान पड़े तो उसे समझ लेना चाहिए कि किसी बहुत बुरी आदत या क्रियाके कारण उसका शारीरिक संगठन बिल्कुल बिगड़ गया है। ऐसी दशामें उसे सब प्रकारके अनुचित कार्यों और अभ्यासोंको सदाके लिए छोड़कर तब उपवास करना चाहिए। जो लोग दुबले-पतले हों उन्हें अधिक दिनोंतक कदापि उपवास न करना चाहिए। अधिक दिनोंतक उपवास करनेकी शक्तिका आधार मनुष्यके शरीरकी मोटाई है। जो मनुष्य जितना ही अधिक मोटा होगा और जिसके शरीरमे जितना ही अधिक फालतू द्रव्य संग्रहीत होगा, वह उतना ही लम्बा उपवास कर सकेगा। जबतक मनुष्यको स्वयं यह निश्चय न हो जाय कि मुझे केवल बड़े उपवाससे ही लाभ होगा, तबतक उसे कभी अधिक दिनोंतक उपवास न करना चाहिए। जिसे इस विषयमें तनिक भी शंका हो उसे सदा थोड़े दिनोंका उपवास करना ही उचित है। यदि थोड़े दिनोंके उपवासका अनुभव प्राप्त करनेके उपरान्त

भविष्यमें उसे किसी प्रकारका भय या संकट न दिखाई पड़े तो वह उसी उपवासको कुछ अधिक दिनोंतक जारी रख सकता है ; अथवा आवश्यकता पड़नेपर एक बार उपवास छोड़कर दूसरी बार अधिक दिनोंका उपवास कर सकता है ।"

छोटे बच्चोंके लिए उपवास

छोटे बच्चोंको उपवाससे इतने अधिक लाभ होते हैं जितने वयस्क पुरुषोंको नहीं होते । दुधमुँहे और पालनेमें झूलनेवाले बच्चोंसे लेकर १४-१५ वर्ष तककी अवस्थाके बच्चोंके लिए उपवास बहुत ही लाभदायक होता है । बालकोंको बहुधा छोटी-मोटी बीमारियाँ हो जाया करती हैं । यदि माता-पितामें इतना साहस और विश्वास हो कि बालकको किसी प्रकारका छोटा-मोटा रोग होते ही वे उसका भोजन आदि बन्द कर दें, तो वे रोग देखते ही देखते आश्चर्यजनक रूपसे दूर हो जायँगे । जुकाम और खाँसीसे लेकर बड़े-बड़े भयकर ज्वरोंतक सब रोग इस प्रकार बहुत ही सहजमें दूर किये जा सकते हैं ।

इस अवसरपर बड़े उपवासके सम्बन्धमें यह बतला देना बहुत ही आवश्यक जान पड़ता है कि चार-छह दिनसे अधिक लम्बा उपवास बिना किसी अच्छे चिकित्सक और विशेषतः उपवासचिकित्सक की सम्मति और देख-रेखके कदापि न करना चाहिए । क्योंकि कभी-कभी उसके सम्बन्धमें पूर्ण नियम आदि न जानने अथवा उनके पालन न करनेसे बहुत कुछ हानिकी सम्भावना है । जो लोग अधिक लम्बा उपवास करना चाहते हों, उन्हें उचित है कि वे किसी उपवास-चिकित्सककी सम्मति लेकर अथवा अपने ही नगरके किसी योग्य चिकित्सककी देख-रेखमें रहकर उपवास करें ।

बालकोंका शारीरिक सगठन ही इतना उत्तम और आरोग्यवर्द्धक होता है कि उन्हें कभी किसी प्रकारकी ओषधि की आवश्यकता ही नहीं होती । ज्यों ही किसी बालकको कोई रोग हो त्यों ही उसका भोजन बन्द कर दो, उसे केवल स्वच्छ जल पीनेके लिए दो और उसे उसकी प्रकृतिपर छोड़ दो और तब देखो कि वह कितनी जल्दी नीरोग और स्वस्थ हो जाता है । इस सम्बन्धमें तनिक भी भय या चिन्ताका कभी कोई कारण नहीं है । क्योंकि इससे बढ़कर आश्चर्यजनक और रामबाण चिकित्सा हो

ही नहीं सकती। जो माता-पिता एक-दो बार भी इस चिकित्साकी परीक्षा करेंगे, वे आगे चलकर अपनी पहली मूर्खता और दूसरोंके व्यर्थ भय आदि पर हँसने लगेंगे।

पर यदि किसी बालकके रोगी होने पर महीनों तरह-तरहकी ओषधियाँ देकर उसका स्वास्थ्य बिल्कुल बिगाड़ दिया जायगा और उसे मृत्यु-मुख तक पहुँचा दिया जायगा, तो उसको बचा लेनेकी शक्ति उपवासमें भी न दिखलाई पड़ेगी। उस दशामें अपनी मूर्खताका दोष उपवासके मत्थे न मढ़ना चाहिए। हाँ, यदि दूषित उपायोंसे बालकका शरीर बिगड़ न गया हो, उसके शरीरमें तरह-तरहके विष न भरे गये हों तो अवश्य ही उपवासका चमत्कार देखा जा सकता है। सबसे पहली बात तो यह है कि स्वयं बालकके शरीरमें कभी किसी प्रकारका रोग नहीं होता। या तो वह रोग माता-पिताके कुपथ्य और दोषों आदिके कारण हो सकता है और या तरह-तरहकी ओषधियों आदिकी सहायतासे उसमें आरोपित किया जाता है। जिस प्रकार किसी प्रतिष्ठित भले आदमीकी प्रवृत्ति चोर-डाकू या खूनी बननेकी ओर नहीं हो सकती, उसी प्रकार किसी बालकके शरीरकी प्रवृत्ति रोगी होनेकी ओर नहीं हो सकती। बहुतसी अवस्थाओंमें तो यहां तक देखा गया है कि यदि बालक कोई रोग साथ लेकर उत्पन्न हो, तो आगे चलकर उसका बाल-शरीर ही उस रोगको नष्ट कर देता है। पर दुर्भाग्यवश हम लोगोंको यह मिथ्या भ्रम हो जाता है कि बालकको सदा भोजन की आवश्यकता बनी रहती है। रोगी होनेके समय उसे औषध अवश्य देनी चाहिए, यदि उसे नींद न आती हो तो थोड़ी अफीम या और कोई नशीली चीज़ खिला देनी चाहिए, आदि आदि। और इसी भ्रमके कारण हम लोग जान-बूझकर बालकों-के शरीरको रोगोंका घर बना देते हैं।

प्रकृति हमें यह बात बतलाती है कि किसी बालकको जन्म लेनेके उपरान्त कम-से कम तीन दिनतक किसी प्रकारके भोजनकी आवश्यकता नहीं होती। साधारणतः प्रत्येक दाई और माता यह बात अच्छी तरह जानती है कि बालकको जन्म लेनेके तीसरे दिन दूध पिलाया जाता है। वह दूध भी बहुत ही थोड़ी मात्रामें होता है। पर उसके बाद ही माता या दाई उसे थोड़ी थोड़ी देरके बाद जबरदस्ती अथवा जब-जब वह रोता है तब-तब उसे दूध पिलाती है। इस प्रकार बाल्यावस्थासे ही बालककी पाचनक्रिया और शक्ति बिगाड़ी जाती है। धीरे-धीरे बालकपर भूखका अधिकार बढ़ता जाता है। उसके पीछे एक ऐसी बुरी आदत लगा दी जाती है कि

जो आजन्म उसका पीछा न छोड़नेके अतिरिक्त उसे तरह-तरहके रोगोंका पात्र बना देती है। छोटे बालकोंको केवल दिनके समय और वह भी कमसे कम दो-दो घंटोका अन्तर देकर बहुत ही थोड़ी मात्रामें दूध पिलाना चाहिए और रातको कभी दूध न पिलाना चाहिए। जिस समय बालक रोता हो उस समय उसे दूध पिलानेके बदले एक चमचा पानी पिला देना चाहिए। अधिकांश अवसरोंपर बालकका रोना उसी पानीसे ही शान्त होगा और वह तुरन्त सो जायगा। यह बात चाहे साधारणतः लोगोंके मनमें न बैठे, पर इसमें सन्देह नहीं कि यदि अनुभव करके देखा जाय तो जान पड़ेगा कि इस प्रकार पाले हुए बालकोंमेंसे ७५ प्रति सैकड़े सदा नीरोग और हृष्ट-पुष्ट बने रहेंगे। प्रत्येक रोग भूख और जीभको काबूमें न रखनेके कारण ही होता है। जिस बालकको आरम्भसे ही भूख और जीभको काबूमें रखनेकी शिक्षा दी जायगी, वह वयस्क होनेपर कभी रोगी न होगा।

पर अभाग्यवश आज-कलके जमानेमें बहुत ही थोड़े बालक इस प्रकार पाले जाते हैं। प्रायः उन्हें बार-बार और इतना अधिक दूध पिलाया जाता है कि पाचन-क्रियाके प्राकृतिक नियमों और प्रेरणाओं आदिका बुरी तरह नाश हो जाता है। यहाँ तक कि जब बालक उनकी समझसे कम दूध पीता है तब वह रोगी माना जाता है और उसकी चिकित्साकी चिन्ता होने लगती है; पर जो लोग ध्यान और विचार-पूर्वक उपवाससे होनेवाले लाभोंकी जाँच करते हैं उन्हें तुरन्त यह मालूम हो जाता है कि बालकोंके प्रायः सभी रोगोंका सम्बन्ध अनियमित और अधिक भोजनसे ही होता है। वास्तवमें स्वयं शरीर कभी रोगी नहीं होता ; प्रकृतिके नियमोंके उल्लंघन, कुपथ्य और परिस्थिति आदिके विरोधके कारण उसे रोगी होनेके लिए विवश होना पड़ता है। प्रत्येक माता पिताका यह प्रधान कर्त्तव्य होना चाहिए कि वह अपने बालकके स्वास्थ्यकी, उसे इन सब बातोंसे बचाकर, रक्षा करे।

उपवास किसे न करना चाहिए ?

अनुभव और परीक्षासे पता लगा है कि कई रोग ऐसे भी हैं जिनमें उपवाससे कोई लाभ नहीं होता। उनमेंसे एक क्षयरोग भी है। इस रोगमें रोगीकी जीवन-शक्ति इतनी अधिक नष्ट हो जाती है कि वह अधिक दिनोंतक उपवास कर ही नहीं

सकता। ऐसे लोग यदि थोड़ा-थोड़ा भोजन करें अथवा छोटे-छोटे उपवास करें तो उन्हें बहुत लाभ हो सकता है। थोड़े विचारसे ही इस सिद्धान्तकी उपयुक्तताका पता चल जाता है। बहुत ही थोड़ीसी बची हुई शक्तिवाले रोगीके लिए बड़ा उपवास करना कदापि युक्तिसंगत नहीं हो सकता; क्योंकि उपवासके आरम्भमें शक्तिका ह्रास होता है। यदि बची हुई शक्तिका इस प्रकार नाश कर दिया जायगा, तो 'रोग रहे न रोगी' वाली कहावत ही चरितार्थ होगी। हां, यदि उसे पहले एक या दो दिनका उपवास कराया जायगा, तो पाचन-शक्ति और पक्वाशयको कुछ आराम मिलेगा और उनसे रोगको पचाने और विषोंको बाहर निकालनेमें कुछ सहायता मिलेगी। इसके उपरान्त उसे थोड़ी मात्रामें ऐसा भोजन देना, उचित होगा जो शीघ्र ही पच सके और तदुपरान्त एक दूसरा छोटा उपवास कराना ठीक होगा। इस क्रियासे धीरे-धीरे उसका शरीर नीरोग होने लगेगा और उसका बल भी न घटने पावेगा।

यदि क्षयके रोगीको आरम्भमें ही उपवास कराया जाय तो उससे बहुत लाभ हो सकता है। डा० मैकफेडनने अपने चिकित्सालयमें कई ऐसे रोगियोंको जिन्हें क्षयरोग आरम्भ हुआ था, उपवास कराके चंगा किया था। कुछ अवस्थाओंमें यह भी देखा गया है कि उपवास-कालमें रोगीके शरीरका जो वजन घटा था, वह नीरोग होनेपर फिर न बढ़ा, ज्योंका त्यों बना रहा। बहुत सम्भव है कि ऐसे रोगी उपवास के उपरान्त भोजन आदिमें कुपथ्य करते हों और उसीके फलस्वरूप उनका वजन न बढ़ता हो।

यह बात आवश्यक नहीं है कि संसारके प्रत्येक रोगमें उपवास ही किया जाय। जो मनुष्य आवश्यकतासे अधिक खाता हो, यह समझकर कि अधिक भोजनसे हमारे शरीरका बल बढ़ेगा, थोड़ी-थोड़ी देरके बाद और बहुतसा खाता हो तो अवश्य यह मानना पड़ेगा कि वह बहुत अधिक भोजन करनेके कारण ही रोगी हुआ है। ऐसे मनुष्यके रक्तमें बहुतसा विष उत्पन्न हो जाता है जिसका परिणाम उसके शरीरके लिए बहुत ही हानिकारक होता है। प्राकृतिक नियम यह है कि यदि ऐसा मनुष्य उपवास करे और कुछ समयके लिए भोजन छोड़ दे तो अवश्य ही उसके रक्तमें का विष नष्ट हो जायगा और उसके शरीरका बल बढ़ेगा। पर जो मनुष्य बहुत दिनोंसे आवश्यकतासे कम भोजन करता आया हो और इस प्रकार बहुत ही दुर्बल हो गया हो, उसे उपवास करानेके लिए बहुत ही सावधानीकी आवश्यकता होती है। एक

दो अथवा अधिकसे अधिक तीन दिनोंके उपवाससे ही ऐसे मनुष्यकी पाचन-शक्ति सुधरकर अपनी साधारण अवस्थातक पहुँच जायगी और वह यथेष्ट भोजन पचानेके योग्य हो जायगा। ऐसे लोगोंको तीन दिनसे अधिक निराहार रहनेकी आवश्यकता न होगी। उपवासकी समाप्तिपर ऐसे लोगोको थोड़ासा हलका और अधिक पोषक भोजन देना चाहिए, जो जल्दी पच जाय और जिससे उसके शरीरका वल अधिक बढे और उसका अधिक पोषण हो। साधारणतः ऐसा उत्तम भोजन दूध ही माना जाता है और उससे वहुधा यथेष्ट लाभ पहुँचता है। वहुतसे रोगियोंको शक्ति इतनी नष्ट हो जाती है कि वे दूध भी नहीं पचा सकते। पर एसे लोगोको भी कभी निराश न होना चाहिए और वहुत ही थोड़ी मात्रामें दूध या फलो आदिका रस पीते रहना चाहिए।

ऊपर यह वतलाया जा चुका है कि जिन लोगोंकी जीवन-शक्ति वहुत अधिक नष्ट हो गई हो उन्हे कभी अधिक दिनोतक उपवास नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार जिन लोगोंका रोग औषध खाते-खाते वहुत अधिक वढ गया हो उन्हें भी उपवासको व्यर्थ वदनाम करनेके लिए भोजन न छोड़ना चाहिए। गर्भवती स्त्रियोंके लिए भी उपवास करना युक्तिसंगत नहीं है। इसके अतिरिक्त केवल मनोविनोद या दिखानेके लिए भी कभी उपवास न करना चाहिए। भारी शोक या चिन्ताके समय भी उपवास करना हानिकारक होता है ; क्योंकि उपवास-कालमे सदा प्रसन्नचित्त रहनेकी आवश्यकता होती है। जो लोग सव प्रकारसे नीरोग हों और जिनके शरीरमे किसी प्रकारकी बीमारी न हो, उन्हे भी व्यर्थ उपवास न करना चाहिए, क्योंकि उपवास केवल रोगको शरीरसे वाहर निकाल देनेकी एक सर्वोत्तम क्रिया है। स्वय उपवाससे शारीरिक सगठन और वल-वृद्धि आदिमें कोई सहायता नहीं मिलती। हाँ, जो विष और विकार आदि शरीर-संगठन और वल-वृद्धि आदिमें वाधक होते हैं, उन विषों तथा विकारोंको उपवास अवश्य ही शरीरके वाहर निकाल देता है।

जिस युवक अथवा युवतीकी पाचन-शक्ति ठीक हो, जिसे किसी प्रकारका रोग न हो, जिसका जिगर और फेफड़ा ठीक तरहसे काम करता हो, उसे उपवासकी कभी कोई आवश्यकता नहीं है। जिस मनुष्यका शरीर सव प्रकारसे नीरोग हो उसे केवल इसी वातकी आवश्यकता होती है कि वह पथ्यसे रहे, स्वच्छ वायुका सेवन करे और खूव कसरत करे। इस अवसरपर यह वात भूल न जानी चाहिए कि एक मात्र

उपवास ही सब रोगोंको नष्ट करनेका उपाय नहीं है; वल्कि इसके लिए शारीरिक नियम, खुली हवा, सूर्य्यके प्रकाश, पूरी नींद और यथेष्ट शारीरिक परिश्रमकी भी बहुत कुछ आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त सदा नीरोग रहनेके लिए शुद्ध और निर्दोष मनोवृत्ति, दृढ निश्चय और प्रफुल्लता आदिकी भी बहुत बड़ी आवश्यकता होती है।

उपवाससम्बन्धी कुछ परीक्षायें

जो लोग इस बातकी परीक्षा करना चाहें कि उपवाससे रोगका नाश होता है या नहीं, उनके लिए सबसे अच्छा और सहज उपाय यह है कि वे पहले एक या दो दिनतक उपवास करें। उस एक या दो दिनमें ही उन्हें बहुत कुछ लाभ मालूम होने लगेगा, और उस दशामें यदि उनको अच्छी तरह सन्तोष हो जाय तो वे और अधिक दिनोंतक उपवास कर सकते हैं। अथवा यदि उनकी हिम्मत न पड़ती हो, तो वे पहले बहुत छोटे-छोटे उपवास करें और ज्यों-ज्यों उन्हें उसके लाभ मालूम होते जायँ त्यों त्यों वे अधिक दिनोंके उपवास करते जायँ। जिन लोगोंकी देख-रेख के लिए योग्य उपवास-चिकित्सक न मिल सकते हों और जिन्हें स्वयं भी उपवास-सम्बन्धी विशेष जानकारी न हो, उनके लिए उस उपायका अवलंबन बहुत ही उत्तम और उपयुक्त है।

जिस उपवासकी समाप्तिपर जीभका स्वाद न सुधरे, जीभपर जमी हुई पपड़ी आपसे आप न उतर जाय तथा इसी प्रकारके और दूसरे ऐसे चिह्न न प्रकट हों जिनसे विषोंके बाहर निकल जानेका पूरा पूरा प्रमाण मिलता है, उस उपवासको अपूर्ण और अधूरा समझना चाहिए। साधारणतः आठ-दस दिनके उपवासको योग्य उपवास-चिकित्सक अधूरा ही समझते हैं। क्योंकि उन आठ-दस दिनोंमें भी वास्तविक उपवासके दिन चार या पाँच ही होते हैं; और ऐसे छोटे उपवास बिना किसी प्रकारकी कठिनता या कष्टके ही किये जा सकते हैं। ऐसे अधूरे उपवासोंसे शरीरकी कभी कोई शक्ति भी नहीं घटती। शक्तिके सम्बन्धमें सबसे पहले यह बात समझ लेनी चाहिए कि शक्ति न तो भोजन करनेके उपरान्त तुरन्त ही उत्पन्न होती है और

न दुर्बलता सदा थोड़ा खानेसे ही होती है; दुर्बलताका मुख्य कारण वे विष होते हैं जो हमारे रक्तमें मिल जाते हैं।

इस अवसर पर हम एक ऐसा उपाय बतलाते हैं जिससे उपवासकी परीक्षा भी हो सकती है और आरम्भ भी। जो लोग उपवासपर विश्वास न करते हों अथवा विश्वास करनेपर भी जिनमें उससे लाभ उठानेका साहस न हो उनके लिए यह उपाय बहुत ही अच्छा है। ऐसे मनुष्योंको उचित है कि वे पहले दिन उपवास करें और दो दिनतक नियमित भोजन करें और तब दो दिनों तक उपवास करके चार दिन नियमित भोजन करें; तदनन्तर वे चार दिन बिना भोजनके रहकर आठ दिन भोजन करें और यह क्रम बराबर जारी रक्खें। इसमें सिद्धान्त यही होना चाहिए कि एक बार वे जितने दिनोंका उपवास करें, उपवासके उपरान्त उससे दूने दिनोंतक वे भोजन करें। इस प्रकार उन्हें उपवासके लाभ भी मालूम हो जायँगे और वे बिना अधिक कष्ट सहे उपवासका अभ्यास भी कर लेंगे। इसके सिवा उन्हें उपवास-कालमें प्रकट होनेवाले अनेक चिह्नों तथा उसके सम्बन्धमें दूसरी बहुतसी आवश्यक और जानने योग्य बातोंका पता भी लग जायगा और वे उस सम्बन्धमें सब प्रकारका अनुभव भी प्राप्त कर लेंगे। इस अवसरपर हम यह भी बतला देना चाहते हैं कि उपवासकालमें कभी स्वच्छ जलके अतिरिक्त और किसी चीजका बहुत छोटा टुकड़ा या एक दाना भी न खाना चाहिए, नहीं तो भूख उभड़ आवेगी और तब विवश होकर उन्हें भोजन करना ही पड़ेगा। उस समय सारा परिश्रम व्यर्थ हो जायगा।

बहुत छोटा और अधूरा उपवास प्रत्येक दशामें और प्रत्येक अवसर पर किया जा सकता है। एक नीरोग मनुष्य जब चाहे तब एक या दो बारका भोजन छोड़कर अच्छा लाभ उठा सकता है। उपवासके लाभोंका बहुत कुछ पता उसीसे लग जाता है। जो मनुष्य यह समझता हो कि मुझे उपवास करनेकी आवश्यकता है, पर उसे लम्बे या बड़े उपवासोंसे भय लगता हो वह पहले एक बारका भोजन छोड़े। तदुपरान्त जब उसे बहुत अधिक भूख लगे तब वह एक या दो गिलास साफ गरम पानी पी ले। अथवा एक गिलास ठंढा पानी बहुत ही धीरे-धीरे, मानों चूस-चूसकर पीये। यदि उस समय मुँहका स्वाद कुछ बिगड़ जाय और पानी अच्छा न लगे, तो उसमें नीबू या किसी और फलका बहुत थोड़ासा रस डाल ले। जिस समय मुँहका स्वाद बदला हो अथवा भूख न मालूम हो उस समय कदापि भोजन न करना चाहिए। भूखकी सबसे अच्छी परीक्षा

यही है कि मुँहका स्वाद ठीक हो और जो कुछ खाया वह बहुत स्वादिष्ट मालूम हो। भोजन उसी समय अच्छी तरह पचता है जब कि वह स्वादसे सादा होनेपर भी बहुत स्वादिष्ट जान पड़े। मुँहके अन्दर कुछ विशेष भाग ऐसे हैं जिन्हें अँगरेजीमें yast bueds कहते·हैं। भोजनका स्वाद उसी समय मिलता है जब कि भोजनका उन भागोंमें समावेश होता है और उनमें भोजनका समावेश उसी समय होता है जब कि मनुष्यका पक्वाशय खाली और भोजन ग्रहण करनेके लिए तैयार हो। जिस समय पाचन-शक्तिके लिए पहलेसे ही बहुत-सा काम तैयार हो और उसे नये भोजनको पचानेकी आवश्यकता न हो उस समय मनुष्यको भोजनका वास्तविक स्वाद कभी नहीं मिल सकता। स्वाद हमें यह बतलाता है कि इस समय हमें भोजनकी आवश्यकता है या नहीं।

जो लोग उपवास करते हों उनके लिए बीच-बीचमें यह जाननेकी भी बड़ी आवश्यकता होती है कि अभी उपवास पूरा हुआ है या नहीं। यद्यपि उपवासकी समाप्तिपर मनुष्यको वास्तविक भूख लगती है और उसे भोजनकी बहुत अधिक आवश्यकता होती है, तथापि इसके अतिरिक्त और भी ऐसे उपाय हैं जिनसे उपवासकी समाप्तिका पता चल जाता है। कभी-कभी उपवासकी समाप्तिसे पहले ही किसी विशेष कारणवश कृत्रिम भूख लगनेकी भी सम्भावना होती है और उस दशामें अनेक दूसरे चिह्नोंसे इस बातका पता लगता है कि अभी उपवास समाप्त हुआ या नहीं। उपवाससे शरीरको पूरा-पूरा लाभ पहुँचानेका सबसे अच्छा चिह्न यह है कि उपवास-कालमें जीभपर जो पपड़ी जमती है वह स्वयं ही धीरे-धीरे साफ हो जाय और जीभका वास्तविक गुलाबी रंग भीतरसे निकल आवे*। इसके अतिरिक्त उस समय मुँहका स्वाद भी बहुत अच्छा और मीठा हो जाता है और साँस बहुत साफ हो जाती है। पहले जो असाधारण और बहुत विलक्षण भूख लगी रहती थी वह मिट जाती है और उसके स्थानपर हलकी और स्वाभाविक भूख उत्पन्न होती है। उस समय बहुत हलके और स्वास्थ्यप्रद भोजनकी ओर रुचि होती है, सभी अच्छी-बुरी चीजोंपर मन नहीं चलता।

कुछ अवस्थायें ऐसी भी होती हैं जिनमें रोगीको बीचमें ही उपवास छोड़ देना

---

* यह चिह्न सर्वथा ही विश्वसनीय नहीं है, इसके लिए परिशिष्टमें विस्तारसे लिखा गया है, उसे पढ़िए।

चाहिए। जिस समय रोगीमें चलने-फिरने, यहांतक कि उठने-बैठनेकी भी शक्ति न रह जाय और जब कि वह इतना निर्बल हो जाय कि सदा बिछौनेपर ही पड़ा रहे तो उसे अपना उपवास छोड़कर भोजन आरम्भ कर देना चाहिए। उस समय उसे बहुत थोड़ा दूध या फलों आदिका रस पीना चाहिए जिसमें उसका शरीर धीरे-धीरे हरा होने लगे। पर इस अवसरपर यह बात भूल न जानी चाहिए कि उपवास-कालमें बहुधा कृत्रिम दुर्बलता भी हो आती है। यदि प्रातःकाल सोकर उठनेके समय दुर्बलता जान पड़े और सिरमें चक्कर आवे अथवा उठा न जाय, तो उस समय थोड़ा साहस करके उठ बैठना चाहिए और धीरे-धीरे या लकड़ी आदिके सहारे इधर-उधर टहलना चाहिए। इस प्रकार थोड़ी ही देरके बाद शरीरकी सब शक्तियां चैतन्य और जाग्रत हो जायँगी और शरीरमें साधारण शक्ति आ जायगी। बहुतसे ऐसे रोगी देखे गये हैं जिन्हें पहले तो बहुत अधिक दुर्बलता जान पड़ती थी, पर जहां उन्होंने थोड़ी गहरी और लम्बी सांसें लीं और दो-चार बार उठने-बैठने का प्रयत्न किया तहां उनमें इतनी शक्ति आ गई कि वे बिना थके हुए मीलोंका चक्कर लगा आये। ऐसे लोगोंको कभी उपवास छोड़नेकी कोई आवश्यकता नहीं है। हां, जो लोग वास्तवमें एकदम निर्बल हो गये हों और सब कुछ प्रयत्न करनेपर भी उठने-बैठनेतकमें असमर्थ हों, उन्हें अवश्य उपवास छोड़ देना चाहिए। बात केवल यही है कि उपवास-कालमें शरीरकी शक्तियोंको जाग्रत करने और काम करनेके योग्य बनानेके लिए थोड़ेसे परिश्रमकी आवश्यकता होती है। शरीरमेंसे आलस्य निकलते ही मनुष्य ज्योंका त्यों हो जाता है और अपने काम बड़े आनन्दसे पहलेकी तरह करने लगता है। वास्तविक दुर्बलता बहुधा उन्हीं लोगोंको होती है जो आवश्यकतासे अधिक उपवास कर जाते हैं, या उपवास-कालमें यथेष्ट व्यायाम नहीं करते।

उपवास किस प्रकार छोड़ना चाहिए ?

उपवास करनेवालोंके लिए यह जानना बहुत अधिक आवश्यक है कि उपवास किस प्रकार छोड़ना चाहिए। यदि उपवास छोड़नेके समय किसी प्रकारकी असावधानता या कुपथ्य हो जाय तो उपवासका सारा लाभ नष्ट हो जाता है और कभी-कभी उलटे हानि भी सहनी पड़ती है। यदि नियमोंका ठीक-ठीक पालन किया जाय तो

चिन्ताकी कोई वात नहीं रह जाती और शरीर विल्कुल नीरोग और पुष्ट हो जाता है। उपवास छोड़नेके उपरान्त कुछ अधिक खा लेनेसे मृत्युतककी सम्भावना होती है। इसलिए बहुत तेज भूखके फेरमें पड़कर एक ही वारमें बहुतसा भोजन न कर लेना चाहिए। उपवास छोड़नेके उपरान्त खानेकी इच्छा इतनी अधिक होती है कि उस समय जो कुछ मिले वही खा जानेका मन करता है। इसका यह कारण नहीं है कि उस समय उपवास करनेके उपरान्त भूखका जोर ही इतना अधिक बढ़ जाता है; बल्कि उस समय मनकी अवस्था ही ऐसी हो जाती है। इस सम्बन्धमें एक अच्छे विद्वान्‌का मत है—

"उपवास छोड़नेके समय बहुत सावधानी रखनी चाहिए। उपवासकी समाप्तिके उपरान्त शरीरकी रचना मानो पुनः नये सिरेसे होती है और उस समय इस बातपर विशेष ध्यान रखना चाहिए कि हम क्या खायँ, किस प्रकार खायँ और कितना खायँ। उपवास छोड़नेके उपरान्त जब हम भोजन आरम्भ करते हैं, उस समय यदि अधिक खाना आरम्भ कर दें तो उपवास करनेने हमारे शरीरको जितने लाभ हुए होंगे वे सब नष्ट हो जायँगे। इसलिए उपवास छोड़नेके समय किसी अच्छे उपवास-चिकित्सककी सम्मति लेनी चाहिए, और जिस प्रकार वह बतलाये उस प्रकार हमें भोजन करना चाहिए; और बराबर कसरत जारी रखनी चाहिए।"

अधिक दिनोंतक उपवास करनेवाले लोगोंको उपवास छोड़नेके समय भोजनपर विशेष ध्यान रखनेकी आवश्यकता होती है। हाँ, एक दो या चार दिनोंका उपवास करनेवालोंको उसके लिए उतनी चिन्ता न करनी चाहिए। पर जो लोग कई सप्ताहों या मासोंतक विना भोजनके रह चुके हों उन्हें उस समयतक भोजनका विशेष ध्यान रखना चाहिए, जबतक उनके भोजन पचानेवाले अवयव भोजनको अच्छी तरह पचानेमें समर्थ न हो जायँ। उपवास छोड़नेके उपरान्त पहले या नित्यके अनुसार भोजन करनेका प्रयत्न कदापि न करना चाहिए और न भोजन करनेमें किसी प्रकारका उतावलापन करना चाहिए। भोजन बहुत ही थोड़ी मात्रामें आरम्भ करके बहुत धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए।

बहुत दिनोंतक विना भोजनके रहनेके कारण रोगीके शरीरकी हालत बहुत नाजुक हो जाती है और उपवास छोड़नेपर, बल्कि बहुधा बीचमें भी उसे इतनी भूख लगती है कि यदि वह किसी अच्छे डाक्टरकी देख-रेखमें हो, तो कभी-कभी छुक-

छिपकर भी कुछ खानेका प्रयत्न करता है। अत डाक्टरोंकी देख-रेखमें उपवास करनेवालेको यह वात दृढतापूर्वक अपने मनमें अकित कर लेनी चाहिए कि विना डाक्टरकी सम्मतिके अथवा उसे विना वतलाये हुए कभी कोई काम करना न चाहिए, विशेषत कभी कोई चीज खानी न चाहिए। उस समय भूख ऐसी लगती है कि जो चीज और जितनी मात्रामें मिले वह सव खाई जा सकती है। उस समय लोग कभी-कभी ऐसी चीजें भी खा लेते हैं, जिनका शरीरपर वहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है। उस दशामें डाक्टरको भी भारी विपत्तिका सामना करना पड़ता है और रोगीको भी वहुत कष्ट सहना पड़ता है। यदि इस वातका पता लग जाय कि उपवास छोड़नेके उपरान्त किसीने कोई अधिक अथवा हानिकारक पदार्थ खा लिया है, तो तुरन्त कै कराके अथवा एनीमाकी सहायतासे उसके पेटमेंसे वह पदार्थ निकलवा देना चाहिए। यदि उपवास करनेवालेसे न रहा जाय तो उसे कमसे कम डाक्टरकी सम्मतिके अनुसार अवश्य चलना चाहिए, जिससे वह वहुतसी भूलों और दोषोंसे वचा रहे।

जिन लोगोंका शरीर दुर्वल हो उनके लिए और भी अधिक सावधानीकी आवश्यकता होती है। उनमेंसे कुछ लोग ऐसे होते हैं जिन्हें वास्तवमें दो-तीन सप्ताह तक उपवास करनेकी आवश्यकता होती है। पर एक ही सप्ताह तक उपवास करनेके उपरान्त वे इतने दुर्वल हो जाते हैं कि उन्हें उपवास छोड देनेकी आवश्यकता होती है। यदि पहली वार ही रोगी अधिक दिनोंका उपवास न कर सके तो उसके लिए सुगम उपाय यह है कि जिस रोगके लिए उपवास कराया जाता हो वह रोग जवतक अच्छा न हो जाय तवतक वह रोगी थोड़े-थोड़े दिनोंका उपवास करता रहे और ज्यों-ज्यों उसकी शक्ति वढती जाय त्यों-त्यों वह उपवासकी मुद्दत भी वढाता जाय। जो लोग दुर्वल होते हैं वे आरम्भमें अधिक लम्बे उपवास नहीं कर सकते, पर यदि वे धीरे-धीरे अपने उपवासकी मुद्दत वढ़ाते जायँ तो आगे चलकर अधिक उपवास कर सकते हैं।

प्रत्येक उपवास करनेवालेको यह वात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि छोटे या वडे प्रत्येक उपवाससे होनेवाला लाभ उपवास छोडनेके प्रकारपर ही अवलम्बित रहता है। जिस प्रकार कोई वहुत दु:खभरी वात किसीको वहुत धीरे-धीरे सुनाई जाती है, उसी प्रकार उपवास भी वहुत धीरे-धीरे छोड़ना चाहिए। उपवास छोड़नेके

पहले अच्छे-अच्छे फलोंके रसके सिवा और कोई चीज नहीं लेनी चाहिए। अंगूर या सन्तरे आदिका रस सबसे अच्छा है। इनमेसे किसी फलका रस एक छोटेसे गिलासमें लेकर उसमें थोड़ी चीनी डाल देनी चाहिए और उसमेंसे बहुत ही धीरे-धीरे एक-एक घूँट करके और स्वाद ले-लेकर गलेमें उतारना चाहिए। एकदमसे बहुतसा रस गटर-गटर करके पी जाना बहुत ही हानिकारक है। इस प्रकार दिनमें दो-तीन बार पीना चाहिए। दूसरे दिन ताज़ा, बढ़िया और गरम दूध एक-एक गिलास करके दिनमें तीन-चार बार पीना चाहिए। दूध या रसको बराबर उस समयतक मुँहमे ही रखना चाहिए, जबतक उसमें किसी प्रकारका स्वाद रहे। तीसरे दिन दूधकी मात्रा कुछ बढ़ा देनी चाहिए और उसके साथ कुछ खट्टे (एसिडवाले) फल भी खाने चाहिए। चौथे दिन दूधकी मात्रा, फलोंकी संख्या कुछ बढ़ा देना चाहिए। पांचवें दिन सदाके नियमानुसार अपना साधारण पर सादा भोजन करना चाहिए, लेकिन वह भोजन नित्यकी मात्रासे कम हो। जो लोग एक सप्ताह या इससे अधिक समयतक उपवास कर चुके हों, उनके लिए इन नियमोंका पालन बहुत ही आवश्यक है।

इस अवसरपर यह बतला देना आवश्यक जान पड़ता है कि उपवास-कालमें शरीरके भीतर क्या-क्या फेर-फार होते हैं। शरीरमेंसे सदा कुछ ऐसे रस निकलते रहते हैं, जिनसे भोजन पचता है। उपवास-कालमें उन रसोंका निकलना बन्द नहीं होता बल्कि बराबर जारी रहता है। पर स्वयं पक्वाशयकी शक्ति बहुत मन्द पड़ जाती है और यही कारण है कि उपवासकी समाप्तिपर उसके लिए एकदमसे भारी या अधिक भोजन पचा लेना असम्भव होता है। शरीरके भीतरी भागमे निकलनेवाले पाचक रसोंकी मात्रा चार-पांच दिनों बाद कुछ कम होने लगती है। इसलिए चार दिनोंतकका उपवास करनेवाले लोग उपवासके उपरान्त नियमानुसार भोजन कर सकते हैं, क्योंकि उन लोगोंको उस भोजनसे कोई हानि नहीं पहुँच सकती। यद्यपि कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो एक सप्ताहतक उपवास करनेके उपरान्त भी बिना किसी प्रकारकी जोखिम सहे नियमानुसार भोजन कर सकते हैं, पर तो भी सर्वसाधारणको इसके लिए बहुत ही सचेत रहना चाहिए। जिन लोगोंको उपवास छोड़नेके दो दिन बाद बहुत अधिक भूख लगनेके कारण बेचैनी हो उनकी बेचैनी थोड़ा दूध पीते ही दूर हो जायगी और शरीरको किसी प्रकारकी हानि भी न पहुँचेगी। उपवास छोड़नेके पांच छः दिन बाद भी जब नियमित भोजन आरम्भ किया जाय तब कुछ दिनोंतक

इस बातका बहुत ध्यान रखना चाहिए कि भोजन बहुत ही हल्का और सदासे कम हो। जीभके स्वाद अथवा और किसी कारणसे कभी अधिक न खाना चाहिए। साधारणतः उपवास-चिकित्सालयोंमें जब एक सप्ताह या इससे अधिक समयतक उपवास करनेवालेका उपवास छुड़ाया जाता है, तब पहले दो दिनोंतक उसे केवल फलोंका रस ही देते हैं और तब उसके बाद तीसरे दिनसे दूध आरम्भ करते हैं। तीसरे दिन दो-दो घंटोंपर और चौथे दिन एक-एक घण्टेपर एक गिलास दूध दिया जाता है। पाँचवें और छठे दिन इसी प्रकार अन्तर कम किया जाता है और ज्यों-ज्यों उपवास करनेवालेकी पाचनशक्ति बढ़ती जाती है त्यों-त्यों उसे अधिक दूध मिलता जाता है। दूध की मात्रा इस प्रकार धीरे-धीरे बढ़ानेसे तौलमें शरीर भी बहुत जल्दी-जल्दी बढ़ने लगता है। कभी-कभी तो वह एक ही दिनमें डेढ़-दो सेरतक बढ़ जाता है। बहुतसे उपवास करनेवाले एक ही सप्ताहमें तौलमें २-१२ सेरतक बढ़ गये हैं।

उपवासके उपरान्त दूध पीनेसे अनेक लाभ होते हैं। सबसे पहली बात तो यह है कि दूध हलका और लघुपाक होता है और दूसरे शरीरका बल बहुत बढ़ता है। उसका तीसरा लाभ यह भी होता है कि भोजन करने की बहुत प्रबल इच्छा इससे कुछ दब जाती है। पर जो लोग दूधपर किसी प्रकार रह ही नहीं सकते हों उन्हें बहुत ही अल्प मात्रामें चौथे या पाँचवें दिनसे अपना नियमित भोजन आरम्भ करना चाहिए। जो लोग चार दिनोंतकका उपवास कर चुके हों उन्हें अपना नियमित भोजन आरम्भ करनेके समय इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि जिस दिन व भोजन आरम्भ करें उस दिन रोजसे आधा भोजन करें। जो लोग एकसे दो सप्ताहतकका उपवास कर चुके हों उन्हें भोजन आरम्भ करनेके दिन नित्यके भोजनका पाँचवाँ भाग खाना चाहिए; उसके दूसरे दिन नित्यके भोजनका तीसरा भाग, तीसरे दिन आधा भाग और चौथे दिन नित्यसे कुछ कम खाना चाहिए। पाँचवें दिनसे यदि वे नियमित रूपसे भोजन करें तो कोई हानि नहीं है। उपवासके उपरान्त जो कुछ कम खाया जाय वह बहुत ही सादा और बलवर्द्धक होना चाहिए। जितना ही सादा भोजन किया जायगा उतना ही अधिक स्वाद मिलेगा।

अब हम उपवास छोड़नेके सम्बन्धमें दो सज्जनोंके मत देकर यह प्रकरण समाप्त करते हैं। अप्टन सिक्लेअर अपने निजके अनुभवके अनुसार लिखते हैं—

"बरनर्ड मैकफेडनका उपवास-चिकित्सालय छोड़नेके उपरान्त मैंने कईबार

उपवास किये हैं और प्रत्येक वार मैंने भिन्न-भिन्न प्रकारका भोजन लेकर उपवास छोड़नेका प्रयत्न किया है। जिस समय मैं एल्वामामें था उस समय मैंने बारह दिनोंका उपवास किया था। उपवास-कालमें मेरी इच्छा वहांके एक विशेष प्रकारके फलपर बहुत अधिक थी; इसलिए जब मैंने उपवास छोड़ा तब वही फल खाया था, पर उसके खानेसे मेरे पेटमें मरोड़ होने लगा। तबसे मैं बराबर लोगोंको वह फल खानेसे मना करता हूं। मेरे एक मित्रने एक बार उपवास छोड़नेके उपरान्त मीठे नीबूका रस लिया था; उसे भी मेरी ही तरह मरोड़ हुआ था। पर वह ऐसी प्रकृतिका मनुष्य था, जिसे खट्टे या एसिडवाले फल जरा भी अच्छे न लगते थे। मैं एक ऐसे आदमीको भी जानता हूँ जिसने मांस खाकर उपवास छोड़ा था; पर यह भोजन इस योग्य नहीं है कि इसकी सिफारिश की जाय। मेरी एक परिचिता स्त्रीने एक सप्ताहका उपवास किया था और उसे छोड़ने समय उसने चावल और उबाले हुए अंडे खाये थे, पर इस भोजनसे उसे किसी प्रकारका लाभ न जान पड़ा, क्योंकि उसको भूख जितनी अधिक बढ़नी चाहिए थी उतनी उससे न बढ़ी थी। लगातार कई सप्ताहोंतक चावल और अंडा खाते रहनेसे पैखाना बिलकुल नहीं होता था।

'मेरा अनुभव यह है कि उपवासके उपरान्त पक्वाशय बहुत ही दुर्बल जान पड़ता है और उसपर बहुत ही शीघ्र हानिकारक प्रभाव पड़नेकी सम्भावना होती है। इसके अतिरिक्त उस समय आंतोंकी शक्ति भी बहुत कम होती जाती है। इसलिए उस अवसरपर ऐसा भोजन पसन्द करना चाहिए, जो बहुत जल्दी हजम हो सके। साथ ही इस बातका भी ध्यान रखना चाहिए कि जबतक आंतोंमें शरीरका मल बाहर निकालनेकी पूरी-पूरी शक्ति न आ जाय तबतक एनिमाका उपयोग बराबर जारी रखना चाहिए। उपवास छोड़नेके समय पहले दो या तीन दिनोंतक केवल मीठे नीबू या अंगूरके रसपर रहना चाहिए और तदुपरान्त दूधका सेवन आरम्भ कर देना चाहिए। उस समय पहले-पहल आधा गिलास गरम दूध पीना चाहिए। यदि केवल दूध अच्छा न लगता हो तो उसमें अंगूर, खजूर या आलू भी मिला लेना चाहिए। यदि आवश्यकता हो तो चावल, कांजी और शोरबे आदिका व्यवहार भी आरम्भ कर देना चाहिए, पर उसके साथ ही साथ एनिमा लेना भी भूल न जाना चाहिए। मैंने तीन-तीन दिनके कई उपवास छोड़े हैं, मुझे निश्चय हो गया है कि उस समयके लिए दूधसे बढ़कर और कोई उत्तम पदार्थ नहीं है।"

उपवास-चिकित्साके प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर टेनरने अपना पहला उपवास छोड़ते समय आरम्भसे ही तरबूज खाना शुरु किया था। यद्यपि कुछ विशेष अवस्थाओंमें तरबूज उपयुक्त हो सकता है तथापि प्रत्येक मनुष्यके लिए आरम्भसे ही तरबूज खाना ठीक न होगा। एक व्यक्तिने पहले कुछ अखरोट पानीमें भिगो लिये थे और तब उन्हें आठ-दस पहरतक सुखाया था; उपवास छोड़नेके समय उसने यही सुखाये अखरोट खाये थे। उसका कथन है कि इस भोजनसे मेरा पूरा सन्तोष हुआ था और मुझे कोई हानि नहीं पहुँची थी। अपने इच्छानुसार कोई हल्का और शीघ्र पचानेवाला भोजन किया जा सकता है। उसमें विशेष ध्यान रखने योग्य केवल एक यही बात है कि उपवास छोड़नेके उपरान्त बहुत अधिक भूख लगनेपर कभी भोजन बहुत अधिक न करना चाहिए जहांतक हो सके बहुत ही कम खाना चाहिए। इस प्रकार दो-चार दिनोंतक नहीं बल्कि दो-तीन सप्ताहोंतक रहना चाहिए।

डाक्टर हरबर्ड केरिंगटन उपवास-चिकित्साके बहुत बडे ज्ञाता और पण्डित माने जाते हैं। उपवास छोड़ने और उस समय भोजन करनेके सम्बन्धमें आपकी जो सम्मति है उसे परमोपयोगी समझकर हम इस स्थानपर उसका आशय दे देते हैं:—

"उपवास छोड़नेकी क्रिया मेरी समझमें बहुत ही महत्त्वपूर्ण और विचारणीय है। क्योंकि यदि उपवास छोड़नेमें किसी प्रकारकी असावधानी की जायगी तो उपवाससे उत्पन्न अधिकांश लाभ प्रायः बहुत कम हो जायँगे। जिन लोगोंको उपवास-सम्बन्धी विशेष अनुभव है वे यह बात भलीभांति समझते होंगे कि उपवास छोड़नेके समय कितनी अधिक सावधानीकी आवश्यकता होती है। मैं अपने अनुभवके अनुसार इस सम्बन्धमें कुछ बातें बतलाता हूँ।

"उपवाससम्बन्धी सबसे बडे इस नियमका ध्यान सदा और अवश्य रखना चाहिए कि प्रकृति हमें स्वयं यह बतलाती है कि उपवास कब छोड़ना चाहिए। इस सम्बन्धमें हमारे शरीरमें कुछ विशेष और स्पष्ट चिह्न प्रकट होते हैं जिनमेंसे कुछका उल्लेख किया जाता है।

(१) उपवास-कालमें शरीरकी जो गरमी साधारणसे अधिक अथवा कम हो जाती है, वह उपवास छोड़नेके समय अपनी ठीक (Normal) अवस्थामें आ जाती है।

(२) उपवास-कालमें जीभपर जो पपड़ी जमी होती है वह धीरे-धीरे आपसे आप उतर जाती है और जीभ साफ हो जाती है।

(३) उपवास-कालमें नाड़ी अधिक शीघ्रतासे अथवा धीमी चलती है, पर उपवास छोड़नेकी आवश्यकता होनेपर वह अपने नियमित रूपसे चलने लगती है।

(४) उपवास-कालमें जो साँस दुर्गन्धयुक्त रहती है वह उपवास पूरा होनेपर बिल्कुल साफ और बिना दुर्गन्धकी हो जाती है।

(५) त्वचा तथा शरीरके दूसरे अंग जो पहले विशेष या न्यून रीतिसे काम करते थे, वे अपनी साधारण स्थितिमें आकर पूर्णरूपसे काम करने लगते हैं।

(६) अन्तिम और सबसे बड़ा चिह्न यह है कि भूख नियमित रूपसे और अपनी साधारण अवस्थामें लगती है। कृत्रिम भूखकी तरह विशेष रूपसे नहीं लगती।

"कई दिनोंतक किसी प्रकारका भोजन न करनेके उपरान्त जब शरीर अपनी साधारण अवस्थामें पहुँच जाता है तब उक्त चिह्न प्रकट होते हैं।

"इस आधारपर प्रश्न हो सकता है कि वास्तविक और कृत्रिम भूखकी पहचान क्या है? दोनों अवस्थाओंमें ही मनुष्य कह सकता है कि मुझे भूख लगी है। उनमेंसे एकको भोजनकी वास्तविक आवश्यकता है पर दूसरेको ऐसी आवश्यकता नहीं होती। ऐसी दशामें यह किस प्रकार जाना जा सकता है कि उनमेंसे किसे भोजन दिया जाना चाहिए और किसे नहीं?

"इसलिए वास्तविक और कृत्रिम भूखको पहचाननेके लिए यहाँ उनका कुछ अन्तर बतला देना आवश्यक जान पड़ता है। जिस समय झूठी भूख लगती है उस समय पेटमें एक प्रकारकी थोड़ी-बहुत गुड़गुड़ी होती है। पर जिस समय वास्तविक या सच्ची भूख लगती है उस समय शरीरमें वे चिह्न उत्पन्न होते हैं, जो ऊपर बतलाये गये हैं। इसके अतिरिक्त गलेमें एक विशेष प्रकारकी गुदगुदीसी होती है, जो वास्तवमें प्यास तो नहीं होती पर प्याससी जान पड़ती है। गलेकी गिल्टियों (Glands) मेंसे एक प्रकारका पानी या रस निकलने लगता है। यह पानीका रस निकलना ही वास्तविक भूखका सबसे अच्छा और प्रामाणिक चिह्न है। उपवास-कालकी समाप्तिके और चाहे जितने लक्षण शरीरमें उत्पन्न हो जायें, पर जबतक गलेकी गिल्टियोंमें पानी न निकलने लगे तबतक कभी उपवास न छोड़ना चाहिए।

"दूसरा लक्षण यह है कि जिस मनुष्यको झूठी भूख लगी होगी, वह जो कुछ पावेगा सो सब अपने पेटकी ज्वाला शान्त करनेके लिए खा लेगा। पर जिसे वास्तविक भूख लगी होगी वह खानेके लिए कोई विशेष पदार्थ माँगेगा। उस अवस्थामें समझ लेना चाहिए कि अब वास्तविक भूख लगी है।

"इस अवसरपर यह भी प्रश्न किया जा सकता है कि जबतक वास्तविक भूखके चिह्न प्रकट न हो तबतक उपवास करनेमें कोई जोखिम तो नहीं है? उपवास-समाप्तिके चिह्न उत्पन्न होनेसे पहले ही उपवास करनेवाला मर तो न जायगा? इस प्रश्नका बहुत सीधा, सहज, निश्चयात्मक और विश्वसनीय उत्तर यही है कि, ऐसा कदापि न होगा। इसमें न तो किसी प्रकारकी जोखिम है और न जान जानेका भय है। जोखिम अथवा मृत्युकी अवस्थातक पहुँचनेसे बहुत पहले ही वास्तविक भूखके चिह्न अवश्य प्रकट हो जायँगे। बात यह है कि अन्नके बिना मरनेसे पहले कुछ समयतक मनुष्यका शरीर धीरे-धीरे गलता रहता है और उस अवस्थातक पहुँचनेसे बहुत पहले ही वास्तविक भूख लग आती है।

"जो लोग बिना अन्नके भूखों मरते हैं उनके शवकी परीक्षा करके यह जाना गया है कि मरनेके समय उनके शरीरमेंसे नीचे लिखे पदार्थ इतने मानमें घटते हैं—

चरबी ·· ········ ··९७ %
स्नायु (Tissue) ···३० %
कलेजा (Liver) ···५६ %
तिल्ली (Spleen) ···६३ %
और खून केवल ········ १६ %

"ज्ञानतन्तुओं (Nervous system) का कोई अंश नष्ट नहीं होता। इस कथनके प्रमाण शरीर-शास्त्रके प्रत्येक प्रामाणिक ग्रन्थमें मिल सकते हैं।

"ऊपरके अंकोंसे इस बातका पता लग जाता है कि उपवास-कालमें शरीरका वही अंश सबसे अधिक नष्ट होता है, जिसका उपयोग हमारे शरीरके अस्तित्वके लिए बहुत ही कम होता है। वह अंश चरबी है। इसके अतिरिक्त शरीरमें और भी अनेक अनावश्यक पदार्थ होते हैं, जिनपर उपवास-कालमें शरीरका पोषण होता है और यही शरीरके नीरोग होनेका प्रधान कारण है।

"उपवास छोड़नेके सम्बन्धमें मैं यह कहना चाहता हूँ कि भोजन आरम्भ करनेके

समय बहुत सावधानीसे और समझ-बूझकर सब काम करना चाहिए। उपवास जितने ही अधिक दिनोंका हो उसे छोड़नेके समय उतनी ही अधिक सावधानीकी आवश्यकता होती है। साधारण कागज़ छापनेका प्रेस जब कुछ समयतक बन्द रहनेके उपरान्त फिरसे चलाया जाता है, उस समय आरम्भमें उसे लोग बहुत धीरे-धीरे चलाते हैं और उसकी गति क्रमशः बढ़ाते जाते हैं। पर यदि उसे आरम्भमें ही पूरी तेजीके साथ चलाया जायगा तो वह अवश्य ही टूट जायगा, अथवा उसका कोई कल-पुरजा बिगड़ जायगा। उस समय वह यंत्र ऐसा बिगड़ जायगा कि उसे बहुत समयतक बन्द रखनेकी आवश्यकता होगी। ठीक यही दशा अपने शारीरिक यंत्रकी भी समझिए। यदि कुछ दिनोंके उपवासके उपरान्त तुरन्त ही उससे पूरी तेजीसे काम लिया जायगा तो वह अवश्य ही बेकाम हो जायगा; इसलिए उपवास हमेशा धीरे-धीरे छोड़ना चाहिए और ज्यों-ज्यों दिन बीतते जायं त्यों-त्यों भोजनकी मात्रा बढ़ती जानी चाहिए। इस प्रकार पाचनक्रिया उत्तमतापूर्वक होती रहेगी और शरीरका बल भी क्रमशः बढ़ता जायगा।

"उपवास जबतक स्वाभाविक रूपसे स्वयं ही पूरा न हो जाय, जबतक उसकी पूर्तिके सब लक्षण दिखाई न देने लगें तबतक उसे भंग न छोड़ देना चाहिए। बीचमें ही उपवास छोड़ना मानो चलती गाड़ीको रोक देना है। शरीरकी आरोग्य-क्रियामें उससे बहुत विघ्न पड़ेगा। पेटमें आये हुए नये पदार्थोंको ठिकाने लगानेमें ही शक्ति लगने लगेगी और आरोग्य-क्रिया बहुधा मन्द पड़ जायगी। इसलिए उपवासको बिना पूरा किये बीचमें ही छोड़ देना ठीक नहीं है। मान लीजिए कि किसी मनुष्यने १५ दिनोंतक उपवास किया। उसकी जीभपर पपड़ी अभीतक जमी हुई है और उसकी साँसमेंसे बदबू निकलती है; उस समय यदि वह एक ग्रास भी खा लेगा तो बहुत शीघ्र उसकी भूख बढ़ने लगेगी और शरीरकी आरोग्य-क्रिया बन्द हो जायगी। उसकी जीभपरकी पपड़ी उतर जायगी, साँसकी बदबू जाती रहेगी, उसके शरीरके विषोंका बाहर निकलना बन्द हो जायगा और शरीरकी अधिकांश शक्ति भोजन पचानेमें लगने लगेगी।

"इस अवसरपर यह बात भी ध्यान रखने योग्य है कि उपवास आरम्भ करनेके दो दिन बाद मनुष्यको भूख ही नहीं लगती। यही आरम्भिक दो दिन बड़ी कठिनतासे बीतते हैं और यह कठिनता शरीरके अस्वाभाविक दशासे स्वाभाविक अथवा शान्त

दशामें आनेके कारण होती है। इन दो-तीन दिनोंके उपरान्त उपवास करनेवालेका समय बहुधा बहुत शान्तिपूर्वक और आनन्दसे कटता है। जबतक उसके शरीरके विषोंका शमन नहीं हो जाता तबतक उसे वास्तविक भूख नहीं लगती।

"सच्ची भूख लगना ही उपवासकी समाप्तिका सबसे अच्छा लक्षण है। सच्ची भूख हमें यह बतलाती है कि हमारे शरीरसे सब प्रकारके विष बाहर निकल गये हैं और अब वह भोजनके लिए तैयार हो गया है। उस अवस्थामें भोजनके विषयमें दो बातें विचारणीय होती हैं। एक तो यह कि भोजन कितना होना चाहिए और दूसरे यह कि वह किस प्रकारका होना चाहिए।

"ऊपर बतलाया जा चुका है कि आरम्भमें भोजन बहुत ही कम होना चाहिए। पहले सप्ताह बहुत ही कम भोजन करना चाहिए और उसकी मात्रा धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिए और तदुपरान्त साधारण और नियमित भोजन करना चाहिए। पर उस दशामें भी इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि दिन-रातमें केवल दो बार भोजन किया जाय और कुछ भूख बाकी रहने पर ही भोजनसे हाथ खींच लिया जाय। उपवास छोड़नेके उपरान्त सबसे पहले दो दिनों तक केवल तरल पदार्थों से ही भूख शान्त करनी चाहिए। उस समय दृढतापूर्वक भूखको अपने वशमें रखनेकी बहुत बड़ी आवश्यकता होती है।

"उपवास छोड़नेके समय किस प्रकारका भोजन करना चाहिए इसके विषयमें कुछ मतभेद है। डाक्टर डेवीकी सम्मति है कि उस समय जिस चीजकी इच्छा हो वही चीज खाई जाय। पर मेरी समझमें यह विधान ठीक नहीं है। इसका कारण यह है कि उस समय मनुष्यका मन तरह तरहकी चीजोंपर चलता है, यदि वह सभी चीजें खाने लगा तो उनमेंसे बहुतसी उसके लिए हानिकारक प्रमाणित होंगी। बहुतसे रोगियोंके अनुभवसे मैंने यह बात अच्छी तरह समझ ली है कि मनुष्य जन्मसे जो पदार्थ अधिक मानमें खाता आता है, उपवास छोड़नेके समय उसकी रुचि साधारणतः उसी पदार्थकी ओर होती है। उत्तरीय ध्रुवके एस्किमो लोग उपवास छोड़नेके उपरान्त चरबी और आलू ही माँगेंगे। जो लोग जन्मसे अन्न, शाक और फल खाते आये होंगे वे सदा अन्न और फल ही माँगेंगे।

"परन्तु प्रेरणा और बुद्धि दोनों सदा साथ ही साथ काम नहीं करतीं। इसलिए क्षुधातुरकी माँगी हुई चीज उसे देना सब दशाओंमें ठीक नहीं। मनुष्यमात्रके

दिन हर घण्टे पर एक गिलास दूध पीना चाहिए। दूधसे शरीरका बल भी बढ़ता है और वजन भी। शरीरके लिए सबसे अच्छा पोषक पदार्थ यही माना जाता है। प्रत्येक दशामें इससे लाभ ही होता है, हानि कभी नहीं होती।"

दिन-रातमें एक बार भोजन

प्रत्येक बुद्धिमान् यह बात स्वय ही समझ सकता है कि बहुत अधिक या आवश्यकतासे अधिक भोजन करनेका शरीरपर बहुत बुरा परिणाम होता है। यदि पहला भोजन न पचा हो, पेटमें मौजूद ही हो और ऊपरसे एक बार और भोजन कर लिया जाय तो निश्चय ही शरीरको उसका बहुत बुरा परिणाम भोगना पड़ेगा। आरम्भके पृष्ठोंमें एक स्थानपर बतलाया जा चुका है कि सभ्य देशोंमें प्रत्येक तीन घंटेके बाद भोजन करनेकी प्रथा है। भारतवासी भी दिनमें कमसे कम तीन-चार बार अवश्य ही भोजन और जलपान करते हैं; पर बहुत अधिक भोजन करनेका यह रोग हालका ही है। आजसे डेढ़-दो हज़ार वर्ष पहले संसारके किसी भागके निवासियोंको इतना अधिक खानेकी लत नहीं थी। उन दिनों सभी देशों और जातियोंके लोग इस उन्नत और सभ्य कालकी अपेक्षा स्वास्थ्यके प्राकृतिक नियमोंका कहीं अधिक पालन करते थे। वे सदा खुली हवामें रहते थे, बहुतसा परिश्रम और लंबी यात्रायें करते थे, और जबतक अच्छी तरह भूख न लगती थी तबतक भोजन न करते थे। बल्कि यह कहा जाय कि एक बारका किया हुआ भोजन पहले खूब परिश्रम करके पचा लेते थे, तब दूसरी बार भोजन करते थे तो अधिक उत्तम होगा। प्राचीन भारत, चीन, मिस्र, रोम और यूनान आदि सभी देशोंके प्राचीन निवासी यह बात भली भांति समझते थे कि कब, कैसा और कितना भोजन करना चाहिए। पर आजकलकी सभ्यता, शिक्षा और उन्नतिने जहाँ हमें बहुतसे लाभ पहुँचाये हैं वहाँ स्वास्थ्य-सम्बन्धी बहुत-कुछ हानि भी पहुँचाई है। प्राचीन-कालमें लोग अधिक परिश्रम भी करते थे और तरह-तरहके कष्ट भी सहजमें सह लेते थे। पर आजकलकी सभ्यताने लोगोंको बहुत ही सुकुमार और आराम-तलब बना दिया है। इस सुकुमारता और आराम-तलबीका यथेष्ट फल भी लोगोंको भोगना पड़ता है। यह फल सैकड़ों बल्कि हजारों तरहके नये-नये रोगोंके रूपमें प्रकट होता है।

संसारके अधिकांश प्राचीन निवासी दिन-रातमें केवल एक बार सन्ध्याके समय भोजन किया करते थे। दिनभर अपने काम-धन्धोंमें लगे रहते थे, भरपूर परिश्रम करते थे और तब सन्ध्याके समय परिवारके सब लोग एकत्र होकर आनन्दपूर्वक भोजन करते थे। दिनभर कुछ न खाने और खूब परिश्रम करनेके कारण उन्हें बहुत अच्छी तरह भूख लगती थी और उस समय वे लोग जो कुछ खाते थे वह अच्छी तरह पचा लेते थे। उनका रूखा-सूखा, हल्का और थोड़ा भोजन उनके शरीरके पोषण और बलवृद्धिके लिए यथेष्ट होता था, रोग आलस्य या विकार आदि उत्पन्न करनेके लिए उसका कोई अंश बच ही न रहता था। भोजनके उपरान्त संगीत, नृत्य, और हास्यविनोद आदिका आरम्भ होता था और यही सब बातें उन दिनों आजकलके सुलेमानी नमक और हिंग्वाष्टककी गोलियोंका काम देती थीं। कुछ जातियोंमें केवल दिनके समय ही खानेकी प्रथा थी। उन लोगोंका मुख्य भोजन आठ पहरमें केवल एक बार होता था और वह भी उतनी ही मात्रामें, जितनी मात्रामें आजकलके लोग 'जल-पान' करते हैं।

यद्यपि प्रकृति और प्रवृत्तिका बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध है, तो भी अभ्यास एक ऐसी चीज़ है जो सबको और फलतः प्रवृत्तिको भी दबा लेती है। आप दिन-भरमें पसेरी-भरका सत्यानाश कर सकते हैं और डेढ़ पाव या आध सेरमें भी आपका निर्वाह बहुत मजेमें हो सकता है। इसमें आवश्यकता है केवल अभ्यासकी। यदि आप आवश्यकतासे अधिक भोजन करनेका अभ्यास करेंगे तो अवश्य ही आपकी भूखसम्बन्धी प्रवृत्ति और सहज-बुद्धिका थोड़े समयमें नाश हो जायगा और आप उस अभ्यासके वशीभूत हो जायँगे। यदि बहुत ही छोटी अवस्थाके दो बालक भिन्न-भिन्न दाइयोंको दे दिये जायँ और उनमेंसे एक दाई बहुत थोड़ी-थोड़ी देरके बाद दूध पिलाती रहे और दूसरी नियमित रूपसे दो-दो या तीन-तीन घंटोंके बाद दूध पिलाया करे तो निश्चय है कि पहली दाईवाला बालक—चाहे बीमार ही क्यों न हो जाय—हरदम दूधके लिए रोया करेगा; पर जिस बालकको नियमित रूपसे छः या आठ बार दूध पिलाया जायगा उसे सातवीं या नवीं बार दूध पिलाना भी बहुत कठिन हो जायगा। इसका कारण यही है कि अभ्यासके कारण उसकी प्रवृत्ति, इच्छा और सहज-बुद्धिका नाश हो जायगा; और इस नाशका परिणाम सदा घातक और अत्यन्त हानिकारक ही होगा। उसका स्वास्थ्य सदा बिगड़ा रहेगा और वह कभी शारीरिक सुख न भोग सकेगा।

बहुधा हम लोग देखा करते हैं कि नागरिकोंको देहातियोंका स्वास्थ्य देखकर बड़ा ही आश्चर्य होता है। नागरिक बहुतसा घी-चीनी, पूरी-पकान्न, मेवा-मिठाई, मांस-मछली, पूआ-पकौडी खाया करते हैं, पर सदा रोगी और दुर्बल ही बने रहते हैं। लेकिन देहातवाले बाजरे, जौ और मकईकी सूखी रोटी खाकर इतने नीरोगी और हृष्ट-पुष्ट बने रहते हैं कि यदि वे चाहें तो दो-एक नागरिकोंको बड़े आनन्दसे बगलमें दबाकर कोस-दो कोसका चक्कर लगा सकते हैं। इसका कारण यही है कि वे स्वच्छ वायुमें रहकर इतना अधिक परिश्रम करते हैं कि उनका सारा भोजन पच जाता है और दूसरे भोजनके समयतक उन्हें खूब गहरी भूख लग जाती है। एक देहाती प्रातःकाल चार बजे उठकर अपनी गौओं-भैंसोंको सानी-पानीका सब प्रबन्ध करेगा और ग्यारह-बारह बजेतक या तो एकाध बीघा खेत जोतकर रख देगा और या घी, दूध, मक्खन, खोआ आदि बेचने के लिए चार-पाँच कोसके किसी शहरका चक्कर लगा आवेगा। शहरमें ही वह थोड़ेसे भुने दाने खाकर पानी पी लेगा और अपने घर पहुँचकर थोड़ी देरतक सुस्तानेके बाद फिर किसी शारीरिक परिश्रममें लग जायगा। ऐसी दशामें सन्ध्या या रातके समय उसे खूब तेज़ भूख लगना बहुत ही स्वाभाविक है और तेज़ भूख लगनेपर जो कुछ खाया जायगा वह अवश्य ही बहुत अच्छी तरह पचकर हमारे शरीरमें लगेगा और हमारे अङ्ग-प्रत्यङ्गको पुष्ट करेगा। शहरके रहनेवाले सवेरे उठते ही स्नान आदिसे निश्चिन्त होकर जल-पानपर टूटेंगे, मानो रात-भर उन्होंने चक्की ही पीसी हो। जल-पानके उपरान्त वे हाथमें या तो ताश, अखबार या किताब आदि उठा लेंगे और या अपने मकानके नीचेवाली अपनी दूकानपर जा बैठेंगे। ग्यारह बजे आप यह कहते हुए उठेंगे कि आज कुछ भूख तो नहीं मालूम पड़ती, पर चलो खा ही आवें, नहीं तो रसोई ठंडी हो जायगी। नौकरी-पेशा लोग ज्यों-त्यों करके इस विचारसे पेट खूब कस लेंगे कि अब दिनभर तो कुछ मिलेगा ही नहीं और चटपट कपड़े पहनकर इक्के या ट्रामवेपर घसीटते हुए कचहरी या दफ्तरमें पहुँच जायँगे। दिनभर उनके हाथमें खाली कलम रहेगी और वह भी बड़ा भारी बोझ मालूम पड़ेगी। अमीर लोग दिनभर तो तकियों और गद्दियोंमें गड़े हुए पड़े रहेंगे और सन्ध्या समय गाड़ीपर सवार होकर अपने बदले अपने घोड़ोंसे थोड़ा शारीरिक परिश्रम करवाके निश्चिन्त हो जायँगे। इन सभी लोगोंको सवेरेके जलपान और दोपहरके भोजनके अतिरिक्त सन्ध्याका जल-पान और रातका भोजन

भी अवश्य ही चाहिए। यदि दोपहरके भोजनके बाद कुछ फल और रातके भोजनके उपरान्त थोड़ा दूध मिल जाय, तो उसके लिए भी पेटमें जगहकी कमी नहीं है। ऐसी अवस्थामें यदि देहातियोंका स्वास्थ्य देखकर शहरवाले अपना मन न मसोसेंगे तो और क्या करेंगे? आपको नगरोंमें जो दुबले-पतले, जन्मरोगी और धँसी हुई आँखोंवाले हजारों लाखों दूकानदार, फेरीदार, मुंशी, शिक्षक, वकील और छात्र आदि मिलेंगे उनके शारीरिक कष्टोंका कारण भीमसेनी भोजनके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

इन शारीरिक कष्टोंसे बहुत ही सहजमें छुटकारा पानेका सर्वोत्तम उपाय यही है कि मनुष्य अपना भोजन धीरे-धीरे कम और परिमित करता हुआ दिन-रातमें केवल एक बार भोजन करनेका अभ्यास डाले। यह अभ्यास अधिकसे अधिक एक मासमें हो जायगा और जब एक दो मासमें वह केवल एक बार भोजन करनेके गुण बहुत अच्छी तरह समझ लेगा तब नियमित भोजनके अतिरिक्त उसे अमृततक पिलाना कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव-सा हो जायगा। दिन-रातमें केवल एक बार भोजन करनेवाला मनुष्य कभी आवश्यकतासे अधिक खा ही नहीं सकता। उसके गलेके नीचे उतना ही भोजन उतरेगा, जितना उसका पक्वाशय चौबीस घंटोंमें पचा सकेगा। भारतवर्षमें ऐसे सैकड़ों-हजारों आदमी मिलेंगे, जो व्रतरूपमें केवल एकाहार करते हैं। ऐसे लोग देखनेमें स्वभावतः प्रसन्नचित्त, शरीरसे हृष्ट-पुष्ट और सात्त्विक प्रवृत्तिके होंगे। निश्चित समयको छोड़कर और कभी कुछ खानेकी उनकी प्रकृति ही न होगी। क्यों? इसीलिए कि वे प्रकृतिके अनुकूल आचरण करते हैं। वे कभी रोगी नहीं होते। क्यों? इसीलिए कि वे अपने पेटकी मशीन कभी व्यर्थ नहीं चलाते।

जो लोग दिन-रातमें केवल एक बार भोजन करना चाहते हों उनके लिए भोजनका सबसे अच्छा समय सन्ध्या है। यह एक बहुत ही साधारण बात है कि पेट भरे होने पर न तो परिश्रम होता ही है और न परिश्रम करना उचित ही है। दिनके समय मनुष्यको बहुत-कुछ शारीरिक अथवा मानसिक परिश्रम करना पड़ता है। ऐसी दशामें दिनके समय किसी प्रकारका भोजन न करके केवल रातके समय भोजन करना बहुत ही श्रेष्ठ और लाभदायक है। एक बार जब अनुभवसे दिनको भोजन न करनेके गुण मालूम हो जायँगे, तब फिर कभी किसी तरहकी चीज़पर आदमीका मन ही न चलेगा। वयस्क लोग एक मासमें बहुत अच्छी तरह इसका

अभ्यास कर सकते है और बालकोंको दस वर्षकी अवस्थातक सहजमे इसका अभ्यास डाला जा सकता है। डा० लिंकन नामक एक विद्वान् अपने बालकोंको दिनमे कभी किसी प्रकारकी चीज खानेके लिए नहीं देते थे और प्रायः कहा करते थे कि बिना दिनभर काम किये भोजनकी इच्छा करना ठीक वैसा ही है, जैसा कि किसी कारीगरका बिना दिनभर काम किये पहले ही अपनी मजदूरी माँगना।

मनुष्योंको बहुतसे रोग ऐसे होते हैं जिनका अधिक भोजनके अतिरिक्त और कोई कारण हो ही नहीं सकता। ऐसे लोगोंको जो अधिक भोजन करके ही अपने शरीरको रोगी बनाते हैं, दिन-रातमें केवल एक बार भोजन करनेसे बहुत अधिक लाभ पहुँचता है। एक बार भारतमें एक पादरी महाशय ज्वरसे बुरी तरह पीड़ित हुए। सात महीने तक डाक्टरोंने उनका शरीर दिनमें तीन बार भोजन, छः बार औषध और कदाचित् इससे भी अधिक बार दूध, और ह्विस्कीसे खूब भरा। यहाँतक कि अन्तमे वे सूखकर काँटा हो गये और विवश होकर अपने देश अमेरिकाको चले गये। वहाँ सौभाग्यवश उनकी भेंट एक योग्य उपवास-चिकित्सकसे हो गई। उपवास-चिकित्सकने उन्हें दिन-रातमें केवल एक ही बार भोजन देना आरम्भ किया और थोड़े ही दिनोंमें उनकी सारी शिकायतें दूर हो गईं। चार महीनेके अन्दर ही वे बहुत हृष्ट-पुष्ट हो गये और तौलमे आध मन बढ़ गये। वहाँसे नीरोग होकर वे फिर भारत चले आये और खूब परिश्रम करके दिन-रातमें केवल एक ही बार भोजन करके रहने लगे। इस प्रकार वे चार वर्षों तक यहाँ रहे और इस बीचमें वे या उनके परिवारके लोग भी कभी बीमार नहीं हुए।

ब्रिटिश मेडिकल एसोसिएशनमे एक बार डा० रैवेग्लैठीने एक ऐसी बालिकाका हाल सुनाया था, जिसकी अवस्था चार वर्षकी थी और जिसके दाहिने घुटनेमें भयकर अस्थि-क्षय Tuberculosis हो गया था। उस बालिकाको दिन-रातमें चार बारके बदले केवल एक बार भोजन दिया जाने लगा। सुबह और शामको उसे थोड़ा-थोड़ा दूध भी दिया जाता था। उस बालिकाको और भी कई भयंकर रोग थे। पर सवा बरसमें उसके सब रोग समूल नष्ट हो गये और वह वजनमें चौदह सेरसे बढ़कर उन्नीस सेर हो गई। इस अवसरपर यह बात ध्यान रखने योग्य है कि अस्थि-क्षय Tuberculosis एक ऐसा रोग है, जिसका अच्छा होना प्रायः असम्भव समझा जाता है और जो रोगीके प्राण बिना लिये छूटता ही नहीं।

/५/९

इंग्लैण्डमें एक बार एक स्त्रीके गर्भमें पथरीकासा एक रोग हो गया और उसमें कई सेर तौलकी एक गाँठ पड़ गई। उसका चेहरा बिल्कुल पीला पड़ गया था, शरीर सूखकर काँटा हो गया था, दिन-रात सिरमें दर्द रहता था, कब्जियत थी, कै आती थी और इसी तरहकी बीसियों शिकायतें थीं। शस्त्र-चिकित्सा करके उसके गर्भकी गाँठ तो निकाल दी गई थी, पर उसकी दुर्बलता और दूसरी सब शिकायतें बराबर बढ़ती ही जाती थीं। जब उसके बचनेकी कोई आशा न रही तब उसे दिन-रातमें दो बार भोजन दिया जाने लगा। पर जब उससे कुछ लाभ न हुआ तब केवल एक बारके भोजनकी ठहरी। इससे उसकी सारी शिकायतें दूर होनेके सिवा छः सप्ताहमें उसका वजन तीन सेर बढ गया। जुलाई १९०१ में उसकी शस्त्र-चिकित्सा हुई थी और दिसम्बरमें वह पूर्ण रूपसे नीरोग और अपने सब काम करनेमें समर्थ हो गई थी। यदि वह औषधों और भोजनके सहारे ही रक्खी जाती, तो इसमें कोई सन्देह नहीं था कि वह उन्हींका शिकार बन जाती।

जल-पान न करना

यदि आरम्भमें ही आप एकदमसे दो पहरका भोजन न छोड़ सकें तो कमसे कम सवेरेका जल पान या कलेवा करना अवश्य छोड दें। इससे होनेवाले लाभ भी अपेक्षाकृत कुछ कम नहीं हैं। इस अवसरपर हम अपनी ओरसे कुछ अधिक न कह-कर प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर डेवीके अनुभवका सारांश यहाँपर दे देना ही अधिक उत्तम समझते हैं। आपने लिखा है—

"जिस दिन मैंने पहलेपहल जल-पान छोड़ा था उस दिन मेरा शरीर और मन इतना हल्का और प्रसन्न हुआ जितना कभी बाल्य या युवा अवस्थाओंमें भी नहीं हुआ था। दोपहरके समय खूब भूख लगनेपर मैंने बहुत अच्छी तरह भोजन किया। उस समय भोजन बहुत ही स्वादिष्ट जान पडता था। रातभर सोनेके बाद प्रातःकाल कभी स्वाभाविक भूख नहीं लगती। सोना कोई ऐसी क्रिया नहीं है, जिससे कि उसकी समाप्ति पर ही भूख लग आवे। हजारों ऐसे आदमी हैं, जिन्होंने अपना प्रातःकालका जल-पान छोड़ दिया है और थोड़े ही दिनों बाद जिन्हें कभी उसकी आवश्यकता नहीं जान पड़ी। यदि जल-पान आवश्यक होता तो यह बात कभी न होती; क्योंकि प्रकृति

अपनी आवश्यकताको पूरा किये विना कभी नहीं मानती। यह कदापि सम्भव नहीं है कि वह अपनी किसी आवश्यकताको विना पूरा किये ही अथवा थोड़े भोजनपर ही हमारे शरीरको बिल्कुल ज्योंका त्यों बनाये रक्खे। जो जल-पान तुम विना आवश्यकताके और केवल अपने अभ्यासके कारण करते हो, वह बड़ी सरलतासे तुम्हें उसके छोड देनेकी आज्ञा दे सकती है। पर यदि तुम उसकी आवश्यकताओंको पूरी तरहसे पूरा न करोगे तो आगे चलकर तुम्हें उसका फल भी अवश्य ही भोगना पड़ेगा।

"जल-पान करना छोड दो और जबतक खूब तेज भूख न लगे तबतक कभी कुछ मत खाओ। जब तुम उस भूखके आसरे रहोगे तब अवश्य ही वह अपने समय-पर उचितरूपमें मालूम पड़ेगी। उस अवसरपर तुम स्वय ही यह निश्चय कर सकोगे कि क्या चीज और कितनी खानी चाहिए। जबतक भोजनकी पूरी-पूरी आवश्यकता न हो तबतक कोई भोजन बल-वर्द्धक और स्वास्थ्यप्रद नहीं हो सकता। वास्तविक आरोग्यता प्राप्त करनेके लिए खूब तेज भूख, खूब स्वादिष्ट मालूम होनेवाले सादे भोजन, खाद्यपदार्थको बहुत अच्छी तरह चबाने और पाचनके समय मनके खूब शान्त रहनेकी आवश्यकता होती है।

"विना जल-पान किये अपने कामपर जाओ, दोपहरके भोजनके समय तुम्हें खूब तेज भूख लगेगी। इतनी तेज़ भूख लगेगी कि यदि तुम भोजनसे पहले किसी प्रकार-की शक्ति-वर्द्धक औषध खानेके अभ्यस्त होगे तो वह औषध खाना भूल जाओगे। तुमको भोजन बहुत ही स्वादिष्ट जान पड़ेगा और भोजनके उपरान्त तुम्हारी तबीयत इतनी अच्छी जान पड़ेगी कि तुम्हें किसी तरहका पाचक या चूरन खानेकी भी आवश्यकता न रह जायगी। कितनी सीधी बात है। जबतक वास्तविक और खूब भूख न लगे तबतक कुछ मत खाओ, चाहे सारा दिन, सप्ताह या महीना भी क्यों न बीत जाय। उपवास करना बहुत ही सुरक्षित है, उसमें किसी प्रकारकी हानिकी कोई सम्भावना नहीं है।"

"यदि परिवारमें एक मनुष्य प्रातःकालका जलपान करना छोड़ देगा तो उससे होनेवाले लाभोंको देखकर सम्भवतः परिवारके और लोग भी बहुत ही शीघ्र अपना-अपना जल-पान छोड़ देंगे। जल-पान न करनेवालोंका चित्त सदा प्रसन्न रहता है, उन्हें जल्दी कभी किसी तरहकी शिकायत नहीं होती। अमेरिकावालोंकी देखा-देखी युरोपवाले भी जल-पान न करनेके गुण समझने लगे हैं। अभी हालमें इंग्लैण्डमें एक

स्वास्थ्य-संवर्द्धिनी सभा स्थापित हुई है जिसका प्रधान उद्देश्य जल-पानकी प्रथा रोकना है। जिस दिन उस सभाकी स्थापना हुई उन दिन उसमें नगरके बहुत बड़े-बड़े अधिकारी, रईस और विद्वान् इकट्ठे हुए थे। यह सभा इंग्लैण्डके मैंचेस्टर नगरमें हुई थी। उस अवसरपर वहांके 'मैंचेस्टर गार्डियन' नामक प्रसिद्ध पत्रने लिखा था—"आज मैंचेस्टर नगरमें पहले दिनोंकी अपेक्षा सैकड़ों जल-पान कम हो जायँगे और यहांकी स्वास्थ्यसभा थोड़े ही घंटोंमें अपनी स्थापनाका शुभ फल देख लेगी। सम्भवतः इसकी देखादेखी 'जल-पान' का निषेध करनेवाली सैकड़ों सभायें स्थापित होंगी। लोगोंका बहुतसा समय केवल जल-पान तैयार करनेमें ही लग जाता है। स्वास्थ्य सुधारने, आयु बढ़ाने और सुखी रहनेके लिए इससे अच्छा और कौनसा काम हो सकता है? तरह-तरहके रोगोंसे बचने और प्राप्त रोगोंसे मुक्त होनेका इससे अच्छा कौनसा उपाय हो सकता है? जातिके लिए इससे अधिक उपकारक और कौनसी बात हो सकती है? यदि प्राकृतिक नियमोंका पालन किया जाय और अपने शरीरको अवसर दिया जाय तो अवश्य ही वह अपनी सारी मरम्मत आप ही कर लेगा। और यह प्रथा कोई नई नहीं है, केवल पुरानी प्रथाकी पुनरावृत्ति है। यह सर्वरोगनाशक कोई पेटेंट दवा नहीं है, बल्कि हमारे जीवनकी रक्षाका सर्वोत्तम उपाय है। इस नये उपायसे उन पुराने दुष्ट उपायोंका नाश होगा, जिनके कारण शरीररक्षाके बहानेसे जातिको तरह-तरहके कठोर दण्ड सहने पड़ते हैं।"

लंदनके एक दिग्गज डाक्टरने-जो इंग्लैण्डके कई विशाल अस्पतालोंमें चिकित्सकका काम कर चुके हैं—रोगोंके कारणोंके सम्बन्धमें एक पुस्तक लिखी है। उस पुस्तकमें आपने एक स्थलपर लिखा है—

"अमेरिकाके डा० डेवीने एक ग्रन्थ लिखा है, जिसका मुख्य तात्पर्य यह है कि कुछ दिनोंतक पूरा पूरा उपवास करनेसे सैकड़ों तरहके रोग नष्ट हो जाते हैं और बहुतसे साधारण रोग केवल जल-पान छोड़ देनेसे ही छूट जाते हैं। यदि पक्वाशयको सोलह घंटों या उससे अधिक समयतक शान्तिपूर्वक अपना काम करने दिया जाय तो बहुतसे रोगोंसे मुक्ति हो सकती है। उस पुस्तकमें इस क्रियासे अच्छे होनेवाले बहुतसे लोगोंके विवरण दिये गये हैं। मैं जहांतक समझता हूँ, उनका तर्क अकाट्य है और कथन बिल्कुल सत्य है।

"यह परिणाम निकालकर मैंने स्वयं अपने ऊपर उसका अनुभव आरम्भ किया

और मैं जल-पान छोड़कर दिनमें केवल दो वार भोजन करके रहने लगा। जव मैंने सवेरे और सन्ध्याका जल-पान छोड दिया तव दोपहरको एक वजे मुझे वहुत अच्छी तरह भूख लगने लगी। उस समय अच्छी तरह खानेके वाद रातको आठ वजेतक कभी कुछ खानेकी मेरी इच्छा न होती थी। इसका परिणाम ठीक वैसा ही हुआ, जैसा डा० डेवीने अपनी पुस्तकमे वतलाया है। प्रात काल मेरी तवीयत वहुत प्रसन्न रहने लगी और मैं वहुत अच्छी तरह शारीरिक और मानसिक परिश्रम करनेके योग्य हो गया। एक वजे मुझे ऐसी तेज भूख लगती थी जैसी पहले कभी वरसोंसे न लगी थी। जव मैं जल-पान किया करता था तव उसके उपरान्त मुझे वहुत सुस्ती मालूम हुआ करती थी और उसके घटे-दो घटे वाद तक अच्छी तरह मानसिक परिश्रम न हो सकता था। इस प्रकार मैं दिनमें दो वार भोजन करके वहुत अच्छी तरह रहने लगा।"

यह मिथ्या भ्रम मनसे निकाल डालो कि अपना स्वास्थ्य और वल वनाये रखनेके लिए हमको दिनमें तीन वार भोजन करना आवश्यक है। प्रत्येक मनुष्यके लिए दिन-रातमें दो वार भोजन करना यथेष्ट है। वहुत अधिक शारीरिक परिश्रम करनेवाले और युवावस्थाके लोग भी वड़े आनन्दसे दिन-रातमें केवल दो वार भोजन करके रह सकते हैं। इससे उनका स्वास्थ्य सुधरेगा तथा वल वढ़ेगा। वहुधा लोग सवेरे स्नान आदिसे निवृत्त होते ही विना भूख लगे जवरदस्ती कुछ न कुछ खा ही लेते हैं। शरीरपर इस जवरदस्तीका वहुत ही वुरा परिणाम होता है। यदि यह अभ्यास छोड़ दिया जाय और प्राकृतिक नियमोंका अनुसरण किया जाय, केवल उसी समय भोजन किया जाय जव कि खूव तेज भूख लगे तो ससारमें वहुतसे रोग और फलत· चिकित्सकोंके चिकित्सालय आदि भी कम हो जायँ।

खान-पानका विचार

प्रत्येक मनुष्यके लिए अपने खान-पानका विचार रखना वहुत ही आवश्यक है; क्योंकि हम जो-कुछ खाते या पीते हैं उसका प्रभाव केवल हमारे शारीरिक संगठन-पर ही नहीं पड़ता, वल्कि हमारे आचार-विचार और स्वभावके साथ भी उसका वहुत ही घनिष्ठ सम्वन्ध होता है। ससारमे जितने जीव हैं प्राय· उन सवके लिए कुछ न

कुछ विशिष्ट प्राकृतिक भोजन निश्चित होता है और निश्चित भोजनको छोड़कर वह जीव और किसी प्रकारका पदार्थ नहीं खाता। आप किसी शाकाहारी पशुको लाख प्रयत्न करनेपर भी कभी किसी प्रकारका मांस या कीड़े-मकोड़े आदि नहीं खिला सकते। किसी मांसाहारी पशुको फल आदि खिलानेका प्रयत्न कभी सफल नहीं हो सकता, पर संसारके समस्त जीवोंमें अपने आपको सर्वश्रेष्ठ समझनेवाला मनुष्य अपने खान-पानके सम्बन्धमें कभी किसी प्रकारका विचार नहीं रखता। बहुधा उसे जब जो कुछ मिलता है वह सब खा लेता है। तरह-तरहके विषाक्त और मादक द्रव्य और झींगुर, बिल्ली, कुत्ते, चूहे आदि सभी उसके लिए खाद्य हैं। संसारमें कठिनतासे कोई ऐसा पदार्थ मिलेगा जिसे मनुष्य किसी रूपमें भी अपने पेटमें न उतार सकता हो। यही नहीं, वह अपने खानेके लिए नित्य तरह-तरहके नये पदार्थोंका अन्वेषण और आविष्कार किया करता है। पर खान-पान सम्बन्धी यह अत्याचार मनुष्य-जातिके लिए कितना हानिकारक और कितना दुःखदायक है, इसका विचार करनेका कष्ट बहुत ही कम लोगोंने उठाया होगा।

मोटे हिसाबसे संसारमें दो प्रकारके खानेवाले लोग माने जाते हैं, एक शाकाहारी और दूसरे मांसाहारी। शाकाहारियोंके सम्बन्धमें किसीको कुछ कहनेकी आवश्यकता ही नहीं है; क्योंकि फल और शाक आदि मनुष्यका निसर्गसिद्ध भोजन है। मांसके कट्टरसे कट्टर पक्षपाती भी चाहे 'केवल शाकाहार' की निन्दा भले ही करें, पर 'शाकाहार' पर वे किसी प्रकारका आक्षेप नहीं कर सकते। क्योंकि प्रत्येक मांसाहारी अवश्य ही शाकाहारी भी होता है। आक्षेप करने योग्य केवल मांसाहारी ही हैं। अब देखना यह है कि मांसाहारियोंपर जो आक्षेप किये जाते हैं वे वास्तवमें कहांतक सत्य हैं।

कदाचित् यहां इस बातको विशेष रूपसे सिद्ध करनेकी कोई आवश्यकता न होगी कि मांस खानेवालोंकी प्रकृति बहुधा उग्र, उद्दण्ड और हिंसक हो जाती है और फलतः वे लोग क्रूर, निरंकुश और अत्याचारी हो जाते हैं। मांसाहारियोंके कारण दूसरे मनुष्यों और जीवोंको बहुत-कुछ अत्याचार सहना और पीड़ित होना पड़ता है। उदाहरणस्वरूप शेर और गौ, बाज और तोते, पठान और वैष्णव उपस्थित किये जा सकते हैं। यदि अत्याचार और बल-प्रयोग आदिकी गणना गुणोंमें की जा सकती हो तो अवश्य ही मांसाहार भी उत्तम और प्रशंसित हो सकता है; अन्यथा वह इसके विरुद्ध

प्रमाणित होगा। कुछ लोग मांसाहारके पक्षका समर्थन करते हुए यह कहा करते हैं कि मनुष्यको अपने अधिकारोंकी रक्षा करने और अपना अस्तित्व वना रखनेके लिए ही मासाहारी होना वहुत आवश्यक है। इसी कोटिके एक सज्जनने एक वार अपने पक्षके समर्थनके लिए लेखकको किसी आर्ष ग्रन्थका इस आशयका एक मन्त्र सुनाया था कि सृष्टिका यह परम्परागत नियम है कि 'चार पैरोंवाले दो पैरोंवालोंको खायें और दो पैरोंवाले विना हाथ-पैरवालोंको खायें।' तात्पर्य यह कि प्रत्येक सवल अपनेसे निर्वलको खा जाता है। आधुनिक पाश्चात्य विद्वानोंमें भी इस सिद्धान्तके अनुयायियोंकी कमी नहीं है। वे लोग दुर्वलताको महान् पाप समझते हैं और उत्तरोत्तर सशक्त वनना अपना परम धर्म और कर्तव्य समझते हैं। प्रत्येक विचारवान् विना किसी प्रकारका आगा-पीछा किये राजनीतिक और सामाजिक आदि कारणोंसे यह सिद्धान्त तुरन्त स्वीकार कर लेगा और उसकी उपयोगितामें कभी किसी प्रकारका सन्देह नहीं करेगा, पर यदि कोई मासहारी इस सिद्धान्तको अपनी पाशविक वृत्तिके समर्थन और पोषणके लिए सामने रक्खेगा तो विचारवानोंको अवश्य ही उसपर दया और हँसी आयेगी। अपना अस्तित्व वनाये रखने और राजनीतिक अधिकार-रक्षणके लिए अधिकसे अधिक वलकी ही आवश्यकता हो सकती है। क्रूर, भीषण और अत्याचारी प्रकृतिसे उसमें क्या सहायता मिलेगी? कोई मासाहारी दावेके साथ यह वात नहीं कह सकता कि उसमें किसी शाकाहारीकी अपेक्षा अधिक वल है। शारीरिक वल वहुधा शारीरिक शक्तियोंके निरन्तर और सदुपयोगसे ही वढता है। प्रत्येक मनुष्य जिसके आचार आदि परिमित हों वलिष्ठ हो जाता है। मासाहारसे शरीरकी वलवृद्धिमें कभी किसी प्रकारकी सहायता नहीं मिल सकती; वल्कि उल्टे उससे मनुष्यका शरीर तरह-तरहके भयकर रोगोंका घर हो जाता है और वह उसकी मृत्युका कारण होता है। इसका मुख्य कारण यही है कि मास मनुष्यका स्वाभाविक भोजन नहीं है।

भारत सरीखे दरिद्र देशोंमें कुछ लोग मांस-मछली खाना इसलिए उपयुक्त समझते हैं कि उसमें दाम कम लगते हैं। मास तो अन्नसे सस्ता पड़ ही नहीं सकता। रही मछली, सो उससे भी सस्ते दामके शाक आदि प्राय. सभी स्थानोंमें मिलते हैं। इसके अतिरिक्त यदि यह वात भी मान ली जाय कि मांस और मछली विल्कुल मुफ्त मिलती है और अन्न, फल और दूध आदिमें दरकी भारी जमा लग जाती है, तो भी मासाहारका समर्थन नहीं होता। क्या कोई पदार्थ केवल इसी

विचारसे खाद्य सिद्ध हो सकता है कि उसमें हमारा दाम नहीं लगता ? कदापि नहीं। किसी पदार्थको खाद्य सिद्ध करनेके लिए उसमें प्रधानतः कुछ विशिष्ट गुणोंकी आवश्यकता होती है, मूल्यका प्रश्न तो बहुत ही गौण है। साथ ही यह बात भी विचारणीय है कि मास-मछली आदि कहाँ तक सस्ती पड़ती है। पर उसके सस्तेपनका विचार करनेके समय डाक्टरोंकी उस फीस और ओषधियों आदिके मूल्यको न भूल जाना चाहिए जो मांसाहारके परिणामस्वरूप हमारी गाँठ से निकल जाता है। यदि मांसाहारके कारण होनेवाले भीषण और प्राणघातक रोगोंका भी विचार कर लिया जाय तो सम्भवतः संसारमें इससे बढ़कर महँगा सौदा और कोई न दिखाई देगा।

मांसाहारियोंने अपने पक्षके समर्थनके लिए जहाँ और तरह-तरहकी युक्तियाँ लड़ाई हैं वहाँ मनुष्यके शारीरिक और विशेषतः मौखिक संगठनकी भी बहुत-कुछ आड़ ली है। पर शरीर-शास्त्रके आधुनिक बड़े-बड़े विद्वानोंने परीक्षा और अनुभवसे यह बात सिद्ध कर दी है कि शरीर-संगठनके विचारसे मनुष्य शाकाहारी ही है, मांसाहारी नहीं। इसके अतिरिक्त लेखकने एक बार स्वर्गीय पं० चुन्नीलाल शर्म्माको—जिन्होंने बरेलीमें शायद बौद्ध धर्म्मसे मिलता-जुलता 'निर्विकल्प' नामका एक नया सम्प्रदाय खड़ा करनेका विचार किया था—अपने व्याख्यानमें यह कहते सुना था कि संसारका कोई जीव वास्तवमें और स्वभावतः मांसाहारी नहीं होता, यहाँतक कि शेरनीका बच्चा भी जन्म लेते ही पहले अपनी माताका दूध पीता है, बकरी या भैंसेका मांस नहीं खाता। पर ये सब विषय अपेक्षाकृत अधिक गूढ़ हैं और इनपर विचार करना बहुत बड़े-बड़े विद्वानोंका ही काम है। पर मानव-शरीरपर पड़नेवाले मांसके प्रभाव आदिका विचार बहुत-कुछ वाद-विवाद और अनुभव आदिके कारण इतना सरल, स्पष्ट और सिद्ध हो गया है कि हम बिना किसी प्रकार की कठिनता से उसे अपने पाठकोंके सामने रख सकते हैं।

जो पदार्थ दाँतोंसे अच्छी तरह कुचलकर चबाया और पीसा न जा सके वह मनुष्यके लिए कदापि खाद्य नहीं हो सकता। मांसमें जो रेशे होते हैं वे भी ऐसे ही होते हैं और फलतः वह खाये जानेके योग्य नहीं होता। प्रश्न हो सकता है कि जो पदार्थ मनुष्यके खाने और पचाने योग्य नहीं है उसके खानेकी प्रथा कब, क्यों और कैसे चली? इसका उत्तर इसके सिवा और कुछ नहीं हो सकता कि बहुत प्राचीन कालमें बहुत

हो विवश होनेपर कुछ लोगोंने मास खाना आरम्भ किया होगा और तभीसे वह खाद्य पदार्थोंमें गिना जाने लगा और वास्तवमें पराकाष्ठाकी विवशताके अतिरिक्त मास-सरीखे घृणित पदार्थके खानेका और कोई कारण हो ही नहीं सकता। बहुत सम्भव है कि मनुष्यको मास खानेकी कुछ शिक्षा हिंसक पशुओं आदिसे भी मिली हो। आजकल जब कि मनुष्यको संसारके कोने-कोनेमें उत्तम वानस्पत्य और स्वाभाविक भोजन मिल सकता है, तो कोई कारण नहीं है कि मनुष्य ऐसे अस्वाभाविक और हानिकारक पदार्थका खाना बराबर जारी रक्खे। मासके अस्वाभाविक भोजन होनेका सबसे अच्छा प्रमाण यह है कि कभी कोई बालक या वयस्क जिसने कभी मास न खाया हो पहले-पहल बिना बहुत अधिक अरुचि प्रकट किये कभी उसे खाना आरम्भ नहीं कर सकता। मास खानेका आरम्भ अरुचिको दबाकर अपनी प्रकृति और इच्छाके विरुद्ध करना पड़ता है। मास खाना मनुष्यके लिए कितना अधिक हानिकारक है, इसके प्रमाण-स्वरूप यदि बड़े-बड़े डाक्टरोंकी सम्मतियाँ एकत्र की जायँ तो शायद बहुत बड़ा पोथा बन जायगा। बड़े-बड़े वैज्ञानिकोंने रासायनिक परीक्षासे यह बात सिद्ध की है कि मासमें शरीरको हानि पहुँचानेवाले द्रव्य तो बहुतसे होते हैं, पर कोई ऐसा पौष्टिक द्रव्य नहीं होता जो हमें वनस्पतिजन्य खाद्य पदार्थोंमें न मिलता हो। सब प्रकारके अन्नोंमें पौष्टिक द्रव्य मासकी अपेक्षा कहीं अधिक होते हैं। परीक्षा द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि शाकाहारी लोग मासाहारियोंकी अपेक्षा अधिक बलवान्, अधिक परिश्रमी, अधिक शान्त और अधिक विचारवान् होते हैं। संसारमें अबतक जितने बड़े-बड़े महात्मा, दार्शनिक, ऋषि और विद्वान् हो गये हैं उनमेंसे बहुत ही थोड़े ऐसे निकलेंगे जो मासाहारी हों; और उनमें भी मासके पक्षपातियोंकी संख्या तो और कम होगी।

मासमें यदि अन्नकी अपेक्षा कोई विशेषता होती है तो वह उन उत्तेजक तत्त्वोंकी अधिकता है, जो प्रायः सब प्रकारके मादक द्रव्योंमें हुआ करते हैं। जिस प्रकार मादक द्रव्य हमारे शरीरमें पहुँचकर उसकी संजीवनी-शक्तिको अपने साथ युद्ध में प्रवृत्त करके उसे चंचल बना देते हैं, ठीक उसी प्रकारका प्रभाव हमारे शरीरपर मास-भक्षणका भी होता है। इसलिए मास भी हमारे लिए उतना ही हानिकारक है जितना कोई मादक द्रव्य। यदि मांसमें बल बढ़ानेकी शक्ति होती तो मासाहारी शेरको शाकाहारी अरने भैंसे या ओरंग-ओटानसे अपनी दुर्दशा करानेकी नौबत न

आती। जिस मांससे मनुष्यको क्षय, कण्ठमाला, पक्षाघात तथा तरह-तरहके सैकड़ों भयंकर फोड़े हो सकते और होते हैं वह मांस क्या कभी बलवर्द्धक अथवा कमसे कम खाद्य ही हो सकता है? हृद्रोगोंको उत्पत्तिकी भी, मांस खानेसे, बहुत अधिक सम्भावना हुआ करती है। यूरिक एसिड नामका एक विषैला द्रव्य होता है जो मूत्रके साथ मनुष्यके शरीरसे बाहर निकलता है। मास खानेवालोंके मूत्रमें यह एसिड बढ़कर दुगुना और तिगुना तक हो जाता है, जिससे सिद्ध होता है कि मांस खानेका गुर्दोंपर भी बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है और मांस खानेसे रक्त-संचालनमें भी बड़ी बाधा पहुँचती है। यूरोप-अमेरिका आदि देशोंमें आजकल कैन्सर नामका एक बहुत भयंकर फोड़ा फैल रहा है जिससे लाखों मनुष्योंके प्राण जाते हैं। बहुत बड़े-बड़े डाक्टरोंने परीक्षा और अनुभवसे यही निश्चित किया है कि इस भयंकर फोड़ेका कारण मांसाहारके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वहाँ इस भयकर फोड़ेको रोकनेके लिए मासकी बिक्रीतक बन्द करनेके लिए आन्दोलन हो रहा है। तात्पर्य यह कि मनुष्यके लिए मांस खाना अत्यन्त हानिकर और अनुचित है। मांस खाना मानो प्राकृतिक नियमोंका उल्लघन करना है। मांसमें अनेक प्रकारके कीड़े होते हैं जो उसके साथ हमारे पेटमें उतर जाते हैं और हमारा स्वास्थ्य नष्ट कर देते हैं। इसके अतिरिक्त स्वयं मांस पूरी तरहसे नहीं पचता और उसका बहुतसा अंश पेटमें पड़ा सड़ता है। अत जो लोग सदा नीरोग और हृष्ट-पुष्ट बने रहकर अपनी पूरी आयु भोगना चाहते हों, उन्हें अन्न-फल आदि सात्त्विक, स्वाभाविक और श्रेष्ठ पदार्थोंको छोड़कर मांस आदि तामसिक, अस्वाभाविक और निकृष्ट पदार्थ कभी न खाने चाहिएँ।

मांस आदिके बाद शरीरके लिए बहुत ही हानिकारक पर प्रचलित द्रव्योंमें दूसरा नंबर मादक द्रव्योंका है। शरीरपर मादक द्रव्योंका जो दुष्परिणाम होता है वह मांसके दुष्परिणामसे भी कहीं अधिक स्पष्ट और व्यक्त है, अत. उसके लिए बहुत अधिक विवेचनाकी आवश्यकता नहीं है। जिस मनुष्यको यह समझानेकी आवश्यकता पड़े कि मादक द्रव्योंके व्यवहारसे मनुष्यको आर्थिक, शारीरिक, धार्मिक और नैतिक आदि सभी दृष्टियोंसे बहुत हानि होती है, उससे बढ़कर अभागा और दुर्बुद्धि शायद ही कोई होगा। मादक द्रव्योंका व्यवहार करना अपने शरीर, बुद्धि और बल आदिको जान-बूझकर बेतरह तंग करना नहीं है तो और क्या है? जिस मनुष्यका मस्तिष्क शराब या गांजेके प्रभावसे चकराया हुआ होगा वह कौनसी

उत्तम बात सोचने, समझने अथवा करनेमें समर्थ हो सकता है? तात्पर्य यह कि मादक द्रव्योंसे संसारका सब प्रकारका अपकार ही होता है, उपकार कुछ भी नहीं होता। बहुधा लोग जब कुछ अधिक परिश्रम करनेके कारण थक जाते हैं तब उस समय थकावट उतारनेके लिए किसी प्रकारके मादक द्रव्य का व्यवहार करते हैं। पर नशेके उतारके समय कोई उनकी थकावटके उतारका हाल पूछे। उस समय केवल उनकी थकावट ही नहीं बढ़ जाती, बल्कि उनके शरीरमें बहुत कुछ बेचैनी भी उत्पन्न हो जाती है। थकावट दूर करनेके लिए मादक द्रव्योंका व्यवहार करना वैसा ही है, जैसा कि जलती हुई आग बुझानेके लिए उसपर घी या तेल छोड़ना। जो थकावट केवल थोड़ासा ठंडा जल पीने और कुछ देरतक खुली हवामें टहलनेसे ही दूर हो सकती है, उसे उतारनेके लिए किसी प्रकारके मादक पदार्थका सेवन करना मूर्खता ही है। एक गिलास शराब पी लेनेके उपरान्त दूसरा गिलास पीनेकी इच्छा होगी और उसके बाद बोतल खाली करनेकी नौबत आयेगी। यहाँतक कि अन्तमें नशेका भूत उसे मनुष्यत्वसे एकदम गिरा देगा। कुछ लोग केवल संग-साथके विचारसे ही मादक द्रव्योंका व्यवहार करने लगते हैं, पर केवल संग-साथके विचारसे ही ऐसे पदार्थोंका व्यवहार करना—जो हमारी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियोंके नाशक हों, जिनसे हमारे जीवनकी उपयोगिताका नाश हो और जिनसे हमारे कर्तव्योंमें बाधा पड़े—बड़ी भारी मूर्खता है। कुछ लोग कोई बड़ा काम करनेसे पहले केवल इसी लिए कोई नशा खा या पी लेते हैं कि उसकी सहायतासे उनके शरीरमें खूब फूरती आ जायगी और वे उस कामको शीघ्रता और उत्तमतासे कर सकेंगे। पर इस बातका विश्वास रखना चाहिए कि प्रत्येक कार्य जितनी शीघ्रता और उत्तमतासे स्वयं प्रकृति, बिना किसी दूसरी शक्तिकी सहायताके कर सकती है, उतनी शीघ्रता और उत्तमतासे किसी दूसरे पदार्थकी सहायतासे और विशेषतः मादक सरीखे नाशक पदार्थोंकी सहायतासे कदापि नहीं कर सकती। इन सब बातोंके अतिरिक्त नशीली चीजोंसे तरह-तरहके रोग उत्पन्न होते हैं। शराब पीनेवालोंका जिगर सड़ जाता है, गांजा या चरस आदि पीनेवाले पागल हो जाते हैं, अफीमचियों की आँतें बेकाम हो जाती हैं और भांगका आंखोंपर बहुत ही नाशक प्रभाव पड़ता है। संसारके जितने मादक पदार्थ हैं वे सब विष हैं और विष सदा हमारे शरीरके शत्रु ही प्रमाणित होंगे, उनसे किसी प्रकारके हित या कल्याणकी आशा रखना व्यर्थ है।

खान-पानके विचारके अन्तर्गत मांस और मादक पदार्थ आदि छोड़ देनेके अतिरिक्त और भी अनेक बातें हैं, जिनका ध्यान रखना स्वास्थ्य बनाये रखनेके लिए बहुत आवश्यक है। सबसे पहली बात तो यह है कि जहाँतक हो सके मनुष्यको सादा, सूखा और हल्का भोजन करना चाहिए। इस सम्बन्धमें यह बात सबसे अधिक ध्यान रखने योग्य है कि हमारे शारीरिक संगठनमें उन्हीं पदार्थोंसे सहायता मिलती है जिन्हें हम अच्छी तरह पचा लेते हैं। शेष सब पदार्थ हम चाहे उन्हें कितना ही पौष्टिक क्यों न समझें हमें कभी कोई लाभ नहीं पहुँचा सकते। वे तो एक मार्गसे हमारे शरीरमें केवल प्रवेश करते हैं और दूसरे मार्गसे निकल जाते हैं; हमारे शारीरिक संगठनमें उनसे कोई सहायता नहीं मिलती। दस पांच सेर दूधके केवल पी लेनेसे उतना लाभ नहीं हो सकता, जितना पाव भर या आध सेर दूधके पच जानेसे होता है। अतः केवल बलवृद्धि आदिके विचारसे तरह तरहके पौष्टिक पदार्थों को बराबर उदरस्थ करते रहनेका फल उल्टा ही होता है। हलके भोजनका विधान इसलिए किया जाता है कि गरिष्ठ भोजनसे पाचन-शक्तिका नाश होता है और अग्नि मन्द पड़ जाती है। पूरियों और पक्वान्नोंकी अपेक्षा रोटियाँ सहजमें पच जाती हैं और इसी लिए उनसे हमें अधिक लाभ भी पहुँच सकता है। इसके अतिरिक्त भोजन रूखा भी होना चाहिए। घी, मक्खन, पक्वान्न और हलुए आदिसे भी पाचन-शक्ति बहुत मन्द पड़ जाती है। यही कारण है कि नित्य हलुआ-पूरी खानेवाले भोजनके समय एक बारमें चार पाँच पूरियोंसे अधिक नहीं खा सकते, पर सूखी रोटियाँ अथवा भूने हुए दाने खानेवाले उनसे चौगुना और पचगुना भोजन कर जाते हैं। उनके भोजनकी केवल मात्रा ही नहीं बढ़ जाती, बल्कि उससे होनेवाले लाभका मान भी बहुत कुछ बढ़ जाता है। रूखा भोजन करनेवाले लोग सदा खूब नीरोग और बलिष्ठ रहते हैं और तर माल खानेवाले दुर्बल होते हैं। तरह तरहके मसालों आदिका भी कभी व्यवहार न करना चाहिए, क्योंकि उनके संयोगसे खाद्य पदार्थों के स्वाभाविक गुणोंका नाश होता है। जहाँ तक हो सके ऐसे पदार्थ खाने चाहिए जो अपने वास्तविक स्वरूपमें हों अथवा जिनमें बहुत ही थोड़ा परिवर्त्तन हुआ हो। किसी पदार्थके प्राकृतिक स्वरूपमें जितना ही परिवर्त्तन किया जायगा उसके गुणोंका उतना ही अधिक नाश भी होगा। दरदरे पीसे हुए गेहूँका व्यवहार करना लोग आजकलकी सभ्यताके जमानेमें भले ही हास्यास्पद

समझें, पर इस बातसे कोई समझदार आदमी इनकार नहीं कर सकता कि आटा जितना ही अधिक पीसकर महीन किया और छाना जाता है वह उतना ही गरिष्ठ भी होता जाता है। बिना छाने हुए आटेकी अपेक्षा छाने हुए आटेकी रोटी और छाने हुए आटेकी रोटीकी अपेक्षा बढ़िया मैदेकी पूरी कहीं अधिक गरिष्ट और हानिकारक होती है। इसी प्रकार दूध जितना औंटाया जायगा वह भी उतना ही गरिष्ठ होता जायगा। पदार्थोंका प्राकृतिक रूप ज्यों-ज्यों बदलते जाइएगा त्यों-त्यों उनके प्राकृतिक गुणोंका भी नाश ही होता जायगा। मनुष्यके लिए दूध तथा फलोंसे बढ़कर बलकारक और स्वास्थ्यप्रद और कोई पदार्थ हो ही नहीं सकता। पर जो लोग सदा दूध और फलोंपर ही न रह सकते हों और दूसरे पदार्थोंपर भी जिनका मन चलता हो उन्हें इस बातका सदा ध्यान रखना चाहिए कि उनका भोजन जहांतक हो सके सादा, हल्का और रूखा हो। मनुष्यके स्वाभाविक भोजनकी सबसे अच्छी पहचान यह है कि पदार्थको स्वाभाविक स्थिति या स्वरूपमें देखकर मनुष्यके मनमें उसके खानेकी इच्छा उत्पन्न हो। बढ़िया सेब, नाशपाती, अमरूद, अंगूर, सन्तरे या दूध आदिपर तो मनुष्यका मन सहजहीमें चल जाता है, पर मांसके लोथड़े रक्खे हुए देखकर मनुष्यको सदा घृणा ही होती है। उपयुक्त और अनुपयुक्त भोजन-की यही सबसे अच्छी पहचान है। तो भी आजकलके जमानेमें मनुष्यमात्रके लिए केवल फल खाकर और दूध पीकर रहना प्रायः असम्भव है। मनुष्यका स्वाभाविक भोजन अन्न भी है; क्योंकि यदि सूक्ष्म दृष्टिसे देखा जाय तो वह भी फलकी कोटिमें ही आ जायगा। अतः मनुष्यको फलोंके साथ अन्न भी खाना चाहिए। पर वह अन्न जहांतक हो सके बहुत ही कम विकृत रूपमें आया हो और उसमें दूसरी चीजोंका बहुत ही कम योग हो; क्योंकि मनुष्यको नीरोग और बलिष्ट बनाये रखनेमें सबसे अधिक सहायता ऐसे ही पदार्थोंसे मिल सकती है। छौंके-बघारे और तले हुए पदार्थ तो हमारे शरीरके लिए किसी न किसी अंशमें हानिकारक ही होंगे।

खान-पानके सम्बन्धमें दूसरी सबसे अधिक विचारणीय बात यह है कि मनुष्यको जबतक खूब तेज और खुलकर भूख न लगे तबतक कभी कुछ न खाना चाहिए। यह बात सब लोग स्वीकार करेंगे कि आवश्यक रूपसे या अनिच्छापूर्वक किया हुआ काम सदा हानिकारक ही होता है। भोजनके समय भी इस सिद्धान्तकी सत्यता भूल न जानी चाहिए। भूखका अस्तित्व हमें बतलाता है कि हमारे शरीरको पोषक

द्रव्योंकी आवश्यकता है; पर उसका अभाव यही सूचित करता है कि अभी शरीरमें यथेष्ट पोषक द्रव्य उपस्थित हैं। खूब तेज भूख लगनेपर हम जो कुछ खायँगे वह हम तुरन्त पचा सकेंगे और इसीलिए उसके द्वारा हमारे शरीरका बल बढ़ेगा। पर यदि हम बिना भूखके ही जबरदस्ती कुछ खा लेंगे तो उससे हमारी पाचन-शक्ति-पर आवश्यकतासे अधिक बोझ पड़ जायगा और उसके परिणाम-स्वरूप हमारे शारीरिक बलका नाश ही होगा। खूब तेज भूख लगनेपर हम जो कुछ खायँगे वह हमें स्वादिष्ट भी जान पड़ेगा और उसींसे हमारे शरीरका पोषण भी होगा। केवल दैनिक चर्या समझकर खाया हुआ भोजन न तो खानेमें ही स्वादिष्ट मालूम होगा और न हमारे तनमें ही लगेगा। उलटे उससे हमारे शरीरको हानि ही पहुँचती है और तरह-तरहके रोग उत्पन्न होते हैं। दूसरी बात यह है कि जब थोड़ीसी भूख बनी रह जाय तभी भोजनसे हाथ खींच लेना चाहिए; खूब ठूँसकर भोजन करना और नाक तक भर लेना ही शरीरकी सारी खराबियोंकी जड है। यदि भोजन करनेके समय कोई पदार्थ बहुत ही चरपरा या बढ़िया होनेके कारण स्वादिष्ट जान पडे और उसे अधिक खानेकी इच्छा हो तो कदापि उस इच्छाके फेरमें न पड़ना चाहिए और तुरन्त भोजनसे हाथ खींच लेना चाहिए। ऐसे अवसरके लिए एक विद्वानका आदेश है कि "अपने कल्याणके लिए अपनी इच्छा और रसनाको वशमें रक्खो; यह प्रमाणित करो कि तुममें इतना नैतिक बल है कि तुम तुच्छ वासनाओंके फेरमें नहीं पड़ सकते।" बहुतसे लोग पारलौकिक स्वर्गकी कामनासे बड़े-बड़े व्रत करते और इन्द्रिय-दमनका अभ्यास करते हैं; तुम इहलौकिक स्वर्गकी इच्छासे ही पेटू बनना छोड दो। इस पेटूपनसे छुटकारा पानेका सबसे अच्छा उपाय यह है कि हम सदा सादा और रूखा भोजन करें। पहले तो सादे और रूखे भोजनपर तुम्हारा मन ही नहीं चलेगा; परन्तु जब कुछ दिनोंमें तुम अभ्यस्त होकर उसके गुण जान लोगे तब अच्छीसे अच्छी चीजपर भी तुम्हारा मन नहीं चलेगा। साधारण फल खाने या दूध पीनेके कारण कभी मनुष्यको अपच नहीं होता और न खट्टे डकार ही आते हैं। इन दोषोंको उत्पन्न करनेका गुण पूरी, हलुए और मिठाईमें ही है। खान-पानके सम्बन्धमें प्रकृतिकी आज्ञाओंका पालन करो। खूब तेज भूख लगनेपर सादा भोजन उसी समय तक करो जबतक कि वह तुम्हें खूब स्वादिष्ट जान पड़े, तुम्हें कभी कोई शारीरिक व्यथा न होगी।

जल और वायु

जीवमात्रको अपने जीवन-कालमें जिस पदार्थकी जितनी अधिक आवश्यकता पड़ती है प्रकृतिने वह पदार्थ उतनी ही अधिक मात्रामें उत्पन्न और संग्रह करके पहलेसे ही रख दिया है। जीवमात्र के लिए बहुत अधिक मात्रामें और परम आवश्यक वायु होती है। यह वायु संसारमें सब पदार्थोंसे अधिक मानमें है और बिना किसी प्रकारके प्रयास या व्ययके सब जगह मिल सकती है। यही नहीं, बल्कि प्रकृतिने ऐसी योजना कर रक्खी है कि वह छोटे, बड़े, अरक्षित, सुरक्षित, सभी स्थानोंमें आपसे आप पहुँच जाती है। प्रत्येक जीवको कुछ न कुछ वायुकी आवश्यकता होती है, और यदि कोई विशेष प्रतिबन्ध न हो तो उसके लिए प्रत्येक स्थानमें वायु पहुँच भी जाती है। परम उपयोगिता और आवश्यकताके विचारसे सांसारिक पदार्थोंमें दूसरा स्थान जलका है। हजारों ऐसे जीवोंके नाम बतलाये जा सकते हैं, जो हजारों भिन्न-भिन्न पदार्थ खाते हैं, पर वायुके अतिरिक्त संसारमें यदि कोई ऐसी चीज है, जिसकी आवश्यकता उन हजारों जीवोंको पड़ती है तो वह जल ही है। सृष्टिमें जहाँ-तहाँ जलकी अधिकता इसी आवश्यकताकी पूर्तिके लिए है।

जिस वायु और जलकी संसारको इतनी अधिक आवश्यकता हो, उस वायु और जलमें अनन्त गुणोंका होना केवल सहज और स्वाभाविक ही नहीं, बल्कि अनिवार्य भी है। वायु और जलमें हमारे यहाँ ईश्वरका वास माना गया है और वास्तवमें इन्हीं दोनों पदार्थोंमें सबसे अधिक संजीवनी शक्ति है। जेठ-असाढ़की धूपमें दो-चार कोस चलने या दिनभर बहुत अधिक परिश्रम करनेके उपरान्त जितनी शान्ति एक गिलास ठंडे जल और ठंडी हवाके दस-पाँच झकोरोंसे होती है उतनी शान्ति, उतना सन्तोष, उतना सुख संसारके और किसी पदार्थसे सम्भावित नहीं। यदि अधिक सुख और अधिक सन्तोष मिल सकता है तो केवल अधिक जल या अधिक वायुसे ही मिल सकता है। कपड़े उतार दीजिए और शरीरमें ठंडी हवा लगने दीजिए, आपके सारे कष्ट मिट जायँगे और मन प्रफुल्लित हो जायगा। बढ़िया ठंडे जलसे स्नान कर डालिए, सारी थकावट दूर हो जायगी और शरीर हल्का हो जायगा। इस समय आप ही हमारी तरह कहने लगेंगे कि ऐसे सुन्दर पदार्थोंसे लाभ उठानेकी अपेक्षा जो लोग और तरहके दूषित, निन्दनीय और हानिकारक उपाय करते हैं, वे महामूर्ख हैं।

पर तो भी संसारमें ऐसे लोगोंकी कमी नहीं है जो ठंडी हवा और ठंडे जलको हौआ समझते हों—जिन्हें ठंडी हवा और ठंडे जलमें बड़े-बडे दांत दिखाई देते हों। खुली हवामें रहने और खुले जलमें स्नान करनेसे जितने लाभ होते हैं उनका वर्णन नहीं हो सकता। पाश्चात्य विद्वानोंने तो उनकी उपयोगिताका यहांतक पता लगा लिया है कि अन्तमें उन्हें जल-चिकित्सा और वायु-चिकित्साको एक निश्चित और नियमित विज्ञानका रूप देना पड़ा है। संसारकी प्राचीन जातियोंने अपने-अपने समयमें आवश्यकतानुसार उनके लाभ समझ लिये थे और उनकी उपयोगिता सिद्ध कर दी थी। ब्राह्म मुहूर्तमें—जिस समयकी वायु सबसे अधिक शुद्ध होती है—उठना, पास या दूरकी नदीमें स्नान करना और खुली हवामें बैठकर ईश्वराराधन करना; प्राचीन आर्य्योंका सर्वप्रधान कर्तव्य होता था। आजतक उनकी बहुतसी सन्तानें उस कर्तव्यका बहुतसे अंशोंमें पालन करती ही हैं। मिश्र तथा यूनानके प्राचीन निवासी भी इन प्राकृतिक और स्वास्थ्यप्रद आवश्यकताओंको बहुत अच्छी तरह समझते थे। वहांके प्रत्येक नगरमें बढ़िया-बढिया स्नानागार होते थे जिनमेंसे अधिकांशके व्यय-निर्वाहके लिए सर्वसाधारणपर कर लगाया जाता था। दक्षिण यूरोपमें इस प्रकारके स्नानागार ईसासे पांच छः सौ वर्ष पहले तक हुआ करते थे। रोमके प्राचीन निवासियोंने अपने उन्नति-कालमें इसी प्रकारके अनेक प्रबन्ध किये थे। आजतक संसारमें खुले जलमें तैरने अथवा खुली हवामें टहलनेसे बढ़कर और कोई व्यायाम लाभदायक प्रमाणित नहीं हुआ। इन दोनोंकी श्रेष्ठताका मुख्य कारण जल और वायुकी ही श्रेष्ठता है, हमारे शरीर-संचालनका इसमें कोई निहोरा नहीं है।

संसारकी सारी गन्दगीका नाश या तो जलसे होता है और या वायुसे। सूर्यके प्रकाशसे भी उसके नष्ट होनेमें बहुत सहायता मिलती है; पर गन्दगी दूर करनेवाले पदार्थोंमें उसका नंबर तीसरा ही है। मैले कपड़े या स्थान आदि धोनेके लिए जलका ही व्यवहार होता है। यहांतक कि हमारे शरीरके भीतरकी गन्दगी भी जलसे ही नष्ट होती है। हर तरह की बेचैनी और घबराहट दूर करनेमें जल पीनेसे ही सहायता मिलती है। शरीरके किसी कटे हुए स्थानपर पानी डालने या गीला कपड़ा बांधनेसे ही आराम मिलता है, और यहांतक कि फोड़े-फुन्सियों आदिमें भी गीला कपड़ा बांधना ही लाभदायक होता है। पाश्चात्य जल-चिकित्सक तो सारे रोगोंकी चिकित्सा जलके अनेक प्रकारके प्रयोगसे ही

करते हैं। ऐसे उपयोगी पदार्थसे कभी किसी दशामें डरनेका कोई कारण नहीं है। आरोग्यताकी इच्छा रखनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको हर एक चौबीस घंटेमें यदि सम्भव हो तो दो बार और नहीं तो कमसे कम एक बार अवश्य खुले जलमें स्नान करना चाहिए और यथासाध्य बहुतसा स्वच्छ और ताजा जल पीना चाहिए। स्नान करनेसे सारे शरीरके रोम-कूप खुल और साफ हो जाते हैं और उनमेंसे शरीरका बहुतसा विकार अनायास ही निकल जाता है। जल पीनेसे भी प्रायः यही लाभ होता है; बल्कि कुछ अंशोंमें उससे होनेवाला लाभ विशेष होता है, क्योंकि पेटमें उतारा हुआ जल पेट और पेड़के बहुतसे विकारोंको भी निकाल बाहर करता है।

वायु और रोग

ठंडे स्वच्छ और अधिक जलके अभावमें उसका बहुतसा काम ठंडी, स्वच्छ और अधिक वायुसे भी निकल जाता है। प्रायः सभी देशोंमें वर्षके अधिकांशमें ठंडी ही हवा चलती है, गरम हवा कम। बहुत गरम देशोंमें भी कमसे कम सबेरे और सन्ध्याके समय चलनेवाली हवा तो अवश्य ही ठंडी होती है। ठंडी हवामें गहरी सांस लेनेसे हमारे फेफड़ोंके सारे विकारोंका नाश हो जाता है। यह बात सभी लोग जानते हैं कि गन्दी और थोड़ी हवाके कारण मनुष्यको अनेक प्रकारके रोग हो जाते हैं और उन रोगोंमें क्षय प्रधान है। स्वच्छ और ठंडी वायु के यथेष्ट सेवनसे कमसे कम स्वास और फेफड़े-सम्बन्धी सभी रोग बहुत सहज में नष्ट हो जाते हैं। रोगियों और चिकित्सकों की इतनी अधिकता होनेपर भी आजकल रोगोंके कारणोंका किसीको ठीक-ठीक पता नहीं चलता। एक जुकामको ही लीजिए। सब लोग समझते हैं कि ठंडी हवा लेनेसे ही जुकाम हो जाता है; अथवा जुकामका कारण किसी न किसी प्रकारकी ठंडक है। सालमें कमसे कम दो-तीन बार तो सभी को जुकाम होता है; पर बहुतसे लोगोंको हर महीने भी जुकाम हो जाया करता है। यदि कहीं जुकाम बिगड़ गया तो धनफगा या इसी प्रकारकी और कोई दवा पीते-पीते नाकमें दम आ जाता है। लोग बरसात या जाड़ेके दिनोंमें सब खिड़कियों और किवाड़ोंको इस प्रकार बन्द कर लेते हैं कि उनमेंसे जरासी भी हवा न आ सके; और उस कमरेको गरम हवामें

रातभर बन्द रहते हैं। यदि आप किसीसे पूछिए कि भाई, उन्हें जुकाम कैसे हो गया? तो उत्तर मिलता है कि रातको सोये-सोये बहुत गरमी मालूम हुई; जरा खिड़की खोली; उसके खोलते ही ठंडी हवाका झकोरा लगा और जुकाम हो गया। अथवा इसी प्रकार जहां और कहीं थोड़ीसी ठढक मिली कि लोगोंको जुकाम हो गया। पाश्चात्य देशोंके विद्वानोंने तो अन्य रोगोंके कीटाणुओंकी तरह जुकामके भी कीटाणु ही मान लिये हैं और उन कीटाणुओंके नाशके लिए ही जुकामके रोगियोंको तरह-तरहकी ओषधियाँ दी जाती हैं। पर कोई बुद्धिमान् इस बातका जरा भी विचार करनेकी आवश्यकता नहीं समझता कि जुकाम उन्हीं लोगोंको होता है जो ठंडी हवाको हौआ समझकर उससे डरते हैं, और जो लोग सदा ठंडी हवामें घूमते-फिरते हैं उन्हें कभी जुकाम होता ही नहीं। जुकामके सारे कीड़े मैदानों और गरम स्थानोंमें ही फैलते हैं; ठंढे, बरफीले या पहाडी स्थानोंपर उनकी कोई दाल नहीं गलती। जो लोग उत्तरी ध्रुव तक हो आये हैं उनका कथन है कि वहांके देशोंमें जुकाम या इसी प्रकारका और कोई रोग नहीं होता। यही नहीं, बल्कि दिनरात ठंडी हवा और बरफमें रहनेवाले वहांके निवासी फेफड़ेकी किसी बीमारीका नाम भी नहीं जानते। ये सब रोग उन्हीं लोगोंको होते हैं जो ठंडी हवासे डरते और घबराते हैं; स्वच्छ, खुली और ठडी हवाका सेवन करनेवालोंसे स्वयं उन रोगोंको डर लगता रहता है।

गरमीके दिनोंमें मच्छड़ोंसे बचनेके लिए घर-घर मसहरियाँ टाँगी जाती हैं। उन मसहरियोंमें बहुतसे रुपये भी खर्च होते हैं। इस देशमें तो मसहरियोंका व्यवहार केवल मच्छड़ोंके डंकसे बचनेके लिए ही होता है, पर पाश्चात्य देशोंमें उन रोगोंसे बचनेके लिए भी होता है जो मच्छड़ोंके द्वारा भयंकर रूपसे फैलते हैं। पर लाख उपाय करने पर भी मच्छड़ काटते ही हैं और रोग फैलते ही हैं। पर क्या मच्छड़ोंके डंक और उनके द्वारा फैलनेवाले रोगोंसे डरनेवाले लोगोंने कभी यह किस्सा भी सुना है कि एक बार मच्छड़ोंने जाकर अल्लाह मियांसे फरियाद की थी कि सरकार, हवा हमें बहुत दिक करती है, कहीं ठहरने नहीं देती। अल्लाह मियांने जब हवाको बुलवाया तो मच्छड़ वहांसे भी भाग गये। हवाके वहांसे चले जाने पर मच्छड़ फिर रोते हुए अल्लाह मियांके पास पहुँचे। उस बार अल्लाह मियांने मच्छड़ोंको बहुत फटकारा और कहा कि फैसला तभी हो सकता है जब मुद्दई

और मुद्दालेह दोनों मौजूद हों ; जब तुम हवाके आनेपर यहां ठहरते ही नहीं, तब फिर मैं तुम्हारा फैसला कैसे करूँ ? यदि मच्छड़ोंके द्वारा फैलनेवाले रोगोंसे छुटकारा पानेके लिए प्रयत्न करनेवाले रोगियों और डाक्टरों तथा मच्छड़ोंके डरसे बचनेकी इच्छा रखनेवाले शौकीनोंने यह किस्सा न सुना हो, तो अब सुन लें, और यदि पहले भी कभी सुना हो तो अब समझ लें कि मच्छडोंको दूर करनेका सबसे सहज उपाय है—बढ़िया, ठंडी और तेज हवा। मकान ऐसे बनवाइए जिनमें हर तरफसे बढ़िया हवा आती हो। फिर क्या मजाल जो मच्छड आपको काटें या दूसरोंके रोग लगाकर आपको रोगी करें।

बारहों महीने जुकाम और खांसी आदि रोगोंसे पीड़ित रहनेवाले लोग यदि अधिक समय तक खुली और ठंडी हवामें रहनेका अभ्यास करें तो बहुत सहजमें और सदाके लिए उन रोगोंसे उनका छुटकारा हो जाय। ठंडी हवा एक ऐसा पौष्टिक द्रव्य है, जो हमारे फेफड़ों आदिको ऐसी दशाओंमें भी बल प्रदान करती है जब कि संसारभरकी सारी पौष्टिक ओषधियां व्यर्थ सिद्ध होती हैं। ज्यों ही तुम्हें गले या फेफड़े आदिमें किसी तरहकी शिकायत उठती हुई जान पड़े त्योंही ठंडी और साफ हवाका खूब सेवन करो, उस शिकायतका नाम भी न रह जायगा। बात यह है कि जिस स्थानपर किसी प्राकृतिक तत्त्वकी आवश्यकता होती है वहां ओषधों अथवा उसी प्रकारके और किसी पदार्थसे काम नहीं चल सकता। जब हमें बहुत तेज धूप या आंच लगती है तब हमारी त्वचा किसी प्रकारका मरहम या तेल नहीं मांगती, बल्कि वह वहांसे हटकर केवल ठंडे स्थानमें जाना चाहती है। दूसरे पदार्थोंसे उसका कष्ट दूर ही नहीं हो सकता। इस प्रकार जो रोग शुद्ध, स्वच्छ और अधिक वायुके अभावके कारण होते हैं, क्या गोलियां, पुड़ियां और शीशियां उन्हें दूर करनेमें कभी समर्थ हो सकती हैं ? कदापि नहीं। उनकी आवश्यकता तो केवल स्वच्छ और अधिक हवा ही पूरी कर सकती है।

पाचनसम्बन्धी दोषोंको दूर करनेके लिए भी स्वच्छ वायु रामबाण ही है। इसका प्रमाण आपको सारे संसारमें मिलेगा। जो लोग विषुवत् रेखासे जितनी ही दूर रहते हैं उनकी पाचन-शक्ति उतनी ही अधिक होती है। उत्तरी ध्रुवमें रहनेवाले एस्किमो लोग इतना अधिक भोजन पचाते हैं जितना ५० हिन्दू भी नहीं पचा सकते। जो लोग सदा खुली हवामें रहते हैं, उनकी शारीरिक और पाचन-शक्ति बिना किसी

प्रकारके परिश्रम या व्यायामके ही बढ़ जाती है। खुली हवामें साँस लेनेसे रक्त खूब शुद्ध होता है और उसका संचार भी बढ़ जाता है। इस शुद्धि और सचारका शरीरके सभी अङ्गोंपर बहुत ही उत्तम प्रभाव पड़ता है। जब डाक्टर लोग औषध आदि देते-देते थक जाते हैं और रोगीकी दशा किसी प्रकार नहीं सुधरती तब रोगियोंको वे लोग पहाड़ या समुद्र-तटपर जानेकी सम्मति इसीलिए देते हैं। जिन लोगोंको अनपच हो गया हो वे और दिनोंमें रातभर खुली हवामें सोकर तथा जाड़ेके दिनोंमें अधखुली खिड़कियोंके पास सोकर ही अपने रोगसे छुटकारा पा सकते हैं। घी-मक्खन आदि अथवा इसी प्रकारके अन्य ऐसे पदार्थ जिनमें नाइट्रोजन नहीं होता, ठंढी और सहज वायुकी सहायतासे बहुत ही सहजमें पचाये जा सकते हैं।

ठंढी और स्वछ वायुमें उन्निद्र रोगके दूर करनेकी विलक्षण शक्ति है। बहुत ठंढे प्रदेशोंमें जाड़ा आते ही बहुतसे जानवर किसी एकान्त स्थानमें चले जाते हैं और वसन्त ऋतुके आगमनतक बिना किसी प्रकारका आहार किये महीनों सोते या ऊँघते रहते हैं। स्वयं हम सब लोगोंको और दिनोंकी अपेक्षा जाड़ेमें कहीं अच्छी और अधिक नींद आती है। इसका कारण यही है कि जाड़ेमें हवा ठंढी और अधिक होती है। डा० फ्रान्क्लिनकी सम्मतिमें ठंढी हवा नींद आनेकी बहुत अच्छी दवा है। आप लिखते हैं,—

"गरमियोंमें रातके समय जब मैं सोनेके अनेक निरर्थक प्रयत्न कर चुकता हूँ तब उठकर बैठ जाता हूँ और अपने सामनेकी खिड़की खोलकर प्रायः पन्द्रह मिनट तक नगे बदन हवाके रुखपर बैठा रहता हूँ। उस समय नींद न आनेका चाहे जो कारण हो वह दूर हो जाता है और उसके बाद जब मैं लेटता हूँ तब मुझे कमसे कम दो तीन घंटोंके लिए खूब गहरी नींद आ जाती है।"

यदि नींद न आनेपर स्वच्छ वायुका सेवन करनेके समय थोड़ी हल्की कसरत भी कर ली जाय तो उससे और भी अधिक लाभ होता है। सोनेके समय रक्तकी यथेष्ट रूपसे शुद्धि नहीं होती, इसीलिए बहुधा सोये-सोये नींद खुल जाया करती है। यदि सन्ध्याके समय थोड़ासा व्यायाम कर लिया जाय या दो-चार मीलका चक्कर लगा दिया जाय तो उस दोषकी सम्भावना नहीं रह जाती और मनुष्य बड़े आनन्दसे सारी रात खूब गहरी नींदमें सोया रह सकता है।

वायु-सेवन

पिछले पृष्ठोंमें एक स्थानपर यह बतलाया जा चुका है कि शरीरको नीरोग करने और स्वास्थ्य बनाये रखनेमें एकमात्र उपवास ही सहायक नहीं हो सकता ; बल्कि उसके लिए स्वच्छ वायु और व्यायाम आदिकी भी आवश्यकता होती है। स्वच्छ वायुके सेवनसे जितने लाभ हो सकते हैं उन सबका वर्णन करना कमसे कम हमारे सामर्थ्यके तो बाहर है। केवल घरोंमें बन्द रहकर रटन्त करनेवाले बालकोंकी अपेक्षा गलियों, सड़कों और मैदानोंमें चक्कर लगानेवाले बालक और उनकी अपेक्षा सदा खुली हवामें रहनेवाले देहाती बालक कहीं अधिक नीरोग और बलिष्ठ हुआ करते हैं। पालतू (और फलतः गन्दी हवामें रहनेवाले) जानवरोंकी अपेक्षा जंगली (और फलतः साफ हवामें रहनेवाले) जानवर कहीं अधिक बलिष्ठ और फुर्तीले हुआ करते हैं। प्रायः सभी धर्म्मोंमें नंगे पैरों और पैदल चलकर अनेक तीर्थों की यात्राएँ करनेका विधान है ; और उस विधानमें भी स्वास्थ्य-सम्बन्धी यही परमोपयोगी और लाभदायक सिद्धान्त है। उन यात्राओंपर आजकलकी नई रोशनीके लोग भले ही हँसें, पर उन्हें भी किसी न किसी रूपमें—कमसे कम किसी बड़े मैदानकी ही सही—यात्रा करनेकी अवश्य आवश्यकता होती है, और यदि वे वह यात्रा न करें तो उन्हें उसका दुष्परिणाम भी भोगना पड़ता है।

वायु-सेवनका सबसे अच्छा समय प्रभात है, क्योंकि उस समय वायु बहुत शुद्ध, स्वच्छ, शीतल, मन्द और अधिक होती है। ऐसे समयमें यदि मनुष्य नित्य दो, चार या पांच मीलका चक्कर खेतों और मैदानों आदिमें लगाया करे, तो उसे कभी किसी डाक्टर, वैद्य या हकीम आदिका मुंह देखनेकी आवश्यकता नहीं रह सकती। उस समय हमारे शरीरको वायुसे जो लाभ पहुंचता है वह तो पहुँचता ही है, इसके अतिरिक्त रातभरकी ओस हमारे पैरोंमें लगकर हमें और भी अधिक लाभ पहुंचाती है। ठंढे देशोंमें रहनेवाले लोगोंको तो यह लाभ अनायास हो ही जाता है ; पर जो लोग गरम देशोंमें रहते हैं वे भी सबेरेके समय मैदानों और जंगलोंमें घूमकर पहाड़ों और ठंढे देशोंमें रहनेका लाभ उठा सकते हैं। सांस लेनेसे जो वायु दूषित हो जाती है वह साधारण और शुद्ध वायुकी अपेक्षा कहीं अधिक भारी होती है ; और इसीलिए वह प्रायः बन्द और नीचे स्थानों—कोठरियों, दालानों, तहखानों और

गलियों आदि—में ही रहती है ; अतः वायु-सेवनके लिए मनुष्यको ऐसे स्थानोंपर निकल जाना चाहिए जो बस्तीसे बहुत दूर और ऊँचे हों। पर यह बात बहुत ऊँचे पहाड़ोंपर रहनेवालोंके लिए नहीं है, क्योंकि बहुत अधिक ऊँचाईपर वायु स्वयं ही कम और हलकी हो जाती है और साँस लेनेके लिए यथेष्ट नहीं होती। वहांकी वायु तो शरीर और विशेषतः फेफड़ोंके लिए और भी हानिकारक होती है। अतः ऐसे स्थानोंपर जहांतक हो सके और नीचे ही उतर आना चाहिए। यदि सम्भव हो तो सोनेके लिए, बल्कि रहनेके लिए भी नगरसे दूर किसी ऐसे मैदानमें प्रबन्ध करना चाहिए जहाँ श्वाससे दूषित वायुके पहुँचनेकी सम्भावना न हो और जहाँ यथेष्ट सरदी पड़ती हो। ऐसा प्रबन्ध एक साधारण छोटी-मोटी झोपड़ी बनाकर भी किया जा सकता है। वहां मनुष्य जब चाहे तब सुन्दर, स्वच्छ, शीतल और पहाड़ोंकी वायुके मुकाबलेकी वायुका सेवन कर सकता है। जिस समय ठंडी वायु न मिल सकती हो उस समय पासके किसी झरने या छोटी नदीके शीतल जलमें ही स्नान कर लेना चाहिए।

उन मैदानों और जंगलों में भी मनुष्यके लिए ऐसे कामोंकी कमी नहीं है जिनसे उसका मनोरंजन होनेके साथ ही साथ बहुत-कुछ व्यायाम भी हो जाता है। घूम-घूमकर तरह-तरहके फल-मेवे आदि खाना और आवश्यकता पड़नेपर उनके पेड़ोंपर चढ़ना कम स्वास्थ्यप्रद नहीं है। चतुर और दक्ष मनुष्य मधु-मक्खियोंके छत्तेमेंसे बहुतसा शहद भी जमा कर सकता है। पेड़ोंपर चढ़ना एक ऐसी कसरत है जिससे शरीरके अङ्ग-प्रत्यंगपर जोर पड़ता है और शरीर खूब फुर्तीला हो जाता है। यह कसरत उन लोगोंके लिए और भी अधिक उपयोगी होती है जो दमे अथवा इसी प्रकारके और किसी रोगसे पीड़ित हों। इसी प्रकार वहाँ और भी अनेक ऐसे काम निकाले जा सकते हैं जिनसे मनोविनोद, शारीरिक श्रम और आर्थिक लाभ आदि सभी बातें हो सकती हैं। वहाँ रहकर मनुष्य तरह-तरहकी प्राकृतिक शोभाएँ निरख सकता है, अपना ज्ञान बढ़ा सकता है, रोगसे मुक्त हो सकता है, अनेक प्रकारकी बुराइयों और दोषोंसे बच सकता है और अपने मन तथा आत्माको शुद्ध और संस्कृत कर सकता है। यदि मनुष्य सदा ही ऐसा जीवन न व्यतीत कर सकता हो तो उसे कमसे कम सप्ताहमें एक दिन, महीनेमें चार दिन अथवा वर्षमें एक महीने अवश्य ही ऐसा जीवन व्यतीत करना चाहिए। ऐसा जीवन स्वास्थ्यप्रद होनेके

अतिरिक्त बड़ा ही सात्त्विक और शुद्ध होता है और इसीमें मनुष्यको वास्तविक और सच्चा सुख मिल सकता है।

नगरमे रहनेवाले बालकोंको आरम्भसे ही ऐसा मनोहर जीवन व्यतीत करनेका अभ्यास डालना चाहिए। जो बालक इस प्रकार प्राकृतिक शोभाओंको निरखता रहेगा वह बड़े-बड़े शहरोंकी गन्दी गलियोंमे घूमनेवाले बालककी अपेक्षा कहीं अधिक नीरोग, बुद्धिमान् और धर्मात्मा होगा। रेलों और जहाजोंपर चढ़कर बड़े-बड़े नगरों आदिके देखनेमें बहुतसा धन व्यय करनेकी अपेक्षा बहुत ही थोड़े खर्चमें आसपासकी प्राकृतिक शोभाएँ देखना कहीं अधिक लाभदायक है। हममेंसे अधिकाश लोग ऐसे ही हैं जो सदा अपने व्यापारो और कार्यों आदिमें ही लगे रहकर कृश नष्ट और रोगोंके घर बने रहते हैं। जो-जो कृत्य वे सुखी होनेके लिए करते हैं, वे ही कृत्य उन्हें और अधिक दु.खी बनानेके साधन होते हैं। ऐसे लोगोंको यह बात भलेभांति समझ लेनी चाहिए कि प्रकृतिसे बढ़कर हमें सुखी करनेवाला और कोई ससारमें नहीं है। जो लोग देहातसे चलकर किसी काम-धन्धेके लिए शहरोंमें रहते हैं वे कभी-कभी छुट्टी लेकर आराम करनेके लिए अपने देहाती मकानोंमें तो अवश्य पहुँच जाते हैं; पर नगरमें पड़े हुए अभ्यासके कारण वे देहातोंमें होनेवाले लाभसे वंचित ही रह जाते हैं। यदि वे लोग थोड़ासा भी प्रयत्न करें तो बड़ी-बड़ी पौष्टिक औषधोंकी अपेक्षा वहीं अधिक पौष्टिक पदार्थोंसे विशेष लाभ उठा सकते हैं। प्राकृतिक शोभाओं आदिके देखने और सुन्दर स्वच्छ वायु सेवन करनेके इतने अधिक लाभ हैं कि एक विद्वान्ने उनसे वंचित रहनेको बड़ा भारी पाप कहा है।

बहुतसे अभागे लोग स्वच्छ और शीतल वायुसे इतना अधिक डरते हैं कि जब वह स्वय उनके पास आना चाहती है तब भी वे लोग अपने द्वार बन्द कर लेते हैं। रातके समय आपको नगरोंके अधिकाश मकानोंकी खिड़कियां और दरवाजे आदि बन्द ही मिलेंगे; चाहे उनके भीतर रहनेवालोंको कितना ही कष्ट क्यों न होता हो। लोग छोटीसी कोठरीके सब किवाड़े बन्द कर लेते हैं और लिहाफ या ओढ़नेके अन्दर मुँह ढँककर सो रहते हैं। रातभर वे उसी लिहाफ या अधिकसे अधिक कोठरीकी हवा सांस लेकर गन्दी करते और फिर उसी गन्दी हवामें सांस लेते हैं। भारतवर्ष ऐसे गरम देशमें भी यह दशा सालमें छ-सात महीने अवश्य रहती है। हमारे बंगाली भाई तो गरमीके दिनोंमें भी ओस और हवसे बचनेके लिए रातके

छाता लगाकर सड़कोंपर चलते और मसहरियाँ लगाकर सोते हैं। खुली छतोंपर सोना तो मानो उनके भाग्यमें लिखा ही नहीं है। स्वास्थ्यकी दृष्टिसे ऐसा करना बहुत ही हानिकारक है।

युरोप-अमेरिका आदि देशोंमें रातको सोनेके समय मकानकी सारी खिड़कियाँ और दरवाज़े आदि बन्द कर लेनेकी और भी अधिक प्रथा है। क्रीमियाके युद्धमें रोगियोंकी सेवा-शुश्रूषा आदि करनेमें जिस देवी नाइटिंगेलने इतना नाम पाया था, उसे रोगियोंको रातके समय अस्पतालके दरवाजे आदि बन्द करके रातभर गन्दी वायुमें रहते देखकर अत्यन्त आश्चर्य और दुःख हुआ था। एक बार उसने कुछ रोगियोंसे पूछा भी था—'रातकी वायुसे तुम लोग इतना क्यों डरते हो ? क्या तुम लोग यह समझते हो कि कुछ समयके लिए सूर्यका प्रकाश न रहनेके कारण ही वायु भयंकर और नाशक हो जाती है ? सूर्यास्तके बाद तुम्हें प्रकाशपूर्ण दिनकी हवा तो मिल ही नहीं सकती, अब चाहे तुम रातकी स्वच्छ प्राणप्रद और स्वास्थ्यवर्द्धक बाहरी वायुका सेवन करो और चाहे रोग उत्पन्न करनेवाली कमरेके अन्दरकी गन्दी हवामें रहो।"

लोग हवासे तो इतना नहीं डरते, पर उसके झोंकोंसे बहुत अधिक डरते हैं। वे लोग यह नहीं समझते कि यही झोंके हमारे शरीर और फेफड़ोंका बल बढ़ानेमें सबसे अधिक सहायक होते हैं। सूर्यास्तके उपरान्त जब वातावरण ठंढा हो जाता है तब उसके कारण वायुमें संचार-शक्ति स्वभावतः बढ़ जाती है। संचारके कारण वायुकी शुद्धिमें बहुत अधिक सहायता मिलती है। इसीलिए रातकी वायु दिनकी वायुकी अपेक्षा अधिक शुद्ध होती है। बाहरकी बहती हुई और कमरेके अन्दरकी रुकी हुई हवामें उतना ही अन्तर है, जितना कि हरिद्वारके पासकी गंगा और किसी बंगाली गाँवकी गड़हीके जलमें अन्तर होता है। वायुमें ठंढकके कारण इतना अधिक गुण बढ़ जाता है कि जाड़ेके दिनोंमें जब कि हवा अधिक ठंढी होती है, रोगों और मृत्युकी संख्या और दिनोंकी अपेक्षा बहुत घट जाती है। रातकी उसी ठंढी हवासे लोग इतना अधिक भागते और डरते हैं। पर इस भागने और डरनेका उनके स्वास्थ्यपर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक मनुष्यको जहाँतक हो सके सदा अपने कमरोंकी खिड़कियाँ और दरवाजे आदि खुले रखने चाहिएँ। आप कह सकते हैं कि रातके समय ठंडी हवा सही नहीं जाती। वह हवा इसी

लिए नहीं सही जा सकती कि आप बहुत दिनोंसे उसके सहनेका अभ्यास छोड़ बैठे हैं। जिस नदीका मार्ग जबरदस्ती बदला गया हो उसे अपने प्राकृतिक मार्गपर लानेके लिए जिस प्रकार किसी विशेष परिश्रमकी आवश्यकता नहीं होती, उसी प्रकार जिस मनुष्यका स्वभाव जबरदस्ती बदला गया हो उसे अपना प्राकृतिक स्वभाव ग्रहण करनेमें विशेष अड़चन नहीं होती। केवल एक महीनेमें आपको खिड़कियाँ और दरवाजे खोलकर सोने और बैठनेका इतना अभ्यास हो जायगा कि फिर आपको बन्द कमरेमें थोड़ी देरतक रहना भी बहुत कठिन जान पड़ेगा। जाड़ेके दिनोंमें अथवा अन्य अवसरोंपर जब कि ठंढी और तेज हवा चलती हो, आप सरदीसे बचनेके लिए एकके बदले दो और दोके बदले तीन लिहाफ ओढ़ें, पर खिड़कियाँ और दरवाजे बन्द करके गन्दी और जहरीली हवामें कभी रातभर न पड़े रहें। किवाड़े बन्द करनेमें यदि आपका मुख्य उद्देश्य सरदीसे बचना ही हो, तो वह उद्देश लिहाफोंकी संख्या बढ़ानेसे भी पूरा हो जाता है; पर हाँ, यदि आप गन्दी और विषाक्त हवाके उद्देश्यसे ही किवाड़े बन्द करते हों तो बात दूसरी है। आपका स्वास्थ्य बनाये रखने और सुधारनेके लिए साफ हवाकी आवश्यकता है; आप इस बातकी कभी चिन्ता न करें कि वह साफ हवा कितनी ठंढी है। बहुत तेज जाड़ा पड़ने पर आप यदि पूरी खिड़की न खोल सकें तो आधी अथवा थोड़ीसी अवश्य खोल दें; क्योंकि बहुत तेज ठंढकमें सब प्रकारके दूषित कीटाणुओं आदिका नाश होता है।

सदा खुली हवामें रहनेका अभ्यास करो, तुम्हें कभी कोई रोग न होगा। यही नहीं, बल्कि उस दशामें तुम गन्दी और बन्द हवामें थोड़ी देरतक भी न रह सकोगे। अभी हालमें जब कप्तान कुक दक्षिणी ध्रुवकी ओर गये थे तब वहाँके एक टापूमें उनका जहाज ठहरा था। वहाँके कुछ जंगली लोग मल्लाहोंके साथ जहाजपर चले आये और थोड़ी देरतक उनकी कोठरियोंमें रहे। इतने ही समयमें उन्हें बेतरह खाँसी आने लगी, छातीमें दरद होने लगा और उनमेंसे कुछको बुखार भी आने लगा। पुश्तहा-पुश्तसे खुली हवामें रहनेके कारण वे उसके इतने अभ्यस्त हो गये थे कि दस-पाँच मिनट भी गन्दी हवामें रहकर वे उसके दुष्परिणामसे न बच सके।

व्यायाम

अब हम स्वास्थ्य-सम्बन्धी अन्तिम सिद्धान्तकी कुछ बातें बतलाकर यह पुस्तक समाप्त करते हैं। उपवास, जल और वायु आदिके अतिरिक्त मनुष्यकी आरोग्यताके लिए व्यायाम भी बहुत ही आवश्यक है। व्यायामकी उपयोगिता इतनी अधिक और सर्व-सम्मत है कि आजतक उसके सम्बन्धमें कभी किसी प्रकारका वादविवाद या विरोध हुआ ही नहीं। मनुष्य-जातिको व्यायामसे होनेवाले लाभ हजारों वर्षोंसे मालूम हैं और सदा उनकी उपयोगिताका समर्थन होता आया है। एक प्रसिद्ध डाक्टरका मत है कि जब मैं शारीरिक श्रमसे होनेवाले कामोंकी ओर ध्यान देता हूं तब मुझे कहना पड़ता है कि यदि सर्वसाधारणमें व्यायामका यथेष्ट प्रचार हो जाय तो आजकलके बहुतसे फैशनेबुल रोगोंका आपसे आप नाश हो सकता है। रोगोंको औषध आदिकी सहायतासे दूर करनेकी अपेक्षा शारीरिक संगठनको दृढ़ करके दूर कर देना कहीं अधिक उत्तम और निर्दोष है। चिरायता या नीमकी पत्तियोंको औंटा-औंटाकर उनके विषतुल्य कड़ुए काढ़े पीनेकी अपेक्षा उन पेड़ोंपर चढ़ना अथवा उन्हें कुल्हाड़ीसे काटना कहीं अधिक उपयोगी है। इंग्लैण्डके प्रसिद्ध राजमंत्री ग्लैडस्टनने भूख बढ़ानेके लिए तरह-तरहकी औषधोंकी अपेक्षा कुल्हाड़ी और रस्सी लेकर सवेरेके समय जंगलकी ओर निकल जानेको ही अधिक उपयोगी बतलाया था।

मनुष्यके शरीरकी उपमा किसी ऐसी नावसे दी जा सकती है, जिसके चलानेके लिए बिजली (या भाफ आदि) और पाल दोनोंकी आवश्यकता होती हो। जिस समय हवा बन्द रहेगी उस समय तो वह नाव बिजली या भापके सहारेसे चलती रहेगी; पर जब हवा चलने लगेगी तब उसकी गतिके बढ़ानेमें पालसे भी सहायता मिलेगी। ठीक यही दशा हमारे शरीरकी है। साधारण स्थितिमें तो वह अपनी भीतरी शक्तिसे काम करता ही रहेगा; पर वायु-सेवन और व्यायाम आदि पालकी तरह उसकी सहायता करेंगे। यही नहीं, बल्कि जब कभी हमारे शरीरके भीतरी इंजिनके बिगड़नेकी बारी आवेगी तब उसी व्यायामरूपी पालकी सहायताके कारण उसकी गतिमें कोई अन्तर न आने पावेगा। व्यायामके लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह दंड, मुग्दर, बैठक, डम्बेल या जिम्नास्टिक आदिके रूपमें ही हो। सभी प्रकारके कठिन शारीरिक परिश्रम व्यायाम ही हैं। किसी पहाड़ीपर चढ़ने या

दौड़नेसे आपका केवल व्यायाम ही नहीं होगा, बल्कि आप कलेजे और श्वाससम्बन्धी सब प्रकारके रोगोंसे भी मुक्त रहेंगे। अफीमके सतकी गोलियाँ खाकर आप कुछ समयके लिए उन्निद्र रोगको भले ही दबा लें, पर उसका अन्तिम परिणाम आपके लिए घातक ही होगा। पर दिनके समय मैदानोंमें दौड़-धूपकर अथवा चक्कर लगाकर बिना कुछ व्यय किये अथवा जोखिम उठाये आप केवल अपने उन्निद्र रोगसे ही मुक्त नहीं हो जायँगे, बल्कि और भी किसी रोगको अपने शरीरमें घर न करने देंगे। रोगोंकी भयकरताका कारण बहुधा शारीरिक दुर्बलता ही हुआ करती है और इस दुर्बलताको समूल नाश करनेका मुख्य और सर्वोत्तम साधन व्यायाम है।

डाक्टर हफलैण्डकी सम्मति है कि इधर बहुत दिनोंसे मनुष्य घर के अन्दर बन्द रहने और पका-पकाया भोजन करने लग गया है, और दिन पर दिन उसके रोगी और दुर्बल होनेका मुख्य कारण यही है। यदि मनुष्य अपनी शारीरिक दशा सुधारना चाहे तो उसे उचित है कि वह उन्हीं प्राकृतिक नियमोंका पालन फिरसे आरम्भ कर दे, जिनके अनुसार वह बहुत प्राचीन कालमें चलता था। अर्थात् यदि मनुष्य नीरोग रहना और बलिष्ठ होना चाहता हो तो उसे उचित है कि वह यथासाध्य शहरके बाहर मैदानमें रहे अथवा कमसे कम घूमे-फिरे और सदा सादा भोजन करे। डाक्टर बरनर मैकफेडनका मत है कि मनुष्यका शारीरिक अथवा नैतिक संगठन कदापि आधुनिक नष्ट सभ्यताके उस जीवनके लिए उपयुक्त नहीं है जो उसे सदा घरोंमें बन्द रखता और दिनपर दिन उसको शारीरिक श्रमसे वंचित करता जाता है। यदि डारविन साहबका सिद्धान्त ठीक मान लिया जाय—जो कि वास्तवमें बहुतसे अंशोंमें ठीक होनेके अतिरिक्त संसारमें प्रायः सर्वमान्यसा है—तो उक्त दोनों विद्वानोंके मतोंकी और भी अधिक पुष्टि हो जाती है। इसके भाईबन्द—बन्दर, गुरिल्ले, चिम्पैंजी आदि सदा एक पेड़परसे दूसरे पेड़पर कूदा करते हैं और जंगल-जंगल घूमते रहते हैं। इस दृष्टान्तसे हमारा यह तात्पर्य नहीं है कि मनुष्य भी विज्ञान और कला-कौशल आदिका पीछा छोड़कर वनवासी हो जाय। कहनेका मतलब केवल यही है कि मनुष्य निकम्मा और सुस्त बने रहनेके लिए नहीं है, बल्कि चंचल, चपल और फुर्तीला बने रहनेके लिए है।

जो लोग सभ्यताके इतिहास और विकासके सिद्धान्तोंसे भलीभाँति परिचित हैं उन्हें यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि मनुष्य निरी जंगली अवस्थासे कितने दर्जों-

में परिवर्तित होकर वर्तमान स्थिति तक पहुँचा है। उसकी सभ्यता और एकदेशीयताके साथ ही साथ अकर्मण्यता और अस्वस्थता आदि अनेक दोषोंकी भी समान मात्रामें ही वृद्धि होती जाती है। यद्यपि मानव-समाजका फिर उसी प्राचीन स्थितितक पहुँच जाना न तो किसीको अभीष्ट ही हो सकता है और न सम्भव ही है, तथापि उसके शारीरिक कल्याणके लिए यह बहुत ही आवश्यक है कि वह उस प्राचीन कालके अपने जीवनका सर्वांगमें परित्याग न कर दे। जिस मनुष्यके पूर्वज सदा अपना डेरा-डंडा लादे हुए एक स्थानसे दूसरे स्थानतक घूमा करते थे, वही मनुष्य आजकल सभ्य हो जानेके कारण सौ-पचास कदम चलनेमें भी अपना अपमान समझता है। आजकल मकान ऐसे स्थानोंपर बनवाये या लिये जाते हैं, जहाँ दरवाजे तक गाडी लग सके, गाडीपर सवार होनेके लिए बाबू साहबको सड़क तक चलनेकी तकलीफ भी न उठानी पडे। इस सुकुमारताका फल भी हाथोंहाथ मिल जाता है। बाबू साहब सदा दो चार रोगोंका अड्डा बने रहते हैं। अधिक पैदल चलनेसे सालमें दो चार जूतोंका खर्च भले ही बढ जाय, पर डाक्टरकी फीस और नुसखोंके दाम देनेसे अवश्य छुटकारा हो जायगा। खूब घूमने फिरनेके लाभोंकी परीक्षा दो ही दिनमें हो सकती है; एक दिन आनन्दपूर्वक घरमें ही बैठे रहकर और दूसरे दिन दो चार दस मीलका चक्कर लगाकर। पहले दिन आप जो कुछ खायेंगे वह छातीपर धरा रह जायगा और रातको अच्छी तरह नींद न आवेगी और दूसरे दिन भोजन मजेमें पच जायगा और रात भर आप खूब खर्राटे लेंगे।

मनुष्यका शारीरिक-संगठन ही कुछ ऐसा अद्भुत है कि उसके जिस अंगसे काम न लिया जायगा वह धीरे धीरे दुर्बल होने लगेगा और अन्तमें बेकाम या नष्ट हो जायगा। हाथों पैरोंसे काम न लिया जाय तो वे सूख जायँगे; बहुत ही मुलायम और पतला भोजन करनेसे दाँत झड जायँगे; और यदि हम दिन-रात टोपी और साफेका व्यवहार करके बालोंकी आवश्यकता दूर कर देंगे तो हमारे बाल भी व्यर्थ सिरका बोझ बने रहना पसन्द न करेंगे और झड़ने लगेंगे। यही दशा फेफड़ोंकी भी समझना चाहिए। यदि हम उनसे यथेष्ट अथवा विशेष रूपसे काम लेना छोड़ देंगे, तो निश्चय है कि वे भी रोगी हो जायँगे। फेफड़ों आदिसे यथेष्ट काम लेनेका सबसे अच्छा उपाय व्यायाम है। जो मनुष्य सदा किसी न किसी प्रकारका व्यायाम करता रहेगा वह किसी प्रकारका व्यायाम न करनेवालेकी अपेक्षा कहीं अधिक नीरोग

और बलिष्ठ रहेगा। यदि समान स्थितिकी दो बहनोंमेंसे एकका विवाह किसी देहाती साधारण जमींदारके साथ और दूसरीका शहरके किसी धनी कोठीवालके साथ कर दिया जाय, तो शरीरसे काम लेनेकी उपयोगिता सहजमें सिद्ध हो जायगी। देहातीकी स्त्रीको कुएँसे पानी भरना पड़ेगा, चक्की चलानी पड़ेगी, गौओं-भैंसोंकी सानी आदिका प्रबन्ध करना पड़ेगा और इसी प्रकारके और भी अनेक कार्य करने पड़ेंगे। पर कोठीवाल महाशयकी स्त्री दिन भर मुलायम बिछौनोंपर पड़ी 'सरस्वती' और 'स्त्री-दर्पण' के पन्ने उलटेगी, जी घबराने पर हाथमें मोजा बुननेकी दो तीन सलाइयाँ और दो चार तोले ऊन ले लेगी और मिसरानी तथा मजदूरनीपर हुकुम चलावेगी। दस बरस बाद जब कभी किसी अवसरपर दोनों बहनोंकी भेंट होगी तब दोनोंका अन्तर आप ही प्रकट हो जायगा। देहातवाली स्त्री स्वयं हृष्टपुष्ट होनेके अतिरिक्त दो चार मोटे ताजे बालकोंकी माँ होगी और कोठीवालकी स्त्री दुबली, पतली और प्रदर रोगसे पीड़ित। यह एक अनुभवसिद्ध बात है कि पानी भरने और चक्की पीसनेवाली स्त्रियोंको प्रदर या उसी प्रकारका और कोई रोग बहुत ही कम और कदाचित् ही होता है, पर युरोप और अमेरिका आदि देशोंमें जो स्त्रियाँ खूब पढ़-लिखकर डाक्टरी, बैरिस्टरी या क्लर्की करने लगती हैं उन्हें तरह तरहके सैकड़ों रोग आकर घेर लेते हैं। अतः आँखें बन्द करके किसी देशकी प्रथाका अनुकरण करनेसे पहले उस प्रथाके गुण-दोष आदिकी भी भली भाँति मीमांसा कर लेनी चाहिए। ऐसा न हो कि केवल तड़क-भड़कके भुलावेमें ही पड़कर हम अपने यहाँके उत्तम गुणोंको छोड़ बैठें और पीछे हाथ मलनेकी बारी आवे।

आजकलकी सभ्यता शरीरसे काम लेनेको पापसा समझती है, उसे उन कामोंके लिए करने चाहिए। तो भी अधिकांश नगरनिवासियोंको अपने पैरोंसे तो बहुत कुछ काम लेना पड़ता है; पर हाथोंसे काम लेनेकी उन्हें बहुत ही थोड़ी आवश्यकता पड़ती है। पर उचित और आवश्यक यह है कि जिस अंगसे हमारे व्यापारमें काम कम लिया जाता हो उस अंगसे काम लेनेके लिए हम या तो व्यायाम करें और या अपने लिए कोई नया व्यापार निकालें। केवल मनोविनोद और स्वास्थ्यके लिए यदि हम बढ़ई या लोहारका काम सीखें और फुरसतके समय घरपर ही दो चार पीढ़े-कुरसियाँ बना सकें तो इसमें लज्जा या संकोचकी कोई बात नहीं है। जंगलसे जाकर लकड़ियाँ काटनेमें कोई शरम नहीं है, यदि शरम हो भी तो वह अधिकसे अधिक उन्हें अपने सिरपर लादकर

अपने घर तक लानेमें ही हो सकती है। गोलियाँ निगलने और शीशियाँ पीनेकी अपेक्षा डंड पेलना, बैठकें करना और मुगदर फेरना कहीं श्रेयस्कर है। अस्पताल बनवानेमें बहुतसे रुपये लगानेकी अपेक्षा अखाड़े और व्यायामशालायें बनानेमें थोड़े रुपये लगाना कहीं उत्तम है। रोग उत्पन्न करके उन्हें चंगा करनेका प्रयत्न व्यर्थ है। प्रयत्न ऐसा होना चाहिए, जिसमें रोगका मूल ही नष्ट हो जाय; उसे उत्पन्न होने, बढ़ने और फैलनेका अवसर ही न मिले। जड़ छोड़कर पेड़ काटना कभी लाभदायक नहीं हो सकता; क्योंकि जड़ फिर पनपेगी, पेड़ फिर उगेगा। यही नहीं बल्कि उसके बीज चारों ओर गिरकर और भी नये पेड़ उत्पन्न करेंगे। अपने शरीर-रूपी भूमिको रोगरूपी वृक्षके जमने योग्य ही न होने दो, और पहलेसे जो रोग उत्पन्न हों उनका समूल नाश करो; इसीमें तुम्हारा, तुम्हारी जातिका, तुम्हारे देशका और समस्त संसार तथा मानव-जातिका कल्याण है। एवमस्तु।

समाप्त

परिशिष्ट

उपवासोंकी परीक्षाओंके परिणाम

अमेरिकाके बोस्टन नगरमें वहाँके सुप्रसिद्ध धन-कुबेर और दानवीर कार्नेगीकी स्थापित की हुई एक संस्था है जिसका नाम 'कार्नेगी इन्स्टीट्यूट न्युट्रिशन लेबोरेटरीज'* है। इस संस्थाकी ओरसे प्रोफेसर डा० फ्रान्सिस गानो बेनेडिक्टने दो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ (A Study of Prolonged Fasting और The Influence of Inaniton on Metabolism) प्रकाशित किये हैं। इन ग्रन्थोंमें जो उपवाससम्बन्धी परीक्षाओंके परिणाम दिये गये हैं, उनका सारांश आगे दिया जाता है—

उपवासके पहले हफ्तेमें तापमान (टेम्परेचर) नार्मल या नार्मलके आसपास रहा—कभी उसका झुकाव घटतीकी ओर रहता था और कभी बढ़तीकी ओर; परन्तु पहले हफ्तेके बाद तापमानकी निश्चित रूपसे घटती हुई जो कि करीब करीब उपवासके अन्ततक कायम रही। नाड़ि-स्पन्दन अर्थात् नाड़ीकी चाल अधिकतर नार्मलके आसपास रही—कुछ केसोंमें कुछ अधिक और कुछमें कुछ कम। रेस्पिरेशन या श्वासोच्छ्वासकी गति एकसी स्थिर रही। परिणाम यह निकला कि नाड़ीकी अपेक्षा श्वासोच्छ्वासकी गति उपवास-कालमें अधिक स्थिर और बिना फेरफारके रहती है।

सीनेटर मूलरने नेट्टी और त्रिन्यार नामक दो रोगियोंके खूनकी परीक्षा करके बतलाया कि दोनोंके खूनमें लाल कोषोंकी वृद्धि हुई है। बादकी परीक्षाओंके परिणाम डा० टाउस्कने इस प्रकार निकाले।—(१) लाल कोष आरम्भमें कुछ समय तक कम होते हैं, परन्तु बादमें बढ़ने लगते हैं। (२) खूनके सुफेद कोषोंकी संख्यामें कमी होती जाती है। (३) एककेन्द्रीय कोष अर्थात् मोनोन्युक्लियर सेल्समें घटती होती है। (४) इओसिनोफाइल्स और बहुकेन्द्रीय कोषोंकी संख्यामें वृद्धि होती है। (५) खूनमें शक्कर कम होती है।

इसके बाद शक्तिकी परीक्षा की गई और इसके लिए डायनेमोमीटर या शक्ति-

---

* जिस रसायनशालामें पोषणसम्बन्धी अन्वेषण किये जाते हैं।

मापक यंत्रकी सहायता ली गई। ये परीक्षाएँ डा० वेनेडिक्टने डा० ल्वानजिनपर और लुसियानीने सुक्कीपर कीं। उपवासके २१ वें दिन उक्त यन्त्रके द्वारा परीक्षा करनेपर सुक्कीकी पकड़ या मुट्ठी (grip) उपवासके प्रथम दिनकी पकड़से कहीं अधिक मजवूत मालूम हुई ; परन्तु २० वें दिनसे ३० वें दिनतक वह कम होती गई। इसपर टीका करते हुए डा० लुसियानी लिखते हैं कि आरम्भमें सुक्कीकी ताकत बढ़नेका कारण उसका इस वातका तीव्र विश्वास था कि उपवाससे मेरी ताक्त दिनपर दिन वढती जा रही है। कमजोर इच्छा शक्तिवाले अविश्वासी लोगोंमें इसका परिणाम उल्टा भी हो सकता है; परंतु यह निश्चित है कि उपवासके कारण उतनी शक्ति नहीं घटती जितनी कि संभव है या लोग समझते है। थकावटकी जाँचसे मालूम हुआ कि २९ वें दिन भी सुक्कीकी थकावटका माप उतना ही था जितना कि साधारण लोगोंका होता है।

'मेरलाटी' ने ५० उपवास किये। उपवासके दिनोंमें उसे बहुत बेचैनी और तकलीफ रही तथा कुछ ठंडसी मालूम होती रही। 'जेम्स' ने ३१ उपवास किये। उसे भी बेचैनी रही और उसपर १६ वें दिन गठियाका हल्कासा हमला हुआ। परतु अधिकांश रोगियोंमें, जिन्हें उपवास कराये गये, किसी प्रकारकी स्पष्ट बेचैनी नहीं देखी गई, प्रायः सभी खुश नज़र आये।

स्टाकहोमकी सरकारी रसायन-शालामें भी एक मनुष्यपर उपवासके प्रयोग किये गये। पहले छह दिनोंमें ही उसकी सारी तकलीफें रफा हो गई और छटे दिन उसे फुर्ती और ताकत मालूम होने लगी; परंतु उसके ज्ञान-तंतुओंकी कुछ ऐसी अवस्था हो गई कि यदि वह विस्तरपरसे एकाएक उठता था तो उसकी आँखोंके आगे काले धब्बे नजर आते थे। परंतु इसका कारण कमज़ोरी नहीं था।

डाक्टर वेनेडिक्ट साहव इस परसे यह परिणाम निकालते हैं कि स्वयं उपवासके कारण—खासकर आरंभमें—किसी प्रकारकी कमजोरी नहीं होती और जो थोड़ी-बहुत कमजोरी होती भी है, उसके विषयमें यह ज़ोर देकर नहीं कहा जा सकता कि वह उपवासके ही कारण हुई है।

डा० वेनेडिक्टके कथनानुसार उपवासका सर्व-प्रथम असर दस्तके परिमाण और मितत्तापर होता है। आँतोंमें बहुत देर पड़े रहनेके कारण पाखाना बहुत ही ्त, सूखा और गोलियों जैसा हो जाता है, जिससे प्रायः बेचैनी होती है। उसे

निकालनेमें बड़ी कठिनाई होती है। कभी-कभी तो बहुत तकलीफ होती है, और कुछ खून भी निकल आता है। उपवासके दिनोंमें मल निकालनेके लिए एनिमाका उपयोग बहुत साधारण है। सुक्कीके ३० दिनोंके उपवासके अवसरपर इसका उपयोग किया गया था। उपवासके प्रथम दिन तो पाखाना नित्यके समान ही नियमित हुआ, परन्तु आगे अधिक ध्यान देने योग्य बात यह हुई कि पाखाना अनेक दिनों-तक रुका रहा और प्रकृतिके द्वारा उसे निकालनेका कोई भी दृश्य उद्योग नहीं किया गया।

शरीरकी उष्णतापर भी उपवासका विचित्र प्रभाव पड़ता है। डा० रैवलग्लिटी (A Rabalglhti) लिखते हैं कि एक मनुष्यको—जिसे सात वर्षसे कैंका रोग था, और इस कारण जो बहुत दुर्बल हो गया था और जिसकें शरीरकी गर्मी ९६ रह गई थी—मैंने ३५ उपवास करनेकी सलाह दी। उपवास-कालमें उसकी गर्मी और भी कम रहने लगी, परन्तु उपवासके अंतमें अच्छे होनेपर वह ९८.४ डिगरी हो गई।

ऊपरके दृष्टान्तसे यह सिद्धान्त गलत ठहरता है कि शारीरिक गर्मीका मुख्य स्रोत भोजन है और यह सिद्ध होता है कि शरीर अपनी गर्मीके लिए भोजनकी रासायनिक दहन-क्रियापर सीधे तौरपर अवलम्बित नहीं है।

जीभकी अवस्था रोगीके स्वास्थ्यका दर्पण मानी जाती है। यदि जीभ साफ होती है और सब बातें बराबर होती हैं तो कहा जाता है कि स्वास्थ्य ठीक है; परन्तु यदि उसपर मैलकी तह जमी हो, तो रोगी कम या अधिक अस्वस्थ समझा जाता है। परन्तु उपवासके कई केसोंमें यह बात गलत साबित हुई है। उपवासका अध्ययन इस बातको सिद्ध करता है कि वह मनुष्य जिसकी कि जीभपर मैलकी तह जमी हो, उस मनुष्यसे कहीं अच्छी अवस्थामें हो सकता है जिसकी कि जीभ पूर्ण रूपसे साफ है।

पहले चाहे जीभ साफ रहती हो, परन्तु उपवास आरंभ करते ही उसपर पपड़ी जमने लगती है और करीब-करीब अन्ततक अधिकाधिक जमती जाती है। इस परसे यह नहीं कहा जा सकता कि उपवासके पहले रोगी विशेष स्वस्थ था या अब उपवास करनेसे उसकी दशा विशेष खराब हो गई है। जीभपर पपडी जमनेका कारण यह है कि प्रकृति मलको निकालनेके सभी संभव रास्तोंका उपयोग करती है। इससे शरीरके

समस्त बारीक झिल्लीदार अंगों—मुँह, नाक, कान और आँखों—में मलकी तह जमती है और फिर जीभ तो वृहत् अन्ननलिका (Alimentary canal) का एक अंग है, इसलिए प्रकृतिके द्वारा वह खास तौरसे इस उपयोगमें लाई जाती है। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि जब उपवासकी आवश्यकता नहीं रहती और प्राकृतिक भूख लगने लगती है, तब जीभ अपने आप साफ हो जाती है। परंतु इसमें व्यतिक्रम भी होता है। उपवासको चालू रखनेके लिए केवल इसी एक बातपर अवलम्बित न रहना चाहिए। हालमें ही कई कट्टर रोगी इस हठके कारण मर गये कि जबतक जीभ बिलकुल साफ न हो जायगी, तबतक कुछ न खायेंगे।

उपवासके कारण श्वासोच्छ्वासकी गन्धमें भी फर्क पड़ता है। उपवास आरम्भ करनेके कुछ दिन बाद मुँहसे एक खास और विचित्र तरहकी गन्ध निकला करती है और उसके साथ एक और तरहकी भी गन्ध आने लगती है। यह दोनों प्रकारकी गन्ध मिश्रित होनेपर क्लोरोफार्मकी गन्धके समान कुछ मीठीसी मालूम होती है। साधारण अवस्थाओंमें उपवासका अन्त समीप आनेपर यह गन्ध बदल जाती है और फिर पहलेके समान गन्ध आने लगती है।

अनेक लोगोंपर अनुभव और प्रयोग करनेके पश्चात् यह निष्कर्ष निकला है कि उपवासके समय वज़न घटनेका औसत परिमाण एक पौंड या आध सेर प्रति दिन है। आरम्भमें इससे कुछ अधिक घटता है और बादमें कुछ कम। चर्बीवाले स्थूल आदमियोंका वज़न अधिक शीघ्रतासे घटता है और दुबलोंका कम। ऐसे भी अनेक लोग देखे गये हैं जिनका वज़न उपवाससे बिल्कुल नहीं घटा और सबसे अधिक आश्चर्यकी बात यह हुई कि कुछ लोगोंका वज़न उपवास-कालमें बढ़ने लगा। इस तरहकी अनेक आश्चर्यजनक घटनाओंका विवरण डा० आर० टी० ट्रालने अपने उपवाससम्बन्धी महान् ग्रन्थमें दिया है। उनका कहना है कि वज़न बढ़ना ऐसी अवस्थामें होता है जब कि मनुष्यके शरीरका तन्तुजाल बहुत घना और ठोस होता है और उपवासके समय उसके बीचकी जगह स्पंजके छिद्रोंकी तरह खुल जाती है। उपवास-कालमें जो पानी पीया जाता है वह उक्त जगहमें उसी तरह भरकर रह जाता है, जिस तरह स्पंजमें पानी, और वह शरीरके वज़नको बढ़ा देता है। डाक्टर ट्राल इस प्रयोगसे इतने अधिक प्रभावित हुए हैं कि इसपरसे उन्होंने मनुष्यकी 'प्राकृतिक मृत्यु' की भी व्याख्या कर डाली है। उनका कहना है कि प्राकृतिक मृत्यु शरीरकी वह

अवस्था है जब कि शरीरमें ठोस द्रव्योंका अनुपात तरल द्रव्योंकी अपेक्षा इतना अधिक बढ़ जाता है कि जीवन-क्रिया ही असम्भव हो जाती है। इसपरसे यह अनुमान किया जा सकता है कि शरीरमें तरलता और लचीलापन जीवनके लिए कितना महत्त्वपूर्ण है, और उपवास इस प्रकारकी अवस्था लानेका सर्वोत्तम उपचार है।

ठोस भोजन बन्द कर देनेपर पेटके अन्दरकी दीवालें एक दूसरेके समीप झुकने लगती हैं और अन्तमें एक दूसरीसे सट जाती हैं। यह अवस्था तबतक रहती है जबतक कि भोजन फिर शुरू नहीं कर दिया जाता। उपवासके बाद मलके बहुत दिनोंतक निकलते रहनेका यही कारण है। जैसे-जैसे मल पकता जाता है, वैसे-वैसे निकलता जाता है।

एक दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उपवास-कालमें पाचक रसका स्राव बिल्कुल बन्द हो जाता है। इस प्रयोगसे साधारण अवस्थामें यह परिणाम निकाला जा सकता है और फिर इसे एक नियमके रूपमें रखा जा सकता है कि शरीरको जितने भोजनकी आवश्यकता है उतना भोजन पचानेके लिए जितने पाचक रसकी आवश्यकता होती है उतने ही परिमाणमें वह पैदा होता है और यदि शरीरको भोजनकी आवश्यकता बिल्कुल नहीं होती, तो पाचक रस भी बिल्कुल पैदा नहीं होता, चाहे फिर खा चाहे जितना क्यों न लिया जाय। उपवासके दिनोंमें शरीरको भोजनकी आवश्यकता नहीं होती, इसलिए पाचक रस भी नहीं चूता और इसलिए इस बातसे डरनेकी आवश्यकता नहीं रह जाती कि पाचक रसकी खटाई पेटकी दीवालोंको गलाकर पचा डालेगी। जब शरीरको भोजनकी आवश्यकता होती है—उसके सब रोग शान्त हो जाते हैं—तब पाचक रस अपने आप चूने लगता है और उस समय न खाना एक प्रकारसे आत्म-हत्या करना है।

उपवासका सबसे पहला असर पेटपर होता है। इसके बाद दूसरा नम्बर फेफड़ोंका है। उपवाससे श्वासोच्छ्वासकी सब प्रकारकी रुकावटें दूर हो जाती हैं, आवाज साफ और गहरी हो जाती है। फेफड़ोंका मुख्य काम खूनको साफ करना है, इससे उपवासका प्रभाव खूनपर भी शीघ्र पड़ता है जिससे सारे देहकी हालत सुधरने लगती है।

तीसरा असर यकृत और मूत्राशयपर होता है। आरम्भमें ३-४ दिनतक तो इन अंगोंपर पुराने बचे हुए कामका बोझ रहता है, इसलिए कोई असर नहीं मालूम होता, परन्तु इसके बाद शीघ्र ही इनकी हालत सुधरने लगती है।

चौथा असर हृदयपर पड़ता है। हृदयपरसे अनावश्यक बोझ हटने लगता है जो कि तरह-तरहके विषों और मादक द्रव्योंके इकट्ठा होनेके कारण पैदा हो जाता है। इसी कारण उपवाससे हृदयके रोगोंके बहुतसे रोगी अच्छे हो जाते हैं।

पाँचवाँ असर आँतोंपर होता है। पेट छोटा हो जाता है और धीरे-धीरे आँतें खाली होने लगती हैं जिसमें कि एनिमाके प्रयोगसे बहुत अधिक सहायता होती है। आँतोंकी दीवालें साफ-स्वच्छ हो जाती हैं और एक तरहका काया-पलट होना आरम्भ हो जाता है।

छठा असर यह होता है कि शरीरकी ग्रन्थियोंके स्रावोंमें फर्क होने लगता है और अनेक बार एक तरहके स्रावके बजाय दूसरे तरहके स्राव होने लग जाते हैं। लाला-ग्रन्थियोंका स्वाद ही बदल जाता है, परन्तु यह सब चिह्न उपवास समाप्त होनेपर अन्य चिह्नोंके समान समयपर नष्ट हो जाते हैं।

सातवाँ फर्क यह होता है कि स्पर्श, घ्राण, श्रवण और दर्शनकी इन्द्रियाँ अतिशय तीव्र हो जाती हैं और इसलिए जो बहुतसे रोगी वर्षोंसे इन इंद्रियोंका पूरा उपयोग नहीं कर सकते थे वे करने लगे और बहुतसे अध-बहरे रोगी अच्छे हो गये। इसका कारण यह था कि आवाज़-नलिका (Eustachian tube) में खूनका दबाव कम हो गया, जिससे कि कानकी झिल्ली (drum) का दोनों ओरका दबाव बराबर हो गया और अनावश्यक वायु जो उस नलिकामें भरकर रह गई थी, निकल गई।

उपवासका आठवाँ असर खूनपर पड़ता है। इससे खूनमें पतलापन बढ़ने लगता है, जिससे नहीं ग्रहण किया हुआ पोषक पदार्थ तथा मल एक जगहसे दूसरी जगह घुलकर शीघ्र पहुँचाया तथा शरीरके बाहर फेंका जा सकता है। इसके सिवाय लाल अणुओंकी वृद्धि होती है।

उपवासका नौवाँ प्रभाव मस्तिष्क और नाड़ियोंपर होता है। अधिक विचार और चिन्ताके कारण मस्तिष्कके कोषोंमें जो ज़हर पैदा हो जाता है वह उपवाससे बहुत शीघ्र दूर हो जाता है और विचार करनेकी ताक़त तथा स्पष्टता बढ़ने लगती है। बड़े-बड़े दार्शनिकों और विद्वानोंमें अधिक विचार या चिन्ता करनेसे जो एक प्रकारकी विक्षिप्तता नज़र आती है, वह भी दूर हो जाती है। प्राचीन समयसे बड़े-बड़े आध्या-त्मिक पुरुष शायद इसी लिए इसका उपयोग करते रहे हैं।

———

किन किन रोगोंमें उपवाससे लाभ होता है और किनमें नहीं

रोग दो प्रकारके होते हैं। एक आङ्गिक, दूसरे प्रक्रियात्मक। पहले प्रकारके आङ्गिक (Organic) रोग वे हैं, जो किसी अगके टूटने, फूटने, सड़ने या बनावटसम्बन्धी किसी विगाडके कारण होते हैं। दूसरे प्रक्रियात्मक (Functional) रोग वे हैं जो किसी अगके ठीक-ठीक काम न करनेसे होते हैं, स्वय उस अगमें कोई दोष नहीं होता।

यह बात निश्चित है कि उपवास किसी प्रकारके गभीर आङ्गिक दोषको दूर नहीं कर सकता। उपवाससे टूटा पाँव नहीं जोडा जा सकता। इसी प्रकार सूजन, सड़न या कोषोंकी कमीके कारण यकृत (मूत्राशय) या फेफड़ोंका जो हिस्सा नष्ट हो गया हो, वह उपवासके द्वारा फिरसे नहीं बनाया जा सकता। हृदयरूपी पप या पिचकारीमें खूनके आने-जानेके जो मार्ग हैं, उनमें जो एक-मार्गी फाटक या वाल्व (Valve) लगे हैं जिसके द्वारा खूनकी एक ओरकी गति रोकी जा सकती है वे यदि छोटे हो जाते हैं जिससे कि वे रास्तेको पूरी तरहसे ढक नहीं सकते, तो उनकी यह कमी भी उपवासके द्वारा दूर नहीं की जा सकती। फिर भी, इस प्रकारके रोगोंमें जितना आराम उपवास पहुँचा सकते हैं उतना अन्य कोई उपचार नहीं पहुँचा सकता और मृत्यु जितने अधिक दिन उपवाससे स्थगित की जा सकती है उतने दिन और किसी उपायसे नहीं। इसका कारण यह है कि उपवास खूनको साफ करता है, विषोंको दूर करता है, नष्ट अगों और कोषोंकी राखको शरीरके बाहर फेंक देता है और कभी-कभी नष्ट हुए तन्तुजाल और छोटे-मोटे अगोंको भी फिरसे बनाकर पुरानोंकी जगहमें स्थापित कर देता है। आगिक दोषोंसे उत्पन्न बीमारिया भी खासकर आरभमें और जवानीमें उपवासके द्वारा संपूर्ण रूपसे आराम हो सकती हैं।

दूसरे प्रकारके प्रक्रियात्मक या अगोंके आलस्यसे उत्पन्न होनेवाले रोग तो शर्तसे उपवासके द्वारा अच्छे हो जाते हैं। इनपर तो उपवास जादूकासा असर करता है।

यह कोई नियम नहीं है कि शरीरका दुबला होना या सूखना केवल भूखसे या

अन्न न मिलनेसे होता हो। अनेक वार तो खुराककी कमी ही शरीरको खूब पुष्ट कर देती है। परंतु क्षय रोगमें शरीर अत्यंत शीघ्रतासे सूखता है तथा इस प्रकार उत्पन्न हुई कमीकी पूर्ति बड़ी मुश्किलसे होती है, इसलिए क्षयके रोगीको प्रारभमें एक छोटे उपवाससे अधिक नहीं कराना चाहिए और सो भी शरीरमेंसे विप-संचयको दूर करनेके लिए। यद्यपि कुछ बहुत सावधानीसे निरीक्षित क्षयके केसोंमें लम्बे उपवास भी कराये गये हैं और उनसे क्षय बिल्कुल निर्मूल किया जा चुका है, परन्तु फिर भी क्षयके प्रत्येक रोगीको उपवास करनेकी राय नहीं दी जा सकती।

केन्सर (दुष्ट अर्बुद) के पिछले स्टेजोंमें उपवाससे सिवा इसके और कोई फायदा होनेकी आशा नहीं की जा सकती कि वह तकलीफको शीघ्र रोक देता है, परंतु आरंभकी अवस्थाओंमें वह (केन्सर) बिल्कुल अच्छा हो जाता है। सिवाय इसके केन्सरकी पिछली अवस्थाओंमें भी उपवासके सिवाय और कोई ऐसा उपाय ज्ञात नहीं है जो रोगकी वाढ़को रोकनेकी तथा अपेक्षाकृत अधिक कष्टरहित और लम्बी जिन्दगी देनेकी आशा दिला सके।

जन्मजात अङ्गसम्बन्धी तथा शरीरकी वाढ़सम्बन्धी अन्य बीमारियोंमें भी उपवास से कोई लाभ नहीं हो सकता; परंतु बचपनमें उपवासके द्वारा उक्त कमियोंकी पूर्ति किसी अंशमें की जा सकती है। रक्तको रोकनेवाले हृदयके ढक्कनोंके चूनेको भी इससे फायदा नहीं हो सकता और न हस्तिमेह (Aneurism) में ही फायदा हो सकता है। दुष्ट पांडुरोग (Pernicious Anemia) में भी बड़े उपवासकी राय नहीं दी जा सकती।

मस्तिष्कके नष्ट होनेसे जो पागलपन होता है, उसमें भी उपवास फायदा नहीं पहुँचाता; परतु यदि किसी चोटके कारण मस्तिष्कके गूदेमें तह (Concussion) पड़ गई हो, तो उपवासकी आवश्यकता होती है और उसे तबतक चालू रखना चाहिए जबतक भयकर लक्षण शांत न हो जायँ, मन ठिकाने न आ जाय और होश दुरुस्त न हो। विषोंकी मादकताके कारण जो मनकी बीमारी हो जाती है, उसमें भी उपवास फायदा पहुँचाता है। कपवात या चोरिया (Choria) नामक बीमारी पोषक पदार्थोंकी कमीसे होती है। उसमें भोजनकी नहीं किंतु पोषक पदार्थोंकी आवश्यकता होती है। हिस्टीरिया या अपतत्र वायु और साइको-न्यूरोसिस (Psycho-neurosis) या मानसिक वायु-रोग नामक बीमारीमें भी उपवाससे

फायदा होता है, परन्तु छोटे उपवासोंसे तथा ठीक-ठीक और पोषक भोजनोंसे इनका इलाज करना अधिक श्रेष्ठ है। यही बात मेलिनकोलिज़्म (Melancholism) या उदासीनताकी बीमारीके लिए भी ठीक है।

शरीरमें यदि विषोंकी बहुत ही अधिकता न हो, तो गर्भिणी स्त्रीका उपवास करना ठीक नहीं है और खास तौरसे बिना विशेष कारणके।

मसूरिका (Measles), लालज्वर (Scarlet Fever), डिफ्थीरिया (Diphtheria), गलेकी सूजन (Sore throat), पारिगर्भिक या कुकुर खांसी (Whooping cough) और यहांतक कि बच्चोंके अर्धांगवात रोगमें भी आरंभमें उपवासकी आवश्यकता होती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि बीमारीके आरंभमें ही आंतोंके धोनेके साथ उपवास कराये जावें, तथा साथमें शामक स्नान, स्वच्छ वायु और जलका उपयोग किया जावे तो भयकरसे भयकर बीमारी रुक जायगी। दवाओंके बेचनेवाले और सीरमोंकी पिचकारी देनेवाले डाक्टरोंके लिए इनसे अधिक भयंकर और कौनसी बात हो सकती है कि बिना रोगकी जांच कराये उपवास आरंभ कर दिये जायँ? परंतु यह मानना पड़ेगा कि रोगको अच्छा करनेकी अपेक्षा रोगीको अच्छा करना अधिक आवश्यक है। बच्चोंके सिरदर्द, दस्त, कै आदिपर उपवासका शीघ्र परिणाम होता है। इन रोगोंमें उपवासके साथ अन्य प्राकृतिक उपाय भी काममें लाने चाहिएँ।

लोगोंका विश्वास है कि दुर्बल दीखनेवाले लोगोंको उपवाससे फायदा नहीं होता, मोटे चर्बीवालोंको ही होता है; परन्तु यह गलत है। ९८ से १०० पौण्ड वजनवाले पचासों रोगियोंको उपवास कराये गये हैं और उन्हें इससे बहुत लाभ पहुँचा है।

स्कर्वी (Scurvy) और बालकोंके सूखी नामक रोगोंमें शरीरमें कुछ तत्त्वोंकी कमी हो जाती है जिसकी पूर्ति आवश्यक है। उपदंश या गर्मीके रोगमें आरंभमें तो उपवास फायदा पहुँचाता है, परन्तु तीसरी अवस्थामें जब कि उसका आक्रमण रीढ़पर होता है, उपवास कराना अच्छा नहीं है। रीढ़के टेढ़ेपनका एक केस हालमें ही उपवाससे अच्छा हो गया है; परन्तु इसपरसे विकलांग लोगोंको यह आशा दिलाना ठीक नहीं है कि उपवाससे वे भी अवश्य अच्छे हो जायँगे।

कुछ लोगोंका कहना है कि उपवाससे पेटमें अम्ल या खटाईकी वृद्धि होती है; परन्तु यह ठीक नहीं है। डा० हेगका कहना तो यह है कि उपवास शरीरपर मानो

आरकी खुराकोंका असर करता है। उपवाससे खून क्षारीय होता है जो स्वास्थ्यका चिह्न है, अम्लीय नहीं होता।

उपवास करते हुए मृत्यु भी हो जाती है ; परन्तु जाँच करनेसे मालूम हुआ है कि मृत्यु स्वयं उपवासके कारण कभी नहीं हुई, बल्कि उपवाससे तो जीवन कुछ बढ़ ही गया है। उपवाससे हमें असम्भव कार्य कर दिखानेकी आशा नहीं करनी चाहिए। जो रोग अच्छा हो सकता है वह उपवाससे अवश्य अच्छा हो जायगा, यह निश्चय है, इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता है। परन्तु जो रोग अच्छा हो ही नहीं सकता, उसमें उपवासका कोई दोष नहीं।

उपवास-कालके उपद्रव

ज्वर—उपवासके आरंभ में कभी-कभी बुखार आ जाता है। यह बुखार और कुछ नहीं है, केवल इस बातका चिह्न है कि शरीर विषोंको बाहर निकालनेकी क्रिया अत्यंत तीव्रतासे कर रहा है। प्रत्येक क्रियासे गर्मी उत्पन्न होती है। यही गर्मी जब शरीरमें अधिक बढ़ जाती है तब बुखार कहलाने लगती है। अनेक बार गर्मी मालूम होते हुए भी तापमानमें फर्क नहीं होता। उपवासके शुरू करते ही यदि हमें बुखार आ जाता है, तो यह इस बातका चिह्न है कि हम भोजन ठीक तौरसे नहीं करते। बुखारका आ जाना उपवासका कोई आवश्यक परिणाम नहीं है, वह आकस्मिक या संयोगवश भी हो सकता है। यदि बुखार आ जाय तो पानी खूब पीना चाहिए और शीतल स्पंज-स्नान करना चाहिए। ठंडे पानीमें स्पंज या कपड़ेको भिगोकर शरीरपर फेरने और तुरंत तुवाल्से रगड़-पोंछकर कम्बल उढ़ा देनेको स्पंज-स्नान कहते हैं। इसे करते समय हवाके झोंकेसे बचना चाहिए।

अनेक बार कमज़ोरी, बेहोशी, धैर्यहीनता और निराशा आदिके आक्रमण होते हैं। कमर, पैर और जोड़ोंमें दर्द होता है, बैठे रहनेमें अशक्यता आदिका अनुभव होता है। परंतु जैसे-जैसे मल निकलता जाता है, वैसे-वैसे ये लक्षण कम होते जाते हैं।

अनेक बार वर्षों पहलेके पुराने रोग उभड़ आते हैं जो दवाओं-पिचकारियों

आदिसे दवा दिये गये थे। इससे मालूम होता है कि उपवाससे बीमारियोंकी जड़े तक खोद डाली जाती हैं।

खुजली वगैरह चमड़ेके दर्द भी पैदा हो जाते हैं। इनके होनेपर धूपमें बैठनेके सिवाय और कुछ करनेकी आवश्यकता नहीं है।

इनके सिवाय और भी कुछ छोटी-मोटी तकलीफें हैं जिनपर बहुतसे रोगी तो ध्यान ही नहीं देते, और बहुतोंको ये होती ही नहीं हैं, जैसे—

चक्कर आना—सुबह बिस्तरसे उठनेपर चक्कर आता है। उपवासमें प्राय: सब ही अंग विश्रान्ति लेना आरम्भ कर देते हैं। इस कारण ज्ञानतन्तुओं या नाड़ियोंकी असावधानतासे यह लक्षण प्रकट होता है। उपवासमें नाड़ियाँ काम करनेके लिए हमेशा तैयार नहीं रहतीं। मस्तकमें खूनकी कमी या अधिकतासे भी यह होता है। इसकी विशेष पर्वाह करनेकी आवश्यकता नहीं है। उठते-बैठते समय किसी वस्तुको पकड़ लेना चाहिए।

बेहोशी होना—चक्कर आनेके समान बेहोशी भी मस्तिष्कमें खूनकी कमीसे होती है। बेहोशीकी हालतमें रोगीके मस्तकको नीचे करके पैरोंको ऊपर उठाना चाहिए। कालर या गलेके कपड़ेको ढीला करके मस्तकपर थोड़ा ठंडा पानी डालना चाहिए, जूतोंको खोलकर हाथ और पैर रगड़ना चाहिए, मुँहपर पंखा झलना चाहिए तथा नौसादर और चूनेके मिश्रण या सूँघनेके लवण (Smelling Salts) सुँघाने चाहिएँ। पैर ऊपर और सिर नीचे (शीर्षासनके समान) करनेसे भी यदि रोगीकी बेहोशी शीघ्र दूर न हो, तो समझना चाहिए कि रोगी और किसी कारणसे बेहोश हुआ है।

पेटका दर्द—कभी-कभी आँतोंमें दर्द होता है। प्रत्येक रोगमें एक ऐसा समय आता है जब कि वह अधिकतम तीव्रतासे प्रकट होता है; परन्तु इसके बाद ही उसका उतार प्रारम्भ हो जाता है। इस कालको चोटीका समय या क्राइसिस कहते हैं। अनेक बार पेटका दर्द इसी अदरूनी क्राइसिसके कारण होता है। पेटके अतिचेतन ज्ञानतन्तुओंकी एकाएक (Spasmodic) सिकुड़न या ऐंठनके कारण, जमे हुए मलके अपनी जगहसे एकाएक विचलित होनेके कारण, बहुत दिनसे सगृहीत मलमेंसे बुरी वायु निकलनेके कारण तथा कभी-कभी बेअक्लीसे किये गये ठंडे पानीके प्रयोगोंके कारण भी यह दर्द थोड़ी देरके लिए होता है। यदि यह बहुत देर ठहरे, तो

गुनगुने पानीका एनीमा देना चाहिए और पेड़ूपर पानीमें भीगे कपड़ेकी गर्म पुल्टिस बांधनी चाहिए। गुनगुना पानी पीकर पेटपर हल्की मालिश करनेसे भी लाभ होता है।

सिर दर्द—मलका जो अंश शरीरके बाहर न निकलकर आँतोंके द्वारा सोख लिया जाता है और रक्तमें मिलकर मस्तिष्कतक पहुँच जाता है, वह जब उपवास-कालमें बहुत तेजीके साथ नीचेकी ओर हटाया जाता है, तब (इस हटाये जानेकी क्रियासे) सिर-दर्द होने लगता है। यह अक्सर अधिक खानेवालों और चा-काफीकी नियमित रूपसे उपासना करनेवालोंको होता है। उपवासके लम्बे होनेपर कुछ ही दिनके बाद यह अच्छा हो जाता है। यदि दर्द अधिक बढ़ जाय तो पानी अधिक पीना चाहिए, गुनगुने पानीका एनिमा लेना चाहिए, कपड़ेको ठंडे या गर्म पानीमें भिगोकर सिरपर रखना चाहिए और पैरोंको कुछ समयतक गर्म पानीमें डुबाये रखना चाहिए।

दस्त आना—उपवास-कालमें दस्त शायद ही किसीको होते हैं। यदि हों, तो उन्हें रोकनेका प्रयत्न न करके गर्म पानीका एनीमा देकर ओर सहायता करनी चाहिए। यह बहुत अच्छा लक्षण है। रोग-निवारणमें इससे बहुत सहायता मिलती है।

मुँहका स्वाद आना—पानीमें नमक या नीबू मिलाकर कुल्ले करना चाहिए और बार-बार जीभ साफ करनी चाहिए। इन उपचारोंसे लाभ होता है; परन्तु इनकी कोई ऐसी विशेष आवश्यकता नहीं है।

नींद नहीं आना—उपवास-कालमें अधिक नींदकी आवश्यकता ही नहीं होती, थोड़ी नींदसे काम चल जाता है; परन्तु यदि नींद बिल्कुल ही न आवे, या बहुत ही कम आवे तो सारे शरीरपर खुली हवा लगने देवे। श्वासोच्छ्वासकी कसरत करने और गुनगुने पानीके टबमें बैठकर सर्वांग-स्नानसे भी लाभ होता है।

पेशाबका रुकना—यह तकलीफ शायद ही कभी होती है। उपवासके आरम्भसे यदि रोगी काफ़ी पानी पीता रहे, तो इसके होनेकी सम्भावना ही नहीं रहती। यदि अधिक पानी पीने पर भी पेशाब १२ घंटेसे अधिक रुकी रहे, तो गरम सिट्ज़-बाथ (मेहन-स्नान) लेना चाहिए और पेड़ूपर गरम पानीका कपड़ा बाँधकर (हाट-वाटर-पैक) उसके नीचेके भागको दबाना चाहिए। यदि इतनेपर भी तकलीफ रफा न हो तो फिर किसी होशियार डाक्टरके द्वारा कैथीटर (निरूह-वस्ती) का उपयोग करना चाहिए।

हृदय में दर्द और उसका कम्पन—पेटमें उत्पन्न होनेवाली गैसोंके दबावसे और दूसरे पाचनसम्बन्धी बिगाड़ोंसे यह होता है। उपवासके समय यह शायद ही कभी होता है; परन्तु यदि कभी हो, तो गुनगुने पानीके २-३ ग्लास पीने चाहिएँ और लेट करके अंगोंको ढीला कर देना चाहिए। कभी-कभी ठंडे पानीके कपड़ेको भी हृदयपर रखनेकी आवश्यकता होती है।

नाड़ी की मन्दगति—पुरुषोंकी नाड़ीकी गति एक मिनटमें साधारणत. ७२ और स्त्रियोंकी ८० होती है। उपवास-कालमें उन व्यक्तियोंकी ५०, ४५ और ४० तक हो जाती है, जो सुस्त, बलहीन और जड़ होते हैं। मैकफेडन साहबने तो एक मनुष्यकी नाड़ीकी गतिको २६ तक कम होते देखा है और फिर भी उसमें कोई चिंताजनक लक्षण नहीं थे। कहा जाता है कि वीर-केसरी नेपोलियन बोनापार्टकी नाड़ीकी गति हमेशा ४० से कम रहती थी। अपने आपपर और दुनियापर काबू रखनेवाले महापुरुषों और योगियोंकी नाड़ी प्रायः मन्द चलती है। यदि नाड़ीकी गति मन्द हो, परन्तु साथमें और कोई दुर्लक्षण प्रकट न हो, तो कोई चिन्ता करनेकी बात नहीं। जब नाड़ी साधारणत. मन्द चलती है तब वह अधिक गहरी और शक्तिशालिनी भी होती है, जिससे प्रकट होता है कि हृदय अपनी धड़कनकी संख्याकी कमीको कामकी मात्रासे पूरा कर रहा है। जिस समय नाड़ी मन्द चलती है, उस समय हृदय अधिक विश्राम करता है और इसलिए उपवासके बाद वह पहलेकी अपेक्षा अधिक बलवान् हो जाता है।

नाड़ीकी मन्दताके साथ यदि आगे लिखे हुए लक्षण प्रकट हों, तो अवश्य ही चिन्ता करनी चाहिए—रक्ताभिसरणमें कमी होना (हाथ-पैरोंका ठंडा होना, होठोंका काला या नीला पड़ जाना) ज्यादा चक्कर आना, अत्यधिक कमजोरी मालूम होना आदि। नाड़ीकी गतिके ५० तक गिरने तक विशेष ध्यान देनेकी आवश्यकता नहीं है, परन्तु यदि इससे और भी नीचे जाने लगे, तो हलकी कसरत और गहरी श्वाससे सहायता लेनी चाहिए। गरम पानीके टबमें बैठकर कटि-स्नान करनेसे नाड़ीकी गति बहुत जल्दी बढ़ जाती है। इससे रक्तका अभिसरण इतना तेज हो जाता है कि नाड़ीकी गति ७० से बढ़कर १२० तक हो जाती है। गरम पानीके स्नानके समय सिरपर ठंडे पानीमें भिगोया हुआ कपड़ा बांध देना चाहिए। मालिश और रगड़से भी नाड़ीकी गति बढ़ाई जा सकती है।

नाड़ीका तेज़ चलना—जिन लोगोंका मन कमज़ोर होता है ; जो अत्यधिक भावुक होते हैं और जिनके ज्ञान-तन्तु दुर्बल होते हैं, उपवास-कालमें उनकी नाड़ीकी गति तेज़ हो जाती है। यदि इसके साथमें कोई खास तकलीफ बेचैनी आदि न हो तो इसपर कोई ध्यान देनेकी आवश्यकता नहीं है। मैकफेडन साहबने ऐसे कई केस देखे हैं जिनमें नाड़ीकी गति १४० थी ; फिर भी रोगियोंको किसी तरहकी शिकायत नहीं थी, वे मजेमें थे।

नाड़ीकी गति तेज़ होनेपर मनुष्यको विश्रान्तिकी आवश्यकता होती है। उसे १२० से अधिक न बढ़ने देना चाहिए और जब नाड़ीकी गति १२० के आसपास पहुँच जाय, तब रोगीको दिलासा देना चाहिए। इस समय मध्यम तापमान (९९° फा०) के जलसे स्नान कराना चाहिए और टबमें बहुत समय तक बिठाये रखना चाहिए। हृदयपर साधारण ठंडे पानीसे भींगे हुए कपड़ेको रखनेसे भी लाभ होता है।

क़ै या उलटी होना—उपवास-कालमें सबसे अधिक चिन्ताजनक उपद्रव यही है। कभी-कभी उपवासके ४० वें ५० वें दिन तक भी क़ै होती देखी गई है। क़ै होनेके लक्षण प्रकट होते ही उपचार आरम्भ कर देना चाहिए। यदि क़ैका रंग चमकीला हरा अथवा कालासा हो तो उसे खतरनाक समझना चाहिए। इस तरहकी क़ै करनेवाले, एक-दो रोगियोंकी मृत्यु हो गई है, परन्तु इस तरहके केस बहुत ही कम—हजारमें एक-दो ही—होते हैं और वह भी मोटे चर्बीवाले। साधारण या दुबले-पतले शरीरवालोंको तो इसके होनेकी सम्भावना ही नहीं है। इस तरहकी क़ै क्यों होती है, अभी तक इसका कोई ठीक-ठीक निर्णय नहीं हुआ है। क़ैके लक्षण प्रकट होनेपर नीचे लिखे उपचार करने चाहिए—

अधिक मात्रामें गरम पानी पीना चाहिए, भले ही वह क़ैके साथ निकल जाय। इससे पेट साफ होगा, उत्तेजित नाड़ियाँ शान्त होंगी और स्नायुओंकी गति जो ऊपर की ओर होने लगती है वह फिर नीचेको होने लगेगी। इसी तरह पित्त भी ऊपर न आकर नीचे जाने लगेगा। पेड़ू और पीठके चारों ओर गरम कपड़ा लपेट देना चाहिए। स्वच्छ हवा और गहरी साँससे भी लाभ होता है।

यदि कोरे पानीसे काम न चले, तो उसमें नीबू या सन्तरेका रस, मधु या जौका पानी मिलाकर देना चाहिए और अधिक मात्रामें देना चाहिए। केवल नीबूका रस भी पानीमें मिलाकर देना अच्छा है। ४०–५० नीबू तक दिये जा सकते हैं।

यह प्रश्न अनेक वार पूछा जा चुका है कि क्या ऐसी अवस्थामें खुराक देना योग्य है ? डा० डिउई इसके विरुद्ध हैं। वे कहते हैं कि ऐसी अवस्थामें खुराक देना मौतको बुलाना है। उनकी रायमें मन और शरीरको पूरा आराम देना चाहिए। यदि यमराजकी मुहर न लग चुकी होगी, तो प्रकृति रोगीको अवश्य अच्छा कर देगी।

जब किसी भी तरहसे क़ै वन्द न हो, तब रोगीके कुटुम्बियों और मित्रोंको दिलासा देनेके लिए हल्का भोजन भी दिया जा सकता है, जिसे एनीमासे निकाल देना चाहिए। डा० डिउईने एक ऐसे केसका उल्लेख किया है जिसमें भोजन देनेसे क़ै वन्द हो गई थी, परन्तु उस भोजनको पेटमें नहीं रहने दिया था। यह रोगी आगे चलकर ६० वें दिन विल्कुल नीरोग हो गया था और उसकी भूख लौट आई थी।

कमजोरी और शिथिलता—यह उपवासके आरम्भके दिनोंमें और कभी-कभी वीचमें कुछ दिन छोड़-छोड़कर मालूम होती है। जिन लोगोंके रोगोंको दवानेके लिए दवाओंका अधिक उपयोग किया गया होता है उन्हें यह तीव्रताके साथ होती है। यदि ब्रोमाइड वगैरह मारक और निस्तब्ध करनेवाली दवाओंका अधिक सेवन कराया गया हो, तो उपवास-कालमें उक्त दवाओंके गुणोंसे ठीक उलटी हालत होती है। प्रायः दो-दो तीन-तीन दिनके अन्तरसे अप्राकृतिक फुर्ती और उत्साह मालूम होता है। लगातार वहुत समय तक विषोंका उपयोग किये जानेपर भी यह अप्राकृतिक स्फूर्ति मालूम होती है। यह इस वातका प्रमाण है कि उपवाससे पूर्वोक्त विष नष्ट हो रहे हैं और ज्ञानतन्तुओंकी पुनर्घटना हो रही है।

उपवासपर अविश्वास और शंका होनेके कारण भी कमजोरी और शिथिलता मालूम होने लगती है। ऐसी हालतमें उपवासके लाभोंका वर्णन करके रोगीको एन उत्साहित करना चाहिए। यदि हालत कुछ ज्यादा खराब मालूम हो तो ठंडा पानी पिलाना चाहिए। गहरी सांस लेने आदि प्रयोगोंसे भी लाभ होता है। यदि रोगी शय्याशायी हो, तो अंगड़ाई लिवाना चाहिए या अंगोंको. ऊंचा करके स्नायुओंको तानने-की कसरत कराना चाहिए। हल्की मालिशसे भी उपकार होता है।

आँखोंके आगे विजलीसी चमकना या प्रकाशकी चिनगारियाँ निकलना—यह प्रायः सिर-दर्दके साथ होता है और मस्तकमें रक्तके अत्यधिक जमावसे या अत्यधिक ह्राससे होता है। ज्ञानतन्तुओंकी कमजोरी, विषोंकी अधिकता

और यकृत तथा मूत्राशयके विकारसे भी यह होता है। परन्तु ऐसी बातोंपर ध्यान न देना ही अच्छा है। हल्के व्यायामोंसे इसमें लाभ होता है।

कानोंमे घटेकी-सी आवाज या भन-भन सुनना—उपवासकालमें शरीर अपने सभी द्वारोंसे मल बाहर निकालता है, तदनुसार कानोंमेंसे भी मोम जैसा द्रव्य निकलता है और वह ज्यादा परिमाणमें इकट्ठा हो जाता है। उसीसे यह उपद्रव होता है। मस्तकमें खूनके जमावसे भी इसके होनेकी सभावना है। यदि यह जल्दी अच्छा न हो, तो कानोंमें गर्म पानीके दो-तीन बूँद या गर्म 'ओलिव आइल' आदि तेल या ग्लिसरीन डालना चाहिए।

शरीरमेंसे दुर्गन्ध निकलना—उपवास-कालमें विषों और मलोंके अधिक परिमाणमें निकलनेके कारण दुर्गन्ध आती है। यह गन्ध गठिया (Rheumatism), गुर्देकी सूजन (Brights'disease) और मधुमेह आदि भिन्न-भिन्न रोगो में भिन्न-भिन्न प्रकारकी होती है। इसमें साधारण स्नान और घर्षण स्नान (शरीरको खूब रगडकर धोने) से त्वचाके कार्यमें सहायता करनेके सिवाय और कुछ करनेकी जरूरत नहीं है।

मुँहसे ईथर सरीखी बास आना—शरीरमें एसीटोन (Acetone) नामक द्रव्यके इकट्ठा होनेसे इस प्रकारकी बास आती है। यह द्रव्य शरीरके प्रत्येक स्रावके साथ थोड़े परिमाणमें निकला करता है और आंगिक द्रव्यके पृथक्करणसे उत्पन्न होता है। इसका अधिक मात्रामें निकलना इस बातको सूचित करता है कि शरीरका कोई आवश्यक अंग या पदार्थ नष्ट हो रहा है, इसलिए यह लक्षण अच्छा नहीं है। इसके प्रकट होनेपर उपवास कमसे कम कुछ दिनोंके लिए अवश्य तोड़ देना चाहिए और फलोंका रस लेना आरम्भ कर देना चाहिए।

तंद्रा—इससे प्रकट होता है कि दवाइयोंके सेवनसे शरीरमें जो विष बहुत अधिक मात्रामें एकट्ठा हो गये हैं, वे बाहर निकाले जा रहे हैं। इसमें भीगी चादरके प्रयोगसे लाभ होता है। ठंडे पानीमें एक चादर भिगोकर उससे रोगीको लपेट देना चाहिए। चादर सब अंगोंसे सट जानी चाहिए। इसके बाद ऊपरसे तीन-चार कम्बल ओढ़ा देना चाहिए और उन्हें तब अलग करना चाहिए जब खूब पसीना आ जाये। ठंडी हवासे बचाना चाहिए। इस प्रयोगसे शरीरसे विषोंको निकालनेमें सहायता मिलती है।

हिक्का या हिचकी आना—अक्सर लम्बे उपवासोंमें हिचकी आने लगती है। छाती या डायाफ्रामके एकाएक सिकुड़नेसे अथवा पित्त रसके पेटमें फिर लौट जानेसे यह उपद्रव होता है। इसमें मृत्यु भी हो सकती है; परन्तु वह आंतोंमें रुकावट होनेपर ही होती है। यों साधारण तौरसे यह कोई अधिक चिन्ताकी बात नहीं है। इसका सर्वोत्तम उपाय मुँहके द्वारा या एनीमासे शरीरमें पानी पहुंचाना है। मेरु-दण्डपर गर्म पानीकी पुल्टिस बांधनेसे भी लाभ होता है।

यदि और कोई उपाय कारगर न हो, तो कमरेके ज़रा ऊपर चारों ओर पट्टा बांधकर उसे धीरे-धीरे कसते जाना चाहिए और तबतक कसते जाना चाहिए जब-तक कि ऐसी अवस्था न हो जाय कि पेड़का प्रदेश हिचकीमें ऊपरको न उठ सके। कभी-कभी इस पट्टेको कसनेमें सारी शक्ति लगा देनी पड़ती है, तब आराम होता है।

ऊपर जो सब उपद्रव लिखे गये हैं, उनके विषयमें रोगीको यह न समझ लेना चाहिए कि मुझे उपवास-कालमें इन सबका अथवा इनमेंसे दो-चारका सामना निश्चय-पूर्वक करना ही पड़ेगा। चक्कर आना, मुँहका स्वाद बिगड़ना, निद्राकी कमी और सिर-दर्द, इनके सिवाय अन्य लक्षण शायद ही कभी किसी रोगीके उपवास कालमें प्रकट होते हैं। अधिकांश रोगियोंको तो इनमेंसे एक भी तकलीफ नहीं होती है।

मृत्यु—ऐसे कई केस हुए हैं जिनमें उपवास-कालमें और उपवासके बाद ही रोगीकी मृत्यु हो गई है; परन्तु मृत्युके बाद जब-जब शवकी परीक्षा सरकारी अदा-लतद्वारा कराई गई है, तब-तब यही प्रकट हुआ है कि शरीरके भिन्न-भिन्न भीतरी अंगोंकी अवस्था ऐसी थी कि चाहे उपवास कराये जाते, चाहे नहीं, मृत्यु अवश्य होती; बल्कि अनेक बार इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया गया है कि यह रोगी इतने दिन जीता कैसे रहा?

यह बात न भूल जानी चाहिए कि मृत्युको सबसे अधिक निकट बुलानेवाला रोग भय है। रोग या उपवासके बहुत अधिक भयसे जीवन-शक्ति बहुत कम हो जाती है। जहाज डूबने, गाड़ियोंके लड़ जाने आदिमें जो लोग मर जाते हैं, उनमेंसे बहुतसे तो केवल भयके कारण ही मर जाते हैं, उनके शरीरपर चोटका कोई चिह्न भी नहीं मिलता।

मैकफेडन साहबके चिकित्सालयमें उनके हाथके नीचे कई डाक्टरोंने उपवासके द्वारा लगभग दस हजार रोगियोंकी चिकित्सा की, जिनमेंसे केवल १८ रोगी मरे,

जो गर्मी (सिफलिस), यकृतके नाश, मूत्राशयके नाश, मस्तिष्कके नाश, फेफड़ोंके नाश, आदि असाध्य रोगोंसे आक्रान्त थे। यह निश्चित था कि कोई दवाई या कोई चीर-फाड़का प्रयोग इन्हें अच्छा न कर सकता। और यह तो सभी जानते हैं कि प्राकृतिक चिकित्सकोंके पास प्रायः वही रोगी आते हैं जिन्हें सब जगहसे जवाब मिल जाता है। परीक्षासे मालूम हुआ है कि इन सभी मरणप्राप्त केसोंमें चर्बीकी मात्रा काफी बाकी थी, हृदयकी गति ठीक थी, खून भी कम नहीं हुआ था, और पेनक्रियास (Pancreas) भी अपनी साधारण अवस्थामें था। यदि भूख या उपवासके कारण मृत्यु हुई होती, तो दुर्भिक्षमें मरे हुए लोगोंके समान उनके शरीरमें चर्बी न होती, हृदयका कुछ अंग पचकर नष्ट हो गया होता, खूनकी कमी हो जाती और पेनक्रियासका पता ही नहीं चलता।

फिर ये क्यों मरे, इसका ठीक-ठीक निश्चय नहीं हो सका। सम्भव है कि किसी ऐसे अङ्गका नाश हो जानेसे इनकी मृत्यु हुई हो, जो जीवनके लिए बहुत ही उपयोगी है। परन्तु यह निश्चित है कि वह शरीरमें पोषक पदार्थकी कमी हो जानेके कारण नहीं हुई, इसलिए उपवासके सिर यह दोष नहीं मढ़ा जा सकता। जब मृत्यु आ ही रही है, तब दुनियामें ऐसा कोई उपाय नहीं जो उसे टाल सके।

लम्बे और छोटे उपवास

जिनकी जड़ें बहुत गहरी पहुँच गई हैं ऐसी बीमारियोंके लिए लम्बे उपवासोंकी ज़रूरत है। दो सप्ताहसे अधिक दिनोंके उपवासको लम्बा उपवास कहते हैं और वह दो तीन महीने तकका हो सकता है। निम्न लिखित बीमारियोंमें लम्बे उपवासोंकी ज़रूरत होती है।

१—मूत्राशयकी सूजन (Bright's Disease)
२—मधुमेह (Diabetes)
३—सन्धिवात-गठिया (Rheumatism Gout)
४—उपदंश या गर्मी (Syphilis)
५—दमा या श्वास (Asthma)

६—मेदरोग-स्थूलता (Obesity)
७—मस्तकपर खून चड जाना (Apoplexy)
८—मस्तकपर खून चढनेसे होनेवाला लकवा (Paralvsis from Apoplexy)
९—यकृतमें खूनका जमाव (Liver Congestion)
१०—विद्रधि या पीव पडना (Abcesses)
११—ऐपेण्डिसाइटिज (Appendicitis)
१२—मोतीफरा (Typhoid)
१३—उदरावरण दाह (Peritonitis)
१४—दुष्ट अर्बुद (Cancer)
१५—ग्रन्थि क्षत (Benign Tumours)
१६—नसोंका कडा होना और उभड़ आना (Artcriosclcrosis)

यदि शरीरमें अधिक कमजोरी या दुर्बलता मालूम हो, तो उपवासका समय कम कर देना चाहिए। जो रोगी उपवासके सिद्धान्तको ग्रहण नहीं कर सकता—उसपर अच्छी तरह विश्वास नहीं ला सकता, उसे भी छोटा उपवास कराना चाहिए। ज्वर रोगमें लम्बे उपवास कराना ठीक नहीं है।

एक बारका भोजन छोड देना ही छोटे उपवासको आरम्भ कर देना है। जिस दिन भूख न मालूम हो उस दिन यही करना चाहिए। यदि इससे सिरमें दर्द हो जाय, तो उसे इस बातका चिन्ह मानना चाहिए कि अभी और भी उपवासोंकी आवश्यकता है। क्योंकि शरीरमें विषोंके हुए बिना सिर दर्द नहीं होता। एक बार भोजन छोडने-से लेकर ७ से १२ दिनोंतकके उपवासको छोटा उपवास कहते हैं।

नीचे लिखे हुए साधारण रोगोंमें लम्बे उपवाससे कम किन्तु आंशिक उपवाससे अधिककी आवश्यकता होती है—

१—कफ आना (Catarrh)
२—कब्ज़ (Constipation)
३—अतिसार (Diarrhea)
४—सिर-दर्द (Headaches)
५—शूल (Colic)

६—फोड़े (Boils)
७—बाहरी अंगोंमें पीव पड़ना (Superficial abcesses)
८—चर्मरोग (Skin Eruptions)
९—न्यूरिटिज (Neuritis)
१०—न्यूरेल्जिया (Neuralgia)
११—दाँतोंमें पीव पड़ना (Pyorrhea)
१२—कृमि (Worms)

इनके सिवाय ज्वरसहित या रहित मंद व्याधियों—जैसे हाइव्स (Hives), सर्दी, इन्फ्लुएन्जा, कौएकी सूजन (Tonsilitis), टोमेन विष (Ptomaine Poisoning) के उपद्रव, सीरम या टीकेका बुखार आदि—में भी छोटे उपवास कराने चाहिएँ। दुर्बल रोगियोंको जंगली बुखार (Hay Fever) दमा, और पार्श्वशूलमें छोटे उपवास कराना चाहिए। इसी प्रकार मासिक धर्मका बिगाड़, पेड़ूकी जलन, प्रोस्टेट ग्रन्थिकी तकलीफ, नपुंसकता, मूत्राशय (Bladder) की बीमारियाँ, गुदा और पेड़ूके यंत्रोंका खिसक जाना, छूतसे पैदा होनेवाली मंद व्याधियाँ, मसूरिका, लाल बुखार और जलीय बुखार या डिफ्थीरिया, इनमें भी छोटे उपवास कार्यकारी होते हैं।

आंशिक उपवास अथवा फलोपवास

फल शब्द बहुत व्यापक है। केला, अंजीर, खजूर, आदि एक प्रकारके भोजन ही हैं, इसलिए यदि चिकित्साके लिहाजसे फलाहार किया जाय, तो केवल खट्टे, खटमिट्ठे और रसीले फलोंका ही उपयोग करना चाहिए, जैसे—अंगूर, खट्टे पीच, खट्टे सेब, खट्टे बेर आदि। नारंगी और सन्तरे चाहे जितने खाये जा सकते हैं। यह सर्वोत्तम खुराक है। गर्मीके दिनोंमें एक-दो महीने केवल फलोंपर रहना बहुत लाभदायक है। फलाहार इस प्रकार किया जाना उत्तम होगा—

१-प्रतिदिन तीन सन्तरे तीन बारमें खाये जायँ। यदि दस्त साफ न आता हो, तो सन्तरेके बीजोंको भी चबाकर खा लिया जाय।

२—चौबीस घंटोंमें तीन बार एक-एक गिलास (२० तोले) फलोंका रस पीया जाय और पानी भी खूब पीया जाय।

३–दोसे चार बार तक खट्टे फल और रसभरी खावे। पानी खूब पीवे। शक्करका उपयोग न करे।

४–दिनमें दो बार तीनसे लेकर छह औंस (एक औंस=ढाई तोला) तक एक खट्टा और मीठा फल प्रत्येक बारमें खावे और खूब पानी पीवे।

५-मक्खन निकाला हुआ दूध एक गिलास सवेरे और एक गिलास दोपहरको पीया करे।

६–तीन बार एक-एक गिलास छाँछ या मट्ठा पीवे। पानीका खूब उपयोग करे।

यह फलोपवास या आंशिक उपवास नीचे लिखे रोगोंमें बहुत लाभकारक है।

Paralysis agitans (एक प्रकारका लकवा)

Locomotor ataxia (ज्ञानतंतुओंकी एक बीमारी)

Goitre (कण्ठशोथ)

Hysteria (अपतन्त्रक वायु)

Melanchola (उदासी)

Old syphilis with gummatous formations or spinal cord affections. (पुरानी गर्मी जिसका असर रीढ आदि स्थानोंतक पहुँच गया हो।)

Pernicious anemia (दुष्ट पाण्डु)

Myocarditis (एक हृदय-रोग)

Inflammation and weakness of the heart muscle (हृदयके स्नायुकी सूजन, कमजोरी और कभी-कभी उसका बढ़ जाना)

Hypertrophy prostatis (प्रोस्टेट ग्रन्थिका बढ़ जाना)

इनके सिवाय दमा, खाँसी, नाकके मस्से, गलेके फोड़े, सूजन आदि रोगोंमें भी फलोपवाससे अत्यन्त उपकार होता है।

उपवासोंका प्रारम्भ और समाप्ति

बीमारियाँ दो प्रकारकी होती हैं—एक तो तीव्र (acute) और दूसरी बहुत समय तक ठहरनेवाली (chronic)। पहले प्रकारकी बीमारियाँ एकाएक भयंकर हो जाती हैं, जब कि दूसरे प्रकारकी बीमारियाँ काफी भयंकर होनेपर भी बहुत दिनों तक मन्थर गतिसे चला करती हैं। इनमें रोगी अपने दैनिक काम-काज ठीक तौरसे करता रहता है, उसे कोई विशेष अड़चन नहीं मालूम होती।

इनमेंसे पहले प्रकारकी बीमारियोंमें उपवास जल्दी शुरू कर देने चाहिए, विलम्ब करना ठीक नहीं। दूसरे प्रकारकी बीमारियोंमें उपवासकी तैयारीमें समय लगाया जा सकता है जिससे शरीरको एकाएक धक्का न सहना पड़े और उपवास सुगमतासे हो जाय।

दूसरे प्रकारकी बीमारियोंमें केवल विषोंका संग्रह ही एक मात्र कारण नहीं होता, अक्सर उपयुक्त और आवश्यक तत्त्वों तथा जीवन-कणों (Vitamins) से युक्त आहारके अभावसे भी ये बीमारियाँ होती हैं, इसलिए उपवास आरभ करनेके पहले कुछ दिन ऐसा आहार लेना चाहिए जो हलका हो तथा जीवन-कण और तत्त्वोंसे युक्त हो। कच्चे, खट्टे और रसीले फल तथा शाक भाजियोंमें ये तत्त्व अधिक होते हैं। शाक-भाजियोंके क्षार और जीवन-तत्त्व इतने लाभदायक हैं कि उनके विना शरीरका काम ही नहीं चल सकता ; परन्तु उनमें कीड़े और जीवाणु बहुत रहते हैं जो रोगी मनुष्योंके शरीरमें पहुँचकर नये रोग पैदा कर देते हैं, इसलिए डा० केलागकी सम्मतिके अनुसार उनको अच्छी तरह साफ करके और कीटाणुनाशक औषधियोंसे धोकर काममें लाना चाहिए। नमक-फिटकड़ी आदिके घोलमें धो लेना भी अच्छा है।

आरभमें फलों और शाक-भाजियोंपर रहकर उपवास करनेसे जल्दी फायदा होता है और कोई तकलीफ़ नहीं होती।

यदि उपवास समयके पहले ही तोड़ दिया जाता है तो अक्सर उससे हानि होती है। कभी-कभी बुखार आ जाता है और नाड़ीकी गति बहुत तेज़ हो जाती है। कै आने लगती है अथवा अरुचि हो जाती है। ऐसी अवस्थामें फिरसे उपवास करना चाहिए।

जिन विशेषज्ञोंने उपवास-शास्त्रका अध्ययन किया है उनकी स॰ उपवासकी समाप्तिका आहार तरल पेय ही होना चाहिए, विशेष करके हुआ फलोंका रस। इससे पाचन-क्रिया बहुत ही अच्छी तरह आरम्भ ।

आरभमें नीवू, सन्तरा, चकोतरा, सेव, टमाटा, अनन्नास आदि फलोंका रस पानी मिलाकर देना चाहिए। सन्तरा सर्वोत्तम है। यदि ये वस्तुएँ न मिल सकती हों, तो पानीमें थोड़ासा शहद और नीबू मिलाकर देना चाहिए। अथवा दो सेरके लगभग विविध प्रकारके शाक, भाजियाँ, काली मुनक्का आदि चीज़ोंको एक गैलन पानीमें उबाल लेना चाहिए और फिर उसके पानीको छानकर प्रत्येक वारमें दससे पन्द्रह तोलातक देना चाहिए। खारी और खट्टी भाजियाँ अधिक होना चाहिए। पालक, बथुआ, चौलाईकी भाजियाँ उत्तम है।

आरभके दो दिनोंमें ऊपर लिखे अनुसार केवल फलोंका या शाक-भाजियोंका रस दिया जाय और फिर उसके बाद थोड़ा-थोड़ा दूध भी शुरू कर दिया जाय।

अपच, पित्ताशयके क्षत (Castic ulcer), पित्ताशयके कारसिनोमा (Carcinoma) और पित्ताशयके क्षयमें दूधसे उतना फायदा नहीं होता जितना कि जौके या गेहूँके पानीसे होता है। जिन्हें दूधसे कब्ज होता है, उन्हें भी उक्त पेय बहुत हित-कर है। उबलते हुए एक पिंट पानीमें एक चम्मच जौका आटा और एक चुटकी नमक डालनेसे यह बन जाता है। इसे छानकर तीन-तीन घंटेके अन्तरसे दस दस पन्द्रह-पन्द्रह तोलेके लगभग पिलाते रहना चाहिए। २४ घंटे बीत जानेपर पानीके सिवाय जौका अन्न भी दिया जा सकता है। यदि इससे भूख अधिक मालूम पड़ती हो, तो दो दिन ठहरकर धीरे-धीरे दूध भी देने लगना चाहिए।

शाक-भाजियोंका पानी पहले दो दिनोंके बाद इच्छित मात्रामें लिया जा सकता है। उस समयकी खुराकसे यदि सन्तोष न होता हो, तो यह पानी चाहे जितनी बार बिना डरके लिया जा सकता है, परन्तु एक बारमें १५ तोलेसे अधिक नहीं लेना चाहिए।

उपवासके बाद पथ्य लेनेके लिए नीचे कुछ क्रम दे दिये जाते हैं। रोगीकी अवस्था और सुविधाके अनुसार इनमेंसे कोई एक छाँटकर काममें लाया जा सकता है--

भारी होती है, इसलिए कच्ची ही खानी चाहिए। इसके तीन घंटे बाद पानी-में पीसी हुई बदाम और केला अथवा अंगूर, सन्तरे और अखरोट अथवा अञ्जीर और वाल्नट।

२-दोपहरके एक बजे तक दूध। ५--६ बजेके लगभग शाक-भाजी, कुछ कच्चा शाक, भुना हुआ एक आलू, भात, एक-दो रोटियाँ और एक गिलास छाछ।

३-सवेरे १ गिलास छाछ, दो घंटे बाद अंगूर, पानीमें पतली पीसी हुई बदाम, दूसरे मीठे फल और तेलवाले मेवे। ये सब दूधके साथ लिये जा सकते हैं और जुदा भी। दो घंटे बाद शाक-भाजी, खीर, पनीर। तीन घंटे बाद हरे शाक, उबाले हुए या भूँजे हुए आलू, उबले हुए अञ्जीर, आलूबुखारा, मुनक्का और काफीके दाने।

४-कलेवामें खट्टे-मीठे फल और दूध। दोपहरको गोभी, टमाटा (कच्चे), प्याज, उबले हुए काफीके दाने। शामको एक-दो भाजियाँ, रोटी और दाल।

पथ्य आहारके साथ ही तरह-तरहके व्यायाम--जो शक्तिसे ज़्यादा न हों--स्वच्छ हवा और धूपकी भी बहुत आवश्यकता है। सदा भूखसे कम भोजन करो, चाहे भूख लग आनेपर समयके पहले ही भोजन करना पड़े। दिनमें और खास तौर-से भोजनके समय पानी पीना आवश्यक है। क्योंकि इससे ख़ून बढ़ता है और पतला होता है। दुर्बल और मन्दाग्निवालोंके लिए भले ही भोजनके बाद पानी न पीना ठीक हो; परन्तु सबके लिए तो बहुत ही आवश्यक है। यदि ठंडे पानीसे मन्दाग्नि होती हो, तो गुनगुना गरम पानी पीना चाहिए। पानी अमृत है।

उपवासके अनुभव

खुराक या भोजनसम्बन्धी प्रश्नोंका उत्तर देनेमें सर हेनरी थाम्पसन सबसे बड़े प्रामाणिक विद्वान् गिने जाते हैं। उनका कथन है मनुष्य ज्यों ज्यों उम्रमें बढ़ता जाता है त्यों त्यों उसे भोजनकी कम आवश्यकता होती है। जवानीमें जितना भोजन पचाया जा सकता है उतना बुढ़ापेमें नहीं पचाया जा सकता, यदि पचा लिया जाता है तो ग्रहण नहीं किया जा सकता और यदि ग्रहण कर लिया जाता है तो शरीर

उसका कोई उपयोग नहीं कर सकता। इसका कारण यह है कि एक तो बुढ़ापेमें पाचक रस उतने अच्छे और ताकतवर नहीं रह जाते हैं, दूसरे जवानीमें शरीरकी बाढ़ होती है और उसमें सारे पोषक तत्त्व खप जाते हैं; परन्तु बुढ़ापेमें बाढ़ रुककर क्षीणता आरंभ हो जाती है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि शरीरमें संचित हुए निरुपयोगी पदार्थोंको कम करनेके लिए उतरती अवस्थामें उपवास बहुत उपयोगी हैं। इसके सिवाय बुढ़ापेमें ऐसी खुराककी जरूरत नहीं जिनसे शरीरकी और स्नायुओंकी वृद्धि होती हैं, इसलिए प्रोटीन तत्त्ववाले दाल, आलू आदि पदार्थ बिल्कुल बन्द कर देने चाहिएँ, तथा चर्बीवाले पदार्थ कम कर देने चाहिएँ। बुढ़ापेमें तो जहांतक बन सके शाक और भाजीकी ही खुराक लेनी चाहिए।

बच्चोंके लिए भी उपवास उपयोगी हैं, परन्तु लम्बे उपवास नहीं। क्योंकि उनकी पाचन-शक्ति इतनी तीव्र होती है कि उपवास-कालमें वह शरीरके उपयोगी अन्नोंको भी शीघ्र ही पचाना शुरू कर देती है। बच्चोंको अक्सर जरूरतसे ज्यादा खुराक दी जाती है, इस कारण उनका शरीर मोटा-गोलमटोल हो जाता है। मोटा बच्चा ताकतवर समझा जाता है, परन्तु वास्तवमें यह खयाल गलत है। डाक्टर पेजका कथन है कि मनुष्यको छोड़कर दुनियामें और किसी प्राणीके बच्चे मोटे नहीं होते। बच्चोंका पतला होना ही प्राकृतिक नियम है और इसमें यदि कोई व्यतिरेक है तो मनुष्यका। किसी अंगमें चर्बीवाले स्नायु इस बातके द्योतक तो [illegible] हैं कि भोजन शरीरद्वारा ग्रहण किया जा रहा है, परन्तु साधारण रूपसे यदि बच्चोंमें मोटापन मालूम पड़े तो वह बीमारीका चिह्न है। बच्चोंको परिमित खुराक ही दी जानी चाहिए।

गर्भवती स्त्रियोंके सम्बन्धमें यह कहा जाता है कि उन्हें ज्यादा खुराक खानी चाहिए, क्योंकि उनके पेटमें जो बच्चा रहता है उसका पोषण भी आवश्यक है। परन्तु यह खयाल गलत है। यदि बच्चेका वजन ९ पौंड मान लिया जाय जो कि नौ महीनेमें होता है, तो एक पौंड महीनेकी औसत हुई। यह एक पौंड महीनेका हुआ आधा औंस (सवा तोले) प्रतिदिन। परन्तु ऐसा [illegible] है कि इस आधे औंसको सप्लाई करनेके लिए माताओंको एक पौंडसे लेकर दो पौंडतक ज्यादा खानेकी सलाह दी जाती है। इसका यह फल होता है कि प्रसूतिके समय माताओंके स्नायुओंकी जीवन-शक्ति क्षीण हो जाती है और उन्हें दुःख सहना पड़ता है।

इधर जन्मते ही बेचारे बच्चेको अधिक खुराक दी जाने लगती है। डा० पेजने हिसाब लगाकर बतलाया है कि यदि शरीरके परिमाणमें जवान आदमीको उतना ही दूध पिलाया जाय जितना कि साधारणतः बच्चोंको पिलाया जाता है, तो वह करीब एक मन होगा। यही कारण है जो बच्चोंको ऐसे बीसियों रोग होते हैं जिनके सम्बन्धमें यह मान लिया गया है कि वे उन्हें होने ही चाहिए।

आगे खास-खास उपवास करनेवालोंके अनुभवोंका सार दिया जाता है—

कुमारी एल० एच०—दिसम्बर १९२० के 'फिजिकल कल्चर' में श्रीमती एनी रिले हेलने इस २२ वर्षकी युवतीके विषयमें लिखा है कि उसे सम्पूर्ण रूपसे फुफ्फुसका क्षय हो गया था। शुरूमें बहुत दिनोंतक वह तरल खुराक और बहुत पानीपर रक्खी गई। पहले कुछ दिनोंतक फुफ्फुसमेंसे मलयुक्त कचरा बहुत बड़ी मात्रामें निकलता रहा, जो धीरे-धीरे शान्त हो गया। २२ वें दिनके पश्चात्, क्षयके कीटाणु बिल्कुल नहीं रहे। आगे दिनपर दिन अवस्था सुधरती गई और वह सर्वथा नीरोग हो गई।

सीनेटर एच० जे० रिले—इन महाशयने नवम्बर सन् १९२० के 'फिजिकल कल्चर' में लिखा है कि मैंने दमाके रोगपर ३२ दिनका उपवास किया। मैं हररोज ५ मील पहाड़ी रास्तेपर घूमता था और अपने दैनिक कार्य भी बराबर करता था। मेरा वजन २३८ पौण्ड था। उपवासके बाद छाती और पीठके घेरेका १५ इञ्च मांस कम हो गया और गर्दनके घेरेमें ३ इंचकी कमी हो गई। दमा बिल्कुल अच्छा हो गया।

मि० पी०—ये महाशय न्यूयार्कके कब्रस्तानमें काम करते हैं और अपने धंधेके कारण डाक्टरोंसे अधिक परिचित हैं। उनसे डाक्टरोंने कहा कि तुम्हारे जठरमें कैंसरका चकत्ता पड़ गया है जो बिना आपरेशनके अच्छा नहीं हो सकता। परन्तु वे आपरेशनके सैकड़ों मरीजोंको दफना चुके थे, इस कारण उससे डरते थे और किसी दूसरे प्रकारके इलाजकी खोजमें थे। पेटमें बहुत अधिक तकलीफ थी और उसके कारण वे दुहरे होकर चलते थे। तीन हफ्तेके उपवाससे उनकी कमर सीधी हो गई और चलते समय दर्द कम होने लगा। धीरे-धीरे शरीरका रंग भी लौटने लगा। दो महीनेके भीतर डाक्टरोंने कह दिया कि अब तुम बिल्कुल अच्छे हो और तीसरे महीने वे यात्राके लिए चल दिये।

जोजफ थॉमस—(फिज़िकल कल्चर, अप्रैल सन् १९२१)—यह अमे-रिकाकी नौ-सेनामें २३ वर्षका सैनिक था। इसे सिफिलिस या गर्मीका भयंकर रोग हो गया, जो पहले तो स्पेसिफिक इलाज करनेसे दब गया, परंतु २ महीने बाद फिर उठ खड़ा हुआ। रोगके आक्रमणकी भयंकरता इसीसे मालूम हो सकती है कि डा० वासरमेनद्वारा आविष्कृत यन्त्रसे रोगीके खूनके दबावका माप +८ अंश [illegible] था। तब डाक्टरोंने साल्वरसन (६०६ का) इंजेक्शन, पारा और पोटाशियम आयोडाइडका ९ महीनेका कोर्स शुरू किया। इन दवाओंका परिणाम यह हुआ कि उसके पेटने पूरा विद्रोह कर दिया और शरीर रक्तहीन होने लगा; परन्तु खूनके दबावमें कोई अन्तर नहीं हुआ। इसपर नौसेनाके डाक्टरसे उसने कह दिया कि अब वह इलाज नहीं करवाना चाहता। डाक्टरने इसपर [illegible] [illegible] करके उसे नौकरीसे बरतरफ करवा दिया। अधिक इलाज करवानेकी अपेक्षा उसने नौकरीसे अलग होना अधिक अच्छा समझा। आखिर उसे १९ दिनका उपवास [illegible] वाया गया। १३ वें दिन उसने एक सेब खा लिया। इसके बाद १३ [illegible] दूधपर रखा गया। परिणाम यह हुआ कि बीमारीके [illegible] [illegible] और वासरमेन-परीक्षाने भी उसे रोगशून्य बतला दिया।

जार्ज वेल्स केण्टुकी (चार वर्षका बच्चा)—इसे एक [illegible] प्रका-रका न्यूमोनिया (सन्निपात ज्वर) हो गया था। इसे ६ दिनतक कोरे पानी और नीबूकी हलकी खटाईवाले पानी पर रक्खा गया। चौथे दिन [illegible] उसके पास जमीनपर खेलने लगा। परन्तु पांचवें दिन बुखार फिर आ गया। [illegible] और भी कई उपवास कराये गये। आरम्भके तीन दिनोंमें [illegible] [illegible] सिवाय बुखारके और कोई तकलीफ बाकी न रही। [illegible] बिल्कुल चंगा हो गया।

अम्ब्रोज टायलर—(फिज़िकल कल्चर, सितम्बर १९२२) [illegible] वर्षोंमें सन्धिवात (Rheumatism) से पीड़ित था। [illegible] उपवास कराया गया। [illegible] उपवास न कराये जाते तो [illegible] [illegible] दिनके पहले ही [illegible] अच्छा हो गया और [illegible] चली गई।

एक स्त्री—(फिज़िकल कल्चर, सितम्बर १९२२) इसे तीव्र अपच और मोटेपनकी बीमारी थी। ३५ उपवास किये, जिनमें करीब आधे दिनोंतक तो वह बिना पानीके रही। अपचके सब लक्षण तथा अन्य बीमारियाँ बिल्कुल अच्छी हो गईं।

मि० सी० सी० एच० कोवन—(फिज़िकल कल्चर, सितम्बर १९२२) वारेन्सबर्ग, इलिनाइज़के रहनेवाले। वर्षोंसे नाक और गलेके कफकी बीमारीसे दुखी थे। ४२ दिनका सजल उपवास किया। उपवासके समय ३० रतल वजन घट गया; फिर भी वे अपनी नौकरी करते ही रहे। उपवासके बाद रोग बिल्कुल अच्छा हो गया और उन्हें ऐसा अनुभव होने लगा मानो उनका पेट बिल्कुल नये सिरेसे फिरसे बनाया गया हो।

मि० मिल्टन राथवर्न, माउण्ट व्हर्नान, न्यूयार्क (फिज़िकल कल्चर, सितम्बर १९२२)—शरीरका वजन अधिक था और डर था कि सिरमें अधिक खून चढ जानेकी बीमारी (Apoplexy) हो जायगी। उम्र ५४ वर्ष और धंधा अनाजका। २८ दिनतक पूरा उपवास किया और दो हफ्ते केवल शाक-भाजीका पानी लिया। इससे ४२ पौण्ड निरुपयोगी मांस घट गया और बीमारीका डर बिल्कुल जाता रहा। उपवास-कालमें उसके नौकरोंने कुछ फल लाकर दिये और खानेके लिए अनुरोध किया; परन्तु उसने कह दिया कि यदि कोई मुझे १००० डालर भी दे, तो मैं इस समय फल नहीं खाऊँगा।

एच० एच० एच०—(सितम्बर १९२१, फिज़िकल कल्चर) उम्र ३१ वर्ष। Catarrh of the Stomach (पेटका दर्द) और कब्ज़का रोग था। धीरे-धीरे खुराक घटाकर शाक-भाजीके सूप तक लाई गई। इसके बाद पहली जूनसे तीसरी जुलाईतक सजल उपवास कराये गये। ५ जूनसे १५ जूनतक उसे ऐसा मालूम होता रहा कि मेरी आँतोंके किनारे छीले जा रहे हैं। तीसरी जुलाईके बाद प्रतिदिन आधा गिलास पानी और संतरेका रस लेना शुरू किया। उपवासके आरम्भमें उसका वज़न १६० पौण्ड था, जो कम होते-होते ११४ पौण्ड रह गया। परन्तु उपवास छोड़नेके बाद ही फिर बढ़ने लगा और ५ हफ्ते बाद १७४ पौण्ड हो गया और अब तो वह खूब ताकतवर हो गया है।

मि० विलियम्स एन० सी०—उम्र २५ वर्ष। सुजाक या गोनोरियासे उत्पन्न हुए अर्द्धा गवातके कारण यह रोगी बिछौनेपरसे भी मुश्किलसे हिल सकता

था। उसने ५४ दिनका लम्बा उपवास किया। इसके पहले चार दिनतक और अन्तमें भी ४ दिनतक वह संतरेके रसपर रहा। उसका वजन १५५ पौण्ड था, जो उपवास-कालमें ४० पौण्ड घट गया, परन्तु उपवास खतम होनेके पहले ही वह कमरेमे फिरने लगा और एक हफ्तेके बाद तो रास्तेपर भी एक लकड़ीके सहारे घूमने लगा। दो हफ्ते बाद लकड़ीके सहारेकी भी उसे जरूरत न रही। धीरे-धीरे खोया हुआ सारा वजन उसने फिर प्राप्त कर लिया और पांच हफ्ते बाद वह पहलेसे भी दस पौण्ड ज्यादा वजनदार हो गया।

मिलर (एक वर्षका बच्चा)—इसे कौटुम्बिक डाक्टरने एक असाधारण प्रकारका लाल बुखार बतलाया। तीन दिनका उपवास कराया गया, जिसमें पानीके साथ नारंगीका बहुत थोड़ा रस दिया जाता था। इससे बीमारीके सब लक्षण दूर हो गये और उसकी माताने तो यह माननेसे भी इन्कार कर दिया कि उसके लड़केको कोई भयंकर बीमारी थी।

कुमारी ए० ए० केनेडा—उम्र २८ वर्ष। उसे पेटकी एक भयंकर बीमारी (पेटके अंगोंके विचलित हो जानेकी) थी। आरम्भमें चार दिन सन्तरेका रस दिया गया, फिर २५ सजल उपवास कराये गये और फिर तीन दिन सन्तरेका रस दिया गया। इसके बाद उसे ऐसी भूख लगी जैसी वर्षोंमें नहीं लगी थी। जो जीवन उसे भारभूत प्रतीत होता था, वही अब आनन्दमय हो गया। तीन महीनेके भीतर ही उसका शरीर सुन्दर और सुडौल हो गया और नौ वर्षोंके बाद फिर यौवन उमड़ आया। अब वह पूर्ण स्वस्थ युवती है।

एम० ए० एस०, दक्षिणी केरोलाना—उम्र ६८ वर्ष। उन्हें उदरावरणकी बीमारी Gastritis और कफज बधिरता थी। साथ ही जोड़ोंका दर्द था। उन्हें सन्तरेका रस देनेसे जोड़ोंका दर्द घट गया, तब ३ हफ्तेतक केवल पानी पीया। इसके बाद दस दिन तक दूध लिया। इससे जोड़ोंका दर्द—जो उपवाससे कम हो गया था—फिर लौट आया। तब दो हफ्ते तक फिर केवल पानी पीया। इसके बाद पांच हफ्तेतक दूधकी खुराक ली, जो सन्तोषजनक साबित हुई। दूध छोड़नेपर वे दो हफ्तेतक केवल सन्तरेके रसपर रहे। अब उनकी तन्दुरुस्ती बहुत शीघ्रतासे सुधरने लगी और वे बिल्कुल अच्छे हो गये।

कुमारी टी० एल०—उम्र १६ वर्ष। शरीरकी ऊँचाई ५ फीट ५ इंच और

वजन ११५ पौण्ड। इसे गलेके कौए और स्वरपथ या गलेके पीछेके हिस्से (larynx) का क्षय हो गया था। आरम्भमें दो दिन केवल सन्तरेका रस दिया, फिर १५ सजल उपवास कराये गये और अन्तमें फिर दो दिन सन्तरेके रसपर रक्खा। इसके बाद दूधकी खुराक शुरू की और दो महीनेके लिए वायु-परिवर्तनार्थ भेज दिया। बस, बीमारी बिल्कुल रफा हो गई और गलेकी आवाज गिरजेके घंटेके समान सुरीली हो गई।

मि० पी० मे, ओलाहोमा—उम्र ४४ वर्ष। इसे एक प्रकारके मधुमेह (Diabetes Melitus) की तीन वर्षकी पुरानी बीमारी थी। फोड़ोंके सिवाय उसके सब लक्षण मौजूद थे। इसे ३१ सजल उपवास कराये गये और आरंभ तथा अन्तमें चार-चार दिन पानी मिलाये हुए अंगूरके रसपर रक्खा गया। हर रोज थोड़ासा बँधा दस्त प्राकृतिक रूपसे आता रहा, परन्तु १६ वें दिन नहीं आया, क्योंकि उसके पहलेके दिन दो दस्त हो गये थे। चौथे हफ्तेतक शक्ति घटनेके बदले बढ़ती गयी, और फिर कम होने लगी; परन्तु दुर्बलता नहीं आई। इसके बाद बिना मलाईके दूधपर रक्खा गया। इससे रोगके सब चिह्न लुप्त हो गये। आरम्भमें वज़न औसतसे कम था, उपवास-कालमें २१ पौण्ड और घट गया, परन्तु चार हफ्ते बाद औसत वज़न हो गया।

ये सब उदाहरण हजारों केसोंकी सूचीमेंसे बिना विशेष सोच-विचारके छांट लिये गये हैं। प्रदर्शनके लिए इनका चुनाव नहीं किया गया है। मैं जानता हूं कि उपवास-चिकित्साकी परीक्षाका इच्छुक प्रत्येक पाठक ऐसे उदाहरणकी खोजमें होगा जो उसके समान हों; परन्तु मुझे इससे अधिक उदाहरण देनेकी आवश्यकता नहीं मालूम होती।

इस पुस्तकको मैंने केवल इसी उद्देश्यसे लिखा है कि लोग इस बातको समझ जायँ कि उपवास यदि सर्वोत्तम नहीं तो सर्वोत्तमोंमेंसे एक चिकित्सा-पद्धति अवश्य है। मुझसे जहांतक बन सका है, मैंने इस बातको पूरी तरहसे सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है, अब इसका उपयोग करना न करना पाठकोंके हाथमें है।

व्यायाम, विश्राम और स्नान

कुछ लोग व्यायामके संबंधमें इतने अधिक आशावादी देखे जाते हैं कि उनकी समझमें ऐसे रोगकी कल्पना हो नहीं हो सकती जो व्यायामसे अच्छा न हो सके

और इसलिए वे कहते हैं कि चिकित्साके प्रत्येक क्रममें वह अवश्य होना चाहिए। उनका यह भी खयाल है कि उपवास-कालमें निर्बाध गतिसे अपने सब काम किये जा सकते हैं। परन्तु इस प्रकारके विचार गलत हैं और कभी-कभी गंभीर संकटमें डाल देते हैं। आंशिक और छोटे उपवासोंमें शारीरिक श्रमको घटानेकी आवश्यकता नहीं होती; परन्तु लम्बे उपवासोंके सम्बन्धमें ऐसा नहीं है। तीसरेसे पाँचवें दिनके बाद व्यायाम कम कर देना चाहिए; बल्कि साधारण हलन-चलनकी कसरतके सिवाय अन्य कोई कसरत करनी ही नहीं चाहिए।

हालमें ही मुझे एक सज्जनका पत्र मिला है जो उपवासकालमें नौ-नौ घंटे मनों बोझ उठानेका व्यायाम करते हैं। इससे यह तो मालूम होता है कि मनुष्य उपवास-कालमें भी कठिन व्यायाम कर सकता है, परन्तु मेरा विश्वास है कि अधिकांश उपवास करनेवालोंके लिए यह बहुत हानिकारक और अनेक बार प्राणहर सिद्ध होता है और खास तौरसे तब जब कि उसे व्यायामका अभ्यास न हो। उपवासमें व्यायामकी मात्रा थकावट और स्नायुओंकी भूखपर अवलंबित है।

उपवास-कालमें घूमने या चलनेकी कसरत सर्वोत्तम है। यदि इससे भी अधिक सर्वांगीण व्यायामकी आवश्यकता हो, तो अंगोंको ढीला करने, तनने, अँगड़ाई लेने आदिकी कसरतें करनी चाहिए। आलस्य और शैथिल्य मालूम होनेपर इनसे बहुत उपकार होता है।

क्रिया और प्रतिक्रिया सभी जगह देखी जाती है और चूँकि हम [illegible] भी अपने कार्यके परिमाणमें प्रतिक्रियाकी आवश्यकता होती है। इसलिए यह आवश्यक है कि हम हर समय तथा खास तौरसे उपवासके समय आवश्यकतानुसार न्यूनाधिक परन्तु काफी विश्राम लें। क्रिया और प्रतिक्रियाके बीचमें तथा व्यायाम और विश्रामके बीचमें एक प्रकारका अनुपात होना चाहिए। दिनमें कुछ देर विश्रामके लिए देना चाहिए और यदि विश्रामका काल घरसे बाहर बिताना सम्भव हो, तो बहुत उत्तम है। अनुकूल मौसममें जमीनपर लेटकर वह वैद्युतिक शक्ति प्राप्त की जा सकती है जो पृथ्वी माता हर समय वितरित किया करती है। जहाँ [illegible] मिलती हो और उसका झोंका अधिक न हो, उस स्थानमें [illegible] जा सकता है।

प्रत्येक कार्य-कालके बाद मनुष्यको विश्राम ग्रहण करनी चाहिए। [illegible]

समय यह आवश्यक है कि शरीर ढीला छोड़ दिया जाय। शिथिलीकरणके इस कार्य को संपादित करनेके लिए यह आवश्यक है कि स्नायुओंके प्रत्येक यूथपर अच्छी तरह ध्यान दिया जाय। सच्चे विश्रामके लिए यह अत्यन्त आवश्यक है। बहुतसे मनुष्योंके स्नायु इतने खिंचे या तने हुए रहते हैं कि वे उस कालमें भी जिसे कि वे विश्रांति-काल कहते हैं, विश्रांति या ताज़गी प्राप्त करनेमें असफल होते हैं। दिनको दो बार आध-आध घंटेका समय विश्रांतिके लिए काफ़ी है। इतने समयमें शरीर इस तनावसे मुक्त हो सकता है।

जीवन और शक्ति देनेवाली सूर्यकी किरणोंका भी रोगीपर बड़ा ही विस्मित कर देनेवाला परिणाम होता है। धूपके दिनोंमें सूर्यस्नान और वायु-स्नान दोनों ही कभी-कभी लेने चाहिएँ। परन्तु इस बातका ध्यान रखना आवश्यक है कि सूर्यकी किरणोंमें कुछ रासायनिक किरणें विनाशक भी होती हैं, इसलिए धूपमें वस्त्र पहिनकर या नंगे बदन बहुत अधिक देर नहीं रहना चाहिए।

तुर्की-स्नान (TurKish Bathe), जल-चिकित्साके स्नान और भीगी चादर आदिके प्रयोग भी लाभकारक और शीघ्र फलदायक होते हैं। परन्तु ये दोनों विधि-युक्त होने चाहिएँ और रोगी इतना ताक़तवर हो कि इनसे लाभ उठा सके।

परन्तु यह आवश्यक नहीं कि उपवास-कालमें वायु, जल या धूपके स्नान कराये ही जावें। बहुत बार खासकर, कमज़ोरीमें प्रकृतिके भरोसे छोड़ देना ही उत्तम होता है। उपवासमें बिना किसी बाहरी सहायताके स्वयं ही रोग दूर करनेकी बड़ी भारी शक्ति है।

यहाँ इतना और जान लेना चाहिए कि रोगीके शरीरमें इतनी ताक़त अवश्य हो कि वह ठंडे पानीके स्नानके बाद शीघ्र गरम हो सके। यदि ऐसा नहीं होगा, तो उससे लाभकी अपेक्षा हानिकी ही अधिक संभावना है। इससे तो यह अच्छा होगा कि कमज़ोर रोगीको गरम पानीका स्नान कराया जाय अथवा पहले गरम पानी-का स्नान कराके तुरन्त ही ठंडे पानीका स्नान कराया जाय; जिससे गरमी शीघ्र आ जावे और जीवन-क्रिया तीव्रतासे होने लगे।*

---

* इस विषयको अच्छी तरह समझनेके लिए हमारे यहाँसे प्रकाशित डा० लुई कूनेकी 'नवीन चिकित्सा-विज्ञान' और जलचिकित्सासम्बन्धी दूसरी पुस्तकें पढ़ लेनी चाहिएँ। —प्रकाशक

दस वर्षमें ३८६ उपवास

मैं सन् १८९६ में बम्बई आया और चिकित्सा-वृत्ति करने लगा। उस समय मेरे शरीरका वज़न १३० पौण्ड था, जो बढ़ते-बढ़ते सन् १९२१ में २६३ पौण्ड हो गया और इसका फल यह हुआ कि मुझे उठने-बैठनेमें बहुत कष्ट होने लगा। मैं सोचने लगा कि रेचक-प्रयोगसे शरीरको हलका करना चाहिए। सन् १९२४ के सितम्बरमें मेरा शिष्य चि० रामदत्त शर्मा बम्बई आया और तब मुझे रेचक-प्रयोग शुरू करनेका सुभीता मिला। ता० १२ सितम्बरसे मैं जुलाब* लेने लगा और ता० ९ अक्टूबर तक बराबर लेता रहा। हररोज़ ११ से लेकर १३ तक दस्त आते थे। इससे शरीर बहुत शिथिल हो गया और वज़न भी २२ पौण्ड घट गया। अब जुलाब लेनेका सामर्थ्य न रहा। ता० १० को जुलाबकी दवा नहीं ली, फिर भी ११ दस्त आये और ता० ११ को भी वे जारी रहे। इससे यह निश्चय करना पड़ा कि दूध-भात और छाछ-भातका आहार जो प्रतिदिन लिया जाता था वह बन्द कर दिया जाय और उपवास-चिकित्सा शुरू की जाय। यह उपवास २१ दिनोंका हुआ और इससे मुझे अपूर्व लाभ हुआ। कहाँ तो मैं उठ-बैठ भी न सकता था और कहाँ ता० ३१ अक्टूबरको जब कि २१ वाँ उपवास था, नौकरके न आनेसे मुझे नलपरसे जलके छह घड़े भरकर लाने पड़े और इसमें कुछ भी कष्ट नहीं हुआ।

ता० १ नवम्बरको ६ सन्तरोंका रस लेकर मैंने उपवास तोड़ दिया। उसी दिन दस बजे रातको एक ऐसा ज़बर्दस्त दस्त आया जैसा कि २१ दिनोंके उपवासमें भी कभी न आया था। इसमें काले रंगका बहुत ही [illegible] मल निकला और तबसे शरीर बहुत ही हलका प्रतीत होने लगा।

ता० २ को एक दर्जन सन्तरेका रस लिया, परन्तु इससे सन्तुष्टि न होनेके कारण जी चाहता रहा कि कुछ और आहार मिलता। ता० ३ को [illegible] गौका दूध और एक दर्जन सन्तरोंका रस लिया, फिर भी भूख न मिटी। ता० ४ को ४० तोले दूध और एक दर्जन सन्तरेका रस लिया। ता० ८ नवम्बर

---

* यह जुलाब सनाय, गुलाबके फूल और सौंफको पानीमें उबालकर [illegible] मिलाकर तैयार किया जाता था।

बतलाया कि तुम्हें प्लुरिसी हो गई है और यह बहुत कष्टसाध्य है। मैं एक नुसखा लिख देता हूँ, उसका सेवन करो, लाभ होगा। उक्त नुसखा बाज़ारसे खरीदकर मँगवा लिया गया; परन्तु पीया नहीं गया और ता० २१ जनवरीको मुझे ज्वर आ गया। अब मैं और भी घबड़ाया।

दूसरे दिन पूज्य वैद्यराज प० रामेश्वरानन्दजीको मैंने अपनी सारी कष्ट-कथा सुनाई और कहा कि अब तो मैं जीवनसे तंग आ गया हूँ, बतलाइए, क्या करूँ। उन्होंने सम्मति दी कि तुम एक लम्बा उपवास करो। मेरा खयाल है कि उससे ज़रूर लाभ होगा। तुम्हारा यह ज्वर तो पुकार-पुकारकर कह रहा है कि तुम्हारे शरीरको उपवासकी जरूरत है। उस समय तक वैद्यराजजी स्वयं तीन बार लम्बे उपवास कर चुके थे, और अपने कुछ रोगियोंको भी उपवास-चिकित्सासे अच्छा कर चुके थे। इसके सिवाय उनकी चिकित्सासे मैं कई बार लाभ उठा चुका था, मुझे उनपर विशेष श्रद्धा थी, इसलिए मैं उनकी आज्ञाको शिरोधार्य करके ता० २२ जनवरी १९२४ से उपवास करने लगा।

उपवासके पहले यह हालत थी कि सारी रात औंधा पड़ा रहता था, श्वासके वेगके कारण किसीसे बात भी न कर सकता था। निरन्तर ही सोचा करता था कि किसी तरह मौत हो जाय, तो इस असह्य वेदनासे छुट्टी मिल जाय। पहले ही उपवाससे यह लाभ हुआ कि उस रातको पहले जितनी बेचैनी नहीं रही और कुछ समयके लिए निद्रा भी आ गई। दूसरी रातको अधिक आराम मिला और तीसरी रातको तो श्वास बिल्कुल बैठ गया, रातभर मजेसे सोता रहा।

उस समय चार-पाँच महीनेकी बीमारीके कारण शरीर बिल्कुल क्षीण हो गया था और तापमान (टेम्परेचर) ९५ के लगभग आ गया था, इस कारण मेरे हित-चिन्तक मित्र—जिनमें एक डाक्टर भी थे—उपवास करनेके विरुद्ध थे। मेरे पास उनकी बहुतसी दलीलोंका कोई उत्तर नहीं था; परन्तु उक्त तीन उपवासोंका फल देखकर तो मैंने यह कहना शुरू कर दिया कि उपवासोंसे भले ही मैं मर जाऊँ, परन्तु यह निश्चय है कि जितने दिन जीऊँगा, चैनसे जीऊँगा और श्वासके मरणप्राय कष्टसे बचा रहूँगा।

दुर्बलताके कारण यद्यपि मैं परिश्रम नहीं कर सकता था; फिर भी अपने सोनेके कमरेमें बराबर टहलता रहता था और पुस्तकें भी अक्सर पढ़ा करता था। मस्तिष्कपरसे एक बड़ा भारी बोझसा हट गया था, जिससे विचारोंका प्रवाह अबाध गतिसे

चलता था। प्यास बिल्कुल नहीं लगती थी, फिर भी औंटाया हुआ ठंडा पानी दिन-रातमें कई बार पीता था और तीसरे चौथे दिन एनीमा लेता था, जिससे थोड़ा-थोड़ा सा मल निकला करता था। नींद खूब आती थी और रातको ६-७ घण्टेसे कम न सोता था।

ज्यों-ज्यों दिन जाने लगे त्यों-त्यों शान्ति मिलने लगी। ऐसा मालूम होता था कि हररोज़ जो खुराक ली जाती थी, उसके पचानेमें ही शरीर अपनी सारी शक्ति लगा देता था, रोगको पचानेका उसे अवकाश ही नहीं था; परन्तु खुराक बन्द हो जानेसे वह शक्ति रोगको पचानेमें लग गई।

यद्यपि वैद्यराजजीकी इच्छा थी कि मैं पूरे ३० उपवास करूँ, परन्तु मेरे टेम्परेचरकी हालत देखकर लोग चिन्तित हो रहे थे और मेरा शरीर भी [illegible] हड्डियोंका ढाँचा रह गया था, इस कारण उन्होंने २५ दिनोंके बाद ता० १५ [illegible] १९२४ को ही उपवास तुड़वा दिया। उस दिन मुझे ७ तोले अंगूरोंका रस [illegible] बारमें दिया गया। यह रस कितना सुस्वादु था, उसका वर्णन नहीं हो सकता। जीवनमें शायद पहली ही बार इस स्वादका अनुभव हुआ था। दूसरे दिन [illegible] तोले अंगूरोंका रस दो दो घंटेके अन्तरसे पिलाया गया। तीसरे दिन [illegible] थोड़ा-थोड़ा दूध मिलाकर दिया गया। उसके बाद [illegible] रस दूधके साथ दिया गया। फिर चावलोंका माँड और [illegible], फिर [illegible] कर उनका जूस और दूध, उसके बाद मूँगका पानी, फिर [illegible], फिर रोटी और परवलका शाक, इस तरह कोई १५ दिनके बाद [illegible] पर लग गया। [illegible] हररोज़ [illegible]। [illegible] शरीरका वजन बढ़ने लगा और उसके साथ शक्ति भी। [illegible] उपवास करके मैंने एक भयङ्कर बीमारीसे छुटकारा पाया।

---

१४ वर्षके लड़केके २६ उपवास

एरण्डीके तेलका जुलाब दिला दिया, जिससे वह और भी बिगड़ गया। तब पूज्य रामेश्वरानन्दजीकी सम्मतिसे उसके लिए भी लम्बे उपवासकी व्यवस्था करनी पड़ी। ता० १८ जनवरी सन् १९२४ से २ फरवरीतक १६ उपवास कराये गये, इसके बाद ता० ३ से १५ तक थोड़ा-थोड़ा दूध दिया गया, परन्तु जब देखा कि ज्वर निःशेष नहीं होता है तब ता० १६ से २५ फरवरीतक फिर उपवास कराये गये; परन्तु इतने पर भी जब ज्वर निःशेष नहीं हुआ और शरीर बहुत क्षीण हो गया, तब फिर दूध देना शुरू कर दिया गया, जो ता० १९ मार्चतक जारी रक्खा गया। अन्तमें ज्वर चला गया और ता० २० मार्चको पहले-पहल दूध-भात दिया गया। इस तरह एक १४ वर्षके लड़केने बिना किसी तरहकी विशेष कठिनाईके २६ पूरे उपवास किये और ३६ दिनतक वह केवल दूधपर रहा। इस प्रयोगसे पाठक समझ सकते हैं कि लम्बे उपवास करना उतना कठिन नहीं है जितना कि समझा जाता है और बिगड़े हुए टाइफाइडमें भी इससे लाभ होता है।

निवेदक—नाथूराम प्रेमी

---

४६ दिनका उपवास

अभी हाल ही ता० २० जून १९३२ के दैनिक अर्जुनमें प्रकाशित हुआ है कि विलायतके मि० अलबर्ट वोट नामक एक सज्जन एक बार बीमार पड़े और किसी भी तरहकी चिकित्सासे अच्छे नहीं हुए। वे लगातार २८ वर्षतक बिस्तरेपर पड़े रहे। डाक्टरोंने जवाब दे दिया। आखिर उन्होंने खाना छोड़ दिया और वे केवल पानीपर गुज़र करने लगे। चार सप्ताहके बाद वे इतने कमज़ोर हो गये कि बिस्तरेसे उठ नहीं सकते थे और उनका शरीर केवल हड्डियोंका ढाँचा रह गया। ४६ उपवास पूरे हो चुकनेपर उनकी बीमारी बिल्कुल दूर हो गई और फिर उनका स्वास्थ्य इतना अच्छा हो गया कि वे अच्छे खासे पहलवान प्रतीत होने लगे। स्वस्थ होनेके उपरान्त वे कहते थे कि मैं कमसे कम १२० वर्षतक जीवित रहूँगा, किन्तु ६ सालके बाद वे एक मोटरसे टकराकर मर गये। उनकी स्त्री और लड़के कहते हैं कि यदि इस दुर्घटनामें उनकी मृत्यु न होती तो उनकी भविष्यवाणी अवश्य पूरी होती।

1319

